लेनिन
संकलित रचनाएं

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

В. Ульянов (Ленин)

व्ला० इ० लेनिन

संकलित रचनाएं
चार खंडों में

खंड
१

१८९९-१९१६

प्रगति प्रकाशन · मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लि.
चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड, जयपुर-302001

प्रकाशक की ओर से

चार खंडों में प्रकाशित व्ला० इ० लेनिन की संकलित रचनाओं के इस खंड में शामिल लेखों का अनुवाद सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति के मार्क्सवाद-लेनिनवाद संस्थान द्वारा रूसी में प्रकाशित संपूर्ण लेनिन ग्रंथावली (पांचवां संस्करण) के पाठ के अनुसार किया गया है। प्रत्येक रचना के अंत में संपूर्ण लेनिन ग्रंथावली के उक्त संस्करण की खंड तथा पृष्ठ संख्याओं का हवाला दिया गया है।

В. И. ЛЕНИН

Избранные произведения в 4 томах

Том 1

На языке хинди

V. I. LENIN

Selected Works in Four Volumes

Volume 1

in Hindi

सोवियत संघ में मुद्रित

$Л\frac{0101020000—112}{014(01)—88}367—88$

ISBN 5-01-000885-8
ISBN 5-01-000886-6

विषय-सूची

भूमिका

व्लादीमिर इल्यीच लेनिन की विचारधारात्मक धरोहर विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन और संपूर्ण प्रगतिशील मानवजाति के लिए असीम मूल्यवान है।

उनकी कृतियां मार्क्स के क्रांतिकारी सिद्धांत के विकास की नयी मंज़िल हैं, जिसे अधिकारपूर्वक मार्क्सवाद की चरम अवस्था, आधुनिक युग का मार्क्सवाद कहा जा सकता है। बुर्जुआ विचारधारा-निरूपकों, संशोधनवादियों और अवसरवादियों के ख़िलाफ़ अडिग संघर्ष में वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के संस्थापकों के महान विचारों की रक्षा करके उन्होंने नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों में मार्क्स की शिक्षा को विकसित किया और समृद्ध बनाया ; उसे साम्राज्यवाद के युग में, समाजवाद में संक्रमण के युग में रूसी तथा विश्व मज़दूर आंदोलन के सामने प्रस्तुत कार्यभारों के अनुकूल बनाया।

इस संस्करण में वे चुनी हुई रचनाएं शामिल हैं, जिनमें व्ला० इ० लेनिन ने मार्क्स के सिद्धांत की मुख्य प्रस्थापनाओं को विकसित किया है और दिखाया है कि वैज्ञानिक कम्युनिज़्म का सिद्धांत सर्वहारा तथा सभी मेहनतकशों के मुक्ति संघर्ष के लिए कितना महत्वपूर्ण है। उन्होंने इस शिक्षा की व्याख्या की है कि पार्टी मज़दूर आंदोलन की अग्रणी, नेतृत्वकारी शक्ति है। उन्होंने विभिन्न ऐतिहासिक अवधियों के लिए कम्युनिस्ट पार्टी की रणनीति और कार्यनीति निर्धारित की, समाजवाद के निर्माण की योजना का ख़ाका प्रस्तुत किया और विश्व कम्युनिस्ट तथा मज़दूर आंदोलन की समस्याओं की समीक्षा की।

यह संग्रह 'कार्ल मार्क्स की शिक्षा की ऐतिहासिक नियति', 'मार्क्सवाद के तीन स्रोत तथा तीन संघटक अंग' और 'मार्क्सवाद और संशोधनवाद' नामक तीन लेखों से शुरू होता है, जिनमें व्ला० इ० लेनिन ने

मार्क्स की शिक्षा का क्रांतिकारी अंतर्य और प्रबल शक्ति तथा जीवंतता प्रदर्शित की है, मार्क्सवाद को विश्व सैद्धांतिक विचार के शिखर तथा १९वीं सदी के जर्मन दर्शन, आंग्ल राजनीतिक अर्थशास्त्र और फ़्रांसीसी कल्पनावादी समाजवाद की श्रेष्ठतम सर्जनाओं के वैध उत्तराधिकारी के रूप में वर्णित किया है। वे लिखते हैं: "मार्क्स की शिक्षा सर्वशक्तिमान है, क्योंकि वह सत्य है। वह व्यापक तथा सुसंगत है और मनुष्य को एक ऐसा अखंड विश्वदृष्टिकोण प्रदान करती है, जो किसी भी प्रकार के अंध-विश्वास, प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति या बुर्जुआ उत्पीड़न की किसी भी वकालत की कट्टर विरोधी है।"

लेनिन ने मार्क्सवाद को मृत और घिसे-पिटे सूत्रों तथा प्रस्थापनाओं की एक श्रृंखला में बदलने का ज़ोरदार विरोध किया और मार्क्सवाद को नयी ऐतिहासिक परिस्थिति के अनुरूप सृजनात्मक ढंग से विकसित करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। लेनिन का दावा था कि सामाजिक परि-घटनाओं के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण का सार यह है कि किसी कालातीत सिद्धांत से चिपटे रहने के बजाय लोगों को मार्क्सवाद को विकसित करने और ठोस परिस्थितियों पर लागू करने की योग्यता प्रदर्शित करनी चाहिए और द्वंद्वात्मक तरीक़े इस्तेमाल करके किसी भी परिस्थिति का, चाहे वह कितनी भी पेचीदा क्यों न हो, सही हल निकालना चाहिए। इसके साथ ही वे मार्क्सवाद की आधारभूत प्रस्थापनाओं से किसी भी भटकाव और विचलन, अथवा बुनियादी उसूलों में किसी संशोधन के दृढ़ तथा अडिग विरोधी थे।

उन्होंने लिखा कि मार्क्सवाद पूरे के पूरे बुर्जुआ विज्ञान की भयंकर शत्रुता और घृणा का भाजन इसलिए है कि वह विज्ञान पूंजीवाद का समर्थन करता है, जिसके ख़िलाफ़ मार्क्सवाद ने निर्मम संग्राम की घोषणा कर दी है। बुर्जुआ वर्ग और उसके सेवक मार्क्सवाद का खंडन करने और उसे नष्ट करने के लिए भरसक सब कुछ करते हैं। लेकिन उनकी मेहनत बेकार गयी है, बेकार जा रही है। लाखों-करोड़ों मेहनतकश मार्क्सवाद-लेनिनवाद की महान शिक्षा के गिर्द एकत्रित हो रहे हैं।

इस बात का पूर्वानुमान लगाते हुए कि वैज्ञानिक कम्युनिज़्म की स्थिति मज़बूत होने के साथ-साथ संशोधनवाद विरोधी संघर्ष अधिक तीव्र होता

जायेगा, लेनिन ने कहा था कि मार्क्सवाद अनिवार्यतः संशोधनवाद पर विजय प्राप्त करेगा।

लेनिन ने मार्क्सवाद के प्रगट शत्रुओं के ख़िलाफ़ और उन लोगों के ख़िलाफ़ अथक संघर्ष चलाया, जो मार्क्सवाद को केवल कथनी में स्वीकार करते थे। मार्क्स की शिक्षा की सैद्धांतिक विजय उसके शत्रुओं को मार्क्सवाद का चोला धारण करने को बाध्य करती है। यह तरीक़ा क्रांतिकारी मार्क्सवाद के विरोधियों द्वारा अतीत में अपनाया गया था और आज भी अपनाया जा रहा है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत को विकृत करने के प्रयत्न में बुर्जुआ जालसाज़ों का एक बहुप्रचलित तरीक़ा मार्क्सवाद और लेनिनवाद को एक-दूसरे के मुक़ाबले में खड़ा करना है। इसमें उन्हें कभी सफलता नहीं मिली, क्योंकि लेनिनवाद ही पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण के नये युग का, पूंजीवाद के पतन तथा समाजवाद और कम्युनिज़्म की विजय के युग का मार्क्सवाद है। मार्क्सवाद उस नूतन योग के बिना न तो है और न हो सकता है, जिसका लेनिन ने मार्क्सवाद में समावेश किया।

'अर्थवाद के पैरवीकारों से एक बातचीत' शीर्षक लेख में लेनिन ने मज़दूर वर्ग की पार्टी के लिए क्रांतिकारी मार्क्सवादी विचारधारा का महत्व, जनता के राजनीतिक नेता और विचारधारा-निरूपक के रूप में उन्नत सिद्धांत से सज्जित तथा मज़दूर आंदोलन की अगुआई में समर्थ पार्टी की भूमिका का महत्व बड़े शक्तिशाली ढंग से व्यक्त किया है।

'साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था' नामक प्रतिभाशाली कृति लेनिन द्वारा साम्राज्यवाद के सांगोपांग अध्ययन का फल है। इस कृति में उन्होंने मार्क्स की 'पूंजी' के प्रकाशन के बाद की आधी शताब्दी के दौरान विश्व पूंजीवादी विकास के नतीजों का निचोड़ प्रस्तुत किया। पूंजीवाद के उद्‌भव, विकास तथा ह्रास के मार्क्स और एंगेल्स द्वारा उद्‌घाटित नियमों के आधार पर लेनिन ने पहली बार साम्राज्यवाद के आर्थिक तथा राजनीतिक सार का गहन वैज्ञानिक विश्लेषण किया। विश्व पूंजीवाद की अर्थव्यवस्था की नयी परिघटनाओं का सामान्यीकरण करके उन्होंने सिद्ध किया कि साम्राज्यवाद के तहत पूंजीवादी समाज के सारे अंतर्विरोधों की प्रचंड वृद्धि अनिवार्य है। उन्होंने परोपजीवी, क्षयग्रस्त और मृतप्राय पूंजीवाद के

रूप में साम्राज्यवाद का चरित्र-निरूपण किया और उसके पतन की परिस्थितियां तथा एक नयी, प्रगतिशील सामाजिक व्यवस्था द्वारा, समाजवाद द्वारा पूंजीवाद को अपदस्थ किये जाने की अनिवार्यता तथा आवश्यकता प्रदर्शित की। उन्होंने बताया कि साम्राज्यवाद समाजवादी क्रांति की पूर्ववेला है।

जिन रचनाओं में व्ला० इ० लेनिन ने समाजवादी क्रांति के सिद्धांत को अत्यंत गहराई और विस्तार के साथ निष्पन्न किया, उनमें से सर्वप्रथम और सर्वोपरि 'जनवादी क्रांति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियां', 'संयुक्त राज्य यूरोप का नारा', 'राज्य और क्रांति', 'मार्क्सवाद तथा विद्रोह', 'सर्वहारा क्रांति और ग़द्दार काउत्स्की' और '"वामपंथी" कम्युनिज़्म–एक बचकाना मर्ज़' नामक रचनाओं का ज़िक्र किया जाना चाहिए। लेनिन ने क्रांति में सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व के विचार और इस सिद्धांत का संवर्द्धन किया है कि बुर्जुआ-जनवादी क्रांति विकसित होकर समाजवादी क्रांति बन जाती है। उन्होंने साम्राज्यवाद के दौर में पूंजीवाद के आर्थिक तथा राजनीतिक विकास के नियमों को उद्घाटित किया और दिखलाया कि इस विकास का स्वरूप असम, छलांगनुमा है। दुनिया के पुनर्विभाजन के लिए साम्राज्यवादी देशों का आपसी संघर्ष तीव्र हो जाता है, साम्राज्यवादी युद्ध छिड़ते हैं, जिनसे विश्व साम्राज्यवाद के समूचे मोर्चे की बुनियाद खोखली हो जाती है। पूंजीवाद के असम विकास के नियम के अनुसार विभिन्न देशों में समाजवादी क्रांति के परिपक्व होने का समय अनिवार्यतः भिन्न-भिन्न होता है। साम्राज्यवादी देशों की शृंखला में, साम्राज्यवाद की व्यवस्था में, जो कुल मिलाकर समाजवादी क्रांति के लिए परिपक्व हो चुकी है, प्रहारसुलभ कड़ियां उभर आती हैं। व्ला० इ० लेनिन ने इससे यह महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाला कि शुरू-शुरू में समाजवाद अलग-अलग कई देशों में, अथवा एक देश में ही, विजयी हो सकता है और उसकी विजय एकसाथ सभी देशों में असंभव है। इससे मार्क्सवाद की रत्न-राशि प्रकांड रूप से समृद्ध हुई। लेनिन ने कहा कि समाजवादी क्रांति सर्वहारा वर्ग और किसानों के संघर्ष और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का जोड़ है। इस सिद्धांत की व्यवहार में शानदार तरीक़े से पुष्टि हो चुकी है। रूस में महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय, सोवियत संघ में समाज-

वाद का निर्माण, विश्व समाजवादी प्रणाली का उद्‌भव, औपनिवेशिक व्यवस्था का अधःपात और कुछ एशियाई, अफ़्रीकी तथा लैटिन अमरीकी देशों द्वारा विकास के ग़ैर पूंजीवादी मार्ग अपनाये जाने का तथ्य विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया में लेनिन के विचारों की विजय के द्योतक हैं।

'समाजवादी क्रांति तथा जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार' तथा अन्य रचनाओं में व्ला० इ० लेनिन ने अलग हो जाने की हद तक जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की पुष्टि और हिमायत की और बुर्जुआ राष्ट्रवाद की सभी अभिव्यक्तियों की निंदा की। उन्होंने जातियों की आपसी एकता, समान अधिकार और मित्रता के निमित्त संघर्ष में एकजुट होने के लिए सभी देशों के मज़दूरों का आह्वान किया। उन्होंने इस बात का पूर्वानुमान किया कि केवल समाजवाद ही सच्चे जनवादी और अंतर्राष्ट्रीयतावादी आधार पर जातियों को एक-दूसरे के निकट आने में समर्थ बनायेगा और उससे स्वतंत्र और समानाधिकारप्राप्त जनगण की एकता और मित्रता पैदा होगी।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय के बाद, गृहयुद्ध की कठिन परिस्थितियों में लेनिन समाजवादी क्रांति, सर्वहारा अधिनायकत्व तथा पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण की मुद्दत की सैद्धांतिक समस्याओं पर काम करते रहे। 'सर्वहारा अधिनायकत्व के युग में अर्थनीति तथा राजनीति' और 'महान सूत्रपात (मोर्चे के पीछे मज़दूरों की वीरता के बारे में। "कम्युनिस्ट सुब्बोत्निकों" के उपलक्ष्य में)' नामक रचनाओं में लेनिन ने सर्वहारा अधिनायकत्व के कृत्यों तथा कार्यभारों और संक्रमणकाल में आर्थिक विकास के नियमों तथा वर्ग-संबंधों और समाजवादी तथा फ़िर कम्युनिस्ट सामाजिक संबंधों के निर्माण से संबंधित समस्याओं का चरित्र-निरूपण किया।

इस संग्रह में वे रचनाएं शामिल हैं, जिनमें लेनिन ने रूस में समाजवाद के निर्माण की योजना की मुख्य प्रस्थापनाएं निष्पन्न कीं और समाजवाद के निर्माण के व्यावहारिक क़दमों का ख़ाका प्रस्तुत किया: जनता द्वारा लेखा-जोखा और निगरानी का आयोजन, श्रम की उत्पादनशीलता की वृद्धि, समाजवादी प्रतियोगिता का फैलाव, नये सर्वहारा अनुशासन का संवर्द्धन। उन्होंने सोवियत आर्थिक प्रबंध के बुनियादी उसूलों का निष्पादन

किया। ये हैं १९१८ के वसंत में लिखित 'सोवियत सत्ता के तात्कालिक कार्यभार' तथा '"वामपंथी" बचकानापन और टुटपुंजिया मनोवृत्ति' नामक प्रसिद्ध रचनाएं।

लेनिन द्वारा निरूपित नयी आर्थिक नीति वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के सिद्धांत और व्यवहार के लिए महत्वपूर्ण देन है। पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण के दौरान सर्वहारा राज्य के लिए वही एकमात्र सही नीति थी, क्योंकि उसने मज़दूर वर्ग और किसानों के बीच दृढ़ आर्थिक तथा राजनीतिक एकता और समाजवाद की आर्थिक बुनियाद का निर्माण सुनिश्चित किया। इस नीति की समस्याओं पर रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के १० वें अखिल रूसी सम्मेलन में किये गये भाषण में, 'कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की तीसरी कांग्रेस में रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की कार्यनीति के बारे में रिपोर्ट की प्रतिपत्तियां' में और 'अक्तूबर क्रांति की चौथी जयंती' तथा 'आज तथा समाजवाद की पूर्ण विजय के बाद सोने का महत्व' नामक लेखों और उस भाषण में विचार किया गया है, जो लेनिन ने सार्वजनिक सभा में अंतिम बार उपस्थित होकर २० नवंबर, १९२२ को मास्को सोवियत के पूर्ण अधिवेशन में किया था।

लेनिन ने विश्वव्यापी पैमाने पर समाजवाद की विजय के लिए, समस्त मानवजाति की नियति के लिए सोवियत संघ की आर्थिक उपलब्धियों के ज़बर्दस्त महत्व पर ज़ोर दिया। उस दौर के लेखों, पार्टी कांग्रेसों में पेश की गयी रिपोर्टों और पत्रों में लेनिन ने सोवियत सत्ता के प्रारंभिक वर्षों के अनुभव का निचोड़ प्रस्तुत किया और राजकीय तथा सांस्कृतिक विकास की समस्याओं समेत नये समाजवादी समाज के निर्माण से संबंधित सामान्य तथा विशिष्ट समस्याओं का विस्तृत तथा गहन विश्लेषण किया। लेनिन के अंतिम पत्रों तथा लेखों के महत्व का ख़ास तौर से ज़िक्र किया जाना चाहिए, जिन्हें ठीक ही उनकी राजनीतिक वसीयत कहा जाता है। उनमें 'कांग्रेस के नाम पत्र', 'डायरी के पन्ने', 'सहकारिता के बारे में', 'हमारी क्रांति के बारे में (न० सुख़ानोव की टिप्पणियों के सिलसिले में)' और 'चाहे कम हो, पर बेहतर हो' शामिल हैं। ये लेख सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण की योजना पर लेनिन के काम की समापन मंज़िल थे। इन रचनाओं में पार्टी कार्यक्रम का आगे विकास किया गया

तथा उसके ठोस रूप प्रस्तुत किये गये, समाजवाद की बुनियादी मंज़िलों का निर्धारण किया गया तथा वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध किया गया कि सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण किया जा सकता है। लेनिन के कार्यक्रम के अनुसार सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी ने इस महान कार्यभार को पूरा कर लिया है।

इस संग्रह के कुछ लेख तथा भाषण सांस्कृतिक क्रांति के सारतत्व और मार्गों के संबंध में आधारभूत प्रस्थापनाएं प्रस्तुत करते हैं। रूसी युवा कम्युनिस्ट लीग की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस में किये गये भाषण में लेनिन ने युवा पीढ़ी की कम्युनिस्ट शिक्षा-दीक्षा के लिए कार्यक्रम का ख़ाका पेश किया। उन्होंने युवाजनों के लिए कम्युनिस्ट विचारधारा को आत्मसात् करने, मानवजाति द्वारा संचित संपूर्ण ज्ञान-राशि को आत्मसात् करने और श्रम के साथ, कम्युनिज़्म के लिए व्यावहारिक संघर्ष के साथ अध्ययन को जोड़ने का कार्यभार निर्धारित किया। 'सर्वहारा संस्कृति के बारे में' प्रस्ताव के मसविदे में, '३ नवंबर, १९२० को गुबेर्निया तथा उयेज़द सार्वजनिक शिक्षा-विभागों के राजनीतिक शिक्षा-कार्यकर्त्ताओं की अखिल रूसी बैठक में किया गया भाषण' में और 'डायरी के पन्ने' में उन्होंने सर्वहारा अधिनायकत्व के शिक्षा संबंधी कार्यभार और सांस्कृतिक विकास में कम्युनिस्ट पार्टी की अग्रणी भूमिका पर ज़ोर दिया। उन्होंने बताया कि पार्टी नेतृत्व का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है विचारधारात्मक और संगठनात्मक कामों की अविभाज्य एकता।

'जुझारू भौतिकवाद का महत्व' लेख में उन्होंने सैद्धांतिक मोर्चे के कार्यभार निर्धारित किये। यह लेख, जो दर्शन में पक्षधरता का आदर्श है, बुर्जुआ विचारधारा के ख़िलाफ़, बुर्जुआ प्रतिक्रियावादी दर्शन के ख़िलाफ़ संघर्ष में पार्टी का जुझारू कार्यक्रम रहा है और है।

'अमरीकी मज़दूरों के नाम चिट्ठी' में लेनिन ने संयुक्त राज्य अमरीका के साम्राज्यवादियों का असली चेहरा बेनक़ाब कर दिया, जो जनता के दुख-दर्द से हज़ारों अरब डालर बनाते हैं। उन्होंने बताया कि अंग्रेज़-अमरीकी साम्राज्यवाद ने राष्ट्रों के जल्लाद तथा क्रांतिकारी आंदोलन के जल्लाद के रूप में सभी देशों की मेहनतकश जनता के सामने अपने को बेपरदा कर दिया है।

'"प्राव्दा" की दसवीं जयंती' ग्रौर 'चाहे कम हो, पर बेहतर हो' नामक लेखों में लेनिन ने दुनिया के दो प्रणालियों में – समाजवादी ग्रौर पूंजीवादी प्रणालियों में – बंट जाने के बाद विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया की प्रेरक शक्तियों तथा संभावनाग्रों का विश्लेषण किया है ग्रौर ग्रंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट तथा राष्ट्रीय मुक्ति ग्रांदोलन के कार्यक्रम संबंधी, संगठनात्मक ग्रौर कार्यनीतिक उसूलों को निर्धारित किया।

मेहनतकशों के ग्रंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी तथा मुक्ति ग्रांदोलन की संपूर्ण प्रक्रिया, विश्व समाजवादी प्रणाली के उद्भव, पूंजीवादी देशों के सर्वहारा के वर्ग संघर्ष की उपलब्धियों तथा ग्रौपनिवेशिक व्यवस्था के ग्रध:पात से इस बात की पुष्टि होती है कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद ऐतिहासिक दृष्टि से सही दिशा में ग्रभिमुख है।

लेनिनवाद ग्रंतर्राष्ट्रीय शिक्षा है। वह सभी देशों के मज़दूर ग्रौर राष्ट्रीय मुक्ति ग्रांदोलन के ऐतिहासिक ग्रनुभव को प्रतिबिंबित करता है। यह ऐसी शिक्षा है, जिसके बुनियादी उसूल किसी भी देश पर लागू हो सकते हैं, चाहे उस देश के विकास का स्तर कुछ भी क्यों न हो। वह सभी देशों के मेहनतकशों के सामने सुखी भविष्य के निर्माण के उपाय ग्रौर साधनों की स्पष्ट तस्वीर पेश करती है ग्रौर उनमें यह विश्वास भरती है कि शांति ग्रौर प्रगति की शक्तियों की विजय होगी। इस संग्रह में प्रकाशित रचनाग्रों का ग्रध्ययन संपूर्ण मानवजाति की उन्नति का पथ ग्रालोकित करनेवाले बुनियादी लेनिनवादी विचारों को समझने ग्रौर ग्रात्मसात् करने में लोगों को समर्थ बनायेगा।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की
केंद्रीय समिति का
मार्क्सवाद-लेनिनवाद संस्थान

कार्ल मार्क्स की शिक्षा की ऐतिहासिक नियति[1]

मार्क्स की शिक्षा में मुख्य वस्तु है समाजवादी समाज के निर्माता के रूप में सर्वहारा वर्ग की विश्व-ऐतिहासिक भूमिका का स्पष्टीकरण। जब से मार्क्स ने अपनी शिक्षा प्रतिपादित की, तब से सारे संसार के घटनाक्रम द्वारा क्या उसकी पुष्टि हुई है?

मार्क्स ने अपनी शिक्षा को पहली बार १८४४ में व्यक्त किया। १८४८ में प्रकाशित मार्क्स और एंगेल्स के 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' ने इस शिक्षा की पूर्ण और क्रमबद्ध व्याख्या प्रस्तुत की, जो आज तक सर्वोत्तम मानी जाती है। उस समय से अब तक का विश्व इतिहास स्पष्टतः तीन मुख्य अवधियों में बांटा जाता है: १) १८४८ की क्रांति[2] से पेरिस कम्यून (१८७१)[3] तक; २) पेरिस कम्यून से रूसी क्रांति (१९०५) तक; ३) रूसी क्रांति के बाद का काल।

आइये, देखें कि उपरोक्त प्रत्येक अवधि में मार्क्स की शिक्षा की नियति क्या रही है।

१

पहली अवधि के आरंभ में मार्क्स की शिक्षा को किसी तरह भी प्रभुत्व प्राप्त नहीं था। समाजवाद की बहुसंख्य प्रवृत्तियों और धाराओं में एक वह भी थी। उस समय समाजवाद के जो प्रभुत्वशाली रूप थे, वे मुख्यतः हमारे नरोदवाद[4] के सजातीय थे – ऐतिहासिक विकास के भौतिक आधार की नासमझी, पूंजीवादी समाज के प्रत्येक वर्ग की भूमिका और महत्व को समझने में असमर्थता तथा "जनता", "न्याय", "अधिकार", आदि के बारे में विभिन्न समाजवादी प्रतीत होनेवाले फ़िक़रों द्वारा जनवादी सुधारों के बुर्जुआ सार पर परदा डालना।

१८४८ की क्रांति ने प्राक्-मार्क्सी समाजवाद के इन तमाम कोलाहलपूर्ण, गड्ड-मड्ड, दिखावटी रूपों पर प्राणघातक प्रहार किया। समस्त देशों में

क्रांति समाज के विभिन्न वर्गों को उनकी **क्रियाशीलता में** प्रदर्शित करती है। पेरिस में १८४८ के जून में जनतंत्रीय बुर्जुआ लोगों द्वारा मज़दूरों पर गोली चलाने के फलस्वरूप अंतिम रूप से यह ज़ाहिर हो गया कि **अकेला** सर्वहारा वर्ग ही समाजवादी है। किसी प्रकार की प्रतिगामी शक्ति के मुक़ाबले में उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग सर्वहारा वर्ग की स्वतंत्रता से सैकड़ों गुना अधिक भय खाता है। बुज़दिल उदारतावाद प्रतिगामी शक्तियों के सामने गिड़गिड़ाया करता है। सामंती अवशेषों के उन्मूलन से संतुष्ट होकर किसान विद्यमान व्यवस्था के समर्थकों में आ जाते हैं और सिर्फ़ यदा-कदा **मज़दूरों के जनवाद तथा बुर्जुआ उदारतावाद** के बीच ढुलमुल होते रहते हैं। वर्ग-**रहित** समाजवाद और वर्ग-**रहित** राजनीति की सारी शिक्षाएं सरासर निरर्थक सिद्ध होती हैं।

पेरिस कम्यून (१८७१) बुर्जुआ परिवर्तनों के इस विकास को पूर्णता तक पहुंचाता है; जनतंत्र, अर्थात राजकीय संगठन का वह रूप, जिसमें वर्ग संबंध अधिकतम अप्रच्छन्न रूप से ज़ाहिर हो जाते हैं, अपनी मज़बूती के लिए एकमात्र सर्वहारा वर्ग की वीरता का आभारी होता है।

यूरोप के सभी अन्य देशों में अधिक उलझा और कम निष्पन्न विकास उसी बुर्जुआ समाज में पहुंचाता है। पहली अवधि (१८४८–१८७१) के अंत तक – तूफ़ानों और क्रांतियों की अवधि के अंत तक – प्राक्-मार्क्सी समाजवाद **मर जाता है। सर्वहारा वर्ग की** स्वाधीन पार्टियां – पहला इंटरनेशनल (१८६४–१८७२)[5] और जर्मन सामाजिक-जनवाद – पैदा हो जाती हैं।

२

दूसरी अवधि (१८७२–१६०४) अपने "शांतिमय" स्वरूप के कारण, क्रांतियों के अभाव के कारण पहली अवधि से भिन्न है। पश्चिम बुर्जुआ क्रांतियों को ख़त्म कर चुका है। पूर्व अभी उन तक पहुंचा नहीं है।

पश्चिम आनेवाले परिवर्तनों के हेतु "शांतिपूर्ण" तैयारी की अवस्था में दाख़िल हो रहा है। सर्वत्र समाजवादी पार्टियां, मूलतः सर्वहारा पार्टियां, बनायी जा रही हैं, जो बुर्जुआ संसदीय पद्धति का उपयोग करना, अपने दैनिक अख़बार, अपनी शैक्षिक संस्थाएं, अपनी ट्रेड-यूनियनें और अपनी सह-

कारी समितियां क़ायम करना सीखती हैं। मार्क्स की शिक्षा की पूर्ण विजय होती है और **उसका फैलाव आरंभ हो जाता है**। सर्वहारा वर्ग की शक्तियों का चयन करने और एकजुट करने तथा आनेवाले संघर्षों के लिए तैयारी करने का काम धीरे-धीरे, परंतु दृढ़ता के साथ आगे बढ़ने लगता है।

इतिहास का द्वंद्वात्मक विकास ऐसा है कि मार्क्सवाद की सैद्धांतिक विजय उसके शत्रुओं को मार्क्सवादी **नक़ाब चढ़ाने** के लिए बाध्य करती है। अंदर से सड़ा हुआ उदारतावाद समाजवादी **अवसरवाद** के रूप में अपने को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास करता है। ज़बर्दस्त लड़ाइयों के लिए शक्तियों की तैयारी के काल को वे इन लड़ाइयों से इनकार का काल समझते हैं। उजरती ग़ुलामी के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए ग़ुलामों की अवस्था में सुधार का अर्थ वे ग़ुलामों द्वारा अपने आज़ादी के हक़ों की पांच टके में बिक्री समझते हैं। वे कायरतापूर्वक "सामाजिक शांति" (अर्थात ग़ुलामी के साथ शांति), वर्ग संघर्ष के परित्याग, आदि का पाठ पढ़ाते हैं। समाजवादी सांसदों में, मज़दूर आंदोलन के भिन्न-भिन्न पदाधिकारियों और "हमदर्द" बुद्धिजीवियों में उनके बहुत-से पक्षधर होते हैं।

३

अभी अवसरवादी "सामाजिक शांति" पर और "जनवाद" के अंतर्गत विप्लवों की अनावश्यकता पर ख़ुशी भी न मना पाये थे कि एशिया में भीषण विश्वव्यापी तूफ़ानों का एक नया स्रोत निकल आया। रूसी क्रांति के बाद तुर्की, फ़ारसी और चीनी क्रांतियां[6] आ गयीं। आज हम ठीक इन्हीं तूफ़ानों और यूरोप पर उनकी "विपरीत प्रतिच्छाया" के युग में रह रहे हैं। चीन के महान जनतंत्र की नियति चाहे जो भी हो, जिसके ख़िलाफ़ अब विभिन्न "सभ्य" लकड़बग्घे अपने दांत पैने कर रहे हैं, अब संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो एशिया में पुरानी भूदासता को पुनःस्थापित कर दे या एशियाई और अर्द्ध-एशियाई देशों में जनसमुदायों के पराक्रमशील जनवाद को मटियामेट कर दे।

जन-संघर्ष की तैयारी तथा उसके विकास की परिस्थितियों से बेख़बर कुछ लोग यूरोप में पूंजीवाद के ख़िलाफ़ निर्णायक लड़ाई में दीर्घ विलंब होने के कारण नैराश्य और अराजकतावाद में पड़ गये हैं। आज हम देखते

हैं कि यह अराजकतावादी नैराश्य कितना अदूरदर्शिता और बुज़दिलीभरा है।

८० करोड़ आबादीवाले एशिया के उन्हीं यूरोपीय आदर्शों के लिए संघर्ष में शामिल होने से हमें नैराश्य के बजाय आशावाद प्राप्त करना चाहिए।

एशिया की क्रांतियों ने हमें उदारतावाद का वही दब्बूपन और नीचता, जनवादी जनता की आत्मनिर्भरता का वही असाधारण महत्व और हर तरह के बुर्जुआ वर्ग से सर्वहारा वर्ग का वही स्पष्ट अलगाव प्रदर्शित किया है। यूरोप और एशिया के अनुभवों के बाद जो कोई **वर्ग-रहित** राजनीति और **वर्ग-रहित** समाजवाद की बातें करता है, उसे पिंजरे में बंद करके आस्ट्रेलिया के कंगारू या और किसी जानवर के साथ नुमाइश में रख देना चाहिए।

एशिया के बाद यूरोप में भी हलचल पैदा हो गयी है, किंतु यह एशियावाली हलचल नहीं है। १८७२–१९०४ की "शांतिपूर्ण" अवधि सदा के लिए ख़त्म हो चुकी है। महंगाई और ट्रस्टों द्वारा उत्पीड़न ने आर्थिक संघर्ष को वह अभूतपूर्व तीक्ष्णता प्रदान कर दी है, जिसने उदारतावाद द्वारा अधिकतम भ्रष्ट किये गये अंग्रेज़ मज़दूरों तक को संघर्ष के लिए तत्पर कर दिया है। हमारी आंखों के सामने जर्मनी जैसे सर्वाधिक "कट्टर" बुर्जुआ-जंकरवाले* देश में भी राजनीतिक संकट भड़कनेवाला है। उन्मत्त हथियार-बंदी तथा साम्राज्यवादी नीति आधुनिक यूरोप को ऐसी "सामाजिक शांति" में परिणत कर रही हैं, जो बारूद के पीपे के समान है। और **सभी** बुर्जुआ पार्टियों की अवनति तथा सर्वहारा वर्ग की परिपक्वता बराबर आगे बढ़ रही है।

मार्क्सवाद के आविर्भाव के बाद विश्व इतिहास के तीन महान युगों में से हर एक ने मार्क्सवाद के लिए नयी अभिपुष्टि और नयी विजयें प्रस्तुत कीं। लेकिन इतिहास का आनेवाला युग सर्वहारा वर्ग की शिक्षा के रूप में मार्क्सवाद के लिए और भी महान विजय प्रस्तुत करेगा।

१ मार्च, १९१३ को प्रकाशित। खंड २३, पृ० १–४

---

*जंकर – प्रशा में बड़े ज़मींदारों-अभिजातों का वर्ग। –**सं०**

मार्क्सवाद के तीन स्रोत तथा तीन संघटक अंग [7]

पूरे सभ्य जगत में मार्क्स की शिक्षा अपने प्रति उन सभी बुर्जुआ विज्ञानों (सरकारी भी और उदारतावादी भी) की ज़बर्दस्त शत्रुता और घृणा उत्पन्न करती है, जो मार्क्सवाद को एक "हानिकारक पंथ" के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते। इसके अतिरिक्त और किसी रवैये की आशा भी नहीं की जा सकती, क्योंकि वर्ग संघर्ष पर आधारित समाज में "निष्पक्ष" सामाजिक विज्ञान हो ही नहीं सकता। **समस्त** सरकारी तथा उदारतावादी विज्ञान किसी न किसी ढंग से उजरती ग़ुलामी की **रक्षा करता है**, जबकि मार्क्सवाद ने इस ग़ुलामी के ख़िलाफ़ निर्मम युद्ध की घोषणा की है। उजरती ग़ुलामीवाले समाज में निष्पक्ष विज्ञान की आशा करना उतना ही मूर्खतापूर्ण भोलापन है, जितना मिल-मालिकों से इस प्रश्न पर निष्पक्षता की आशा करना कि क्यों न पूंजी के मुनाफ़े में कमी करके मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ा दी जाये।

परंतु बात इतनी ही नहीं है। दर्शनशास्त्र का इतिहास और सामाजिक विज्ञान का इतिहास पूर्ण स्पष्टता के साथ प्रकट करते हैं कि मार्क्सवाद के अंदर "पंथवादिता" जैसी कोई चीज़ नहीं है, इस अर्थ में कि वह कोई ऐसा रूढ़िबद्ध, जड़ मत हो, जो विश्व सभ्यता के विकास के प्रशस्त मार्ग **से हटकर कहीं अलग से** उत्पन्न हुआ हो। इसके विपरीत मार्क्स की प्रतिभा इसी बात में निहित है कि उन्होंने उन प्रश्नों के उत्तर उपलब्ध किये, जिन्हें मानवजाति के प्रमुखतम विचारक पहले ही उठा चुके थे। दर्शनशास्त्र, राजनीतिक अर्थशास्त्र तथा समाजवाद के महानतम प्रतिनिधियों की शिक्षाओं के प्रत्यक्ष तथा सीधे **क्रम** के रूप में ही उनकी शिक्षा का जन्म हुआ।

मार्क्स की शिक्षा सर्वशक्तिमान है, क्योंकि वह सत्य है। वह व्यापक तथा सुसंगत है और मनुष्य को एक ऐसा अखंड विश्वदृष्टिकोण प्रदान करती है, जो किसी भी प्रकार के अंधविश्वास, प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति या बुर्जुआ

उत्पीड़न की किसी भी वकालत की कट्टर विरोधी है। १९वीं शताब्दी में जर्मन दर्शनशास्त्र, आंग्ल राजनीतिक अर्थशास्त्र तथा फ़्रांसीसी समाजवाद के रूप में मानवजाति ने जो भी सर्वश्रेष्ठ निर्मित किया है, मार्क्सवाद उनका ही क़ानूनी उत्तराधिकारी है।

मार्क्सवाद के इन्हीं तीन स्रोतों पर, जो साथ ही उसके संघटक अंग भी हैं, हम संक्षेप में विचार करेंगे।

१

मार्क्सवाद का दर्शन **भौतिकवाद** है। यूरोप के पूरे आधुनिक इतिहास में और विशेष रूप से १८वीं शताब्दी के अंत में फ़्रांस के अंदर, जहां हर प्रकार के मध्ययुगीन कचरे के विरुद्ध, संस्थाओं तथा विचारों में भूदासता के खिलाफ़ निर्णायक संघर्ष चलाया गया, भौतिकवाद एकमात्र ऐसा सुसंगत दर्शन सिद्ध हुआ है, जो प्राकृतिक विज्ञानों की समस्त शिक्षाओं की कसौटी पर खरा उतरा और अंधविश्वास, पाखंड, आदि का विरोधी निकला। इसलिए जनवाद के शत्रुओं ने भौतिकवाद का "खंडन करने", उसकी जड़ खोदने और उसे कलंकित करने की पूरी चेष्टा की और भाववादी दर्शन के विविध रूपों की वकालत की, जिसका अर्थ हमेशा किसी न किसी रूप में धर्म की वकालत या उसका समर्थन होता है।

मार्क्स तथा एंगेल्स ने अत्यंत दृढ़तापूर्वक भौतिकवादी दर्शन की हिमायत की और बार-बार इस बात को समझाया कि इस आधार से किसी भी प्रकार का विचलन कितनी भारी भूल है। उनके विचारों की अत्यंत सुस्पष्ट तथा पूर्ण व्याख्या एंगेल्स की 'लुडविग फ़ायरबाख़' तथा 'ड्यूहरिंग मत-खंडन' नामक रचनाओं में की गयी है, जो 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' की तरह ही हर वर्ग-चेतन मज़दूर के लिए मार्क्सवाद के गुटके हैं।

परंतु मार्क्स १८वीं शताब्दी के भौतिकवाद पर आकर रुक नहीं गये, उन्होंने दर्शन को आगे बढ़ाया। उन्होंने उसे जर्मन क्लासिकीय दर्शन की, विशेषतः हेगेल की उस दर्शन-पद्धति की उपलब्धियों से समृद्ध किया, जिसका परिणाम फ़ायरबाख़ का भौतिकवाद था। इन उपलब्धियों में सबसे मुख्य **द्वंद्ववाद** है, अर्थात अपने पूर्णतम, गहनतम, एकांगीपन से मुक्त रूप में विकास की शिक्षा, मानव ज्ञान की सापेक्षता की शिक्षा, जिसमें

हमें सतत विकासमान भूतद्रव्य का प्रतिबिंब मिलता है। बुर्जुआ दार्शनिकों की शिक्षाओं के बावजूद, जो "नये सिरे से" पुराने और सड़े हुए भाववाद की ओर लौट रहे हैं, प्राकृतिक विज्ञान की नवीनतम खोजों – रेडियम, इलेक्ट्रोन, मूल तत्वों के रूपांतरण – से मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की अद्‌भुत रूप से पुष्टि हुई है।

मार्क्स ने भौतिकवादी दर्शन को पूरी गहराई दी तथा पूर्णतः विकसित किया और उसके प्रकृति-संज्ञान को **मानव समाज** के संज्ञान पर लागू किया। मार्क्स का **ऐतिहासिक भौतिकवाद** वैज्ञानिक चिंतन की महान सिद्धि था। पहले इतिहास तथा राजनीति से संबंधित विचारों के क्षेत्र में जो गड़बड़ी और मनमानी फैली हुई थी, उसके स्थान पर आश्चर्यजनक रूप से पूर्ण तथा क्रमबद्ध वैज्ञानिक सिद्धांत की स्थापना हुई, जो बताता है कि किस प्रकार उत्पादक शक्तियों के विकास के फलस्वरूप सामाजिक जीवन की एक व्यवस्था में से एक दूसरी और उच्चतर व्यवस्था का विकास होता है – उदाहरण के लिए, भूदास व्यवस्था में से किस प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था विकसित होती है।

जिस प्रकार मनुष्य का संज्ञान उससे स्वतंत्र अस्तित्व रखनेवाली प्रकृति, अर्थात विकासमान भूतद्रव्य को प्रतिबिंबित करता है, उसी प्रकार मनुष्य का **सामाजिक संज्ञान** (अर्थात उसके विविध विचार तथा मत – दार्शनिक, धार्मिक, राजनीतिक, आदि) समाज की **आर्थिक व्यवस्था** को प्रतिबिंबित करता है। राजनीतिक संस्थाएं आर्थिक नींव पर खड़ा ऊपरी ढांचा होती हैं। उदाहरण के लिए, हम देखते हैं कि आधुनिक यूरोपीय राज्यों के विभिन्न राजनीतिक रूप सर्वहारा वर्ग पर बुर्जुआ वर्ग के प्रभुत्व को दृढ़ बनाने के काम आते हैं।

मार्क्स का दर्शन भौतिकवादी दर्शन का पूरा निखरा हुआ रूप है, जिसने मानवजाति को, विशेष रूप से मज़दूर वर्ग को संज्ञान के शक्तिशाली साधन प्रदान किये हैं।

२

इस बात को मान लेने के बाद कि आर्थिक व्यवस्था ही वह नींव होती है, जिस पर राजनीतिक ऊपरी ढांचा खड़ा होता है, मार्क्स ने सबसे अधिक

ध्यान इसी ग्रार्थिक व्यवस्था के ग्रध्ययन में लगाया। मार्क्स की प्रमुख रचना 'पूंजी' ग्राधुनिक, ग्रर्थात पूंजीवादी समाज की ग्रार्थिक व्यवस्था के ही ग्रध्ययन को ग्रर्पित है।

मार्क्स से पहले क्लासिकीय राजनीतिक ग्रर्थशास्त्र की उत्पत्ति इंगलैंड में हुई थी, जो पूंजीवादी देशों में सबसे उन्नत देश था। ऐडम स्मिथ ग्रौर डेविड रिकार्डो ने ग्रार्थिक व्यवस्था के विषय में ग्रपनी गवेषणाग्रों द्वारा **मूल्य के श्रम-सिद्धांत** की नींव डाली। मार्क्स ने उनके काम को ग्रौर ग्रागे बढ़ाया। उन्होंने इस सिद्धांत को प्रमाणित किया ग्रौर उसे सुसंगत रूप से विकसित किया। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि हर माल का मूल्य इस बात से निर्धारित होता है कि उसके उत्पादन में सामाजिक दृष्टि से कितना ग्रावश्यक श्रम-काल लगाया गया है।

बुर्जुग्रा ग्रर्थशास्त्रियों ने जहां वस्तुग्रों के पारस्परिक संबंध (एक माल के बदले में दूसरे माल के विनिमय) को देखा था, वहां मार्क्स ने **मनुष्यों के पारस्परिक संबंध** का रहस्योद्‌घाटन किया। मालों का विनिमय मंडी के माध्यम से ग्रलग-ग्रलग उत्पादकों के पारस्परिक संबंध को व्यक्त करता है। **मुद्रा** इस बात की द्योतक है कि यह संबंध निरंतर घनिष्ठतर होता जा रहा है ग्रौर ग्रलग-ग्रलग उत्पादकों के समूचे ग्रार्थिक जीवन को एक समष्टि में ग्रभिन्न रूप से बांध रहा है। **पूंजी** इस संबंध के विकास की ग्रगली मंज़िल है: मनुष्य की श्रम-शक्ति एक माल बन जाती है। उजरती मज़दूर ग्रपनी श्रम-शक्ति को भूमि, कारख़ाने तथा श्रम के साधनों के मालिक के हाथ बेच देता है। मज़दूर कार्य-दिवस का एक भाग स्वयं ग्रपने ग्रौर ग्रपने परिवार के भरण-पोषण के ख़र्च की पूर्ति के लिए इस्तेमाल करता है (मज़-दूरी), ग्रौर दिन के शेष भाग में वह बिना पारिश्रमिक के श्रम करता है ग्रौर इस प्रकार पूंजीपति के लिए **बेशी मूल्य** का सृजन करता है, जो पूंजीपति वर्ग के लिए मुनाफ़े का स्रोत, संपदा का स्रोत है।

बेशी मूल्य की शिक्षा मार्क्स के ग्रार्थिक सिद्धांत की ग्राधारशिला है।

मज़दूर के श्रम द्वारा उत्पन्न की गयी पूंजी मज़दूर को कुचलती है, छोटे-छोटे मालिकों को तबाह करके बेरोज़गारों की पलटन खड़ी कर देती है। उद्योग के क्षेत्र में बड़े पैमाने के उत्पादन की विजय तुरंत स्पष्ट हो जाती है, परंतु कृषि में भी हम यही क्रिया देखते हैं: बड़े पैमाने की पूंजी-

वादी कृषि की श्रेष्ठता बढ़ती जाती है, मशीनों का उपयोग बढ़ता जाता है, किसानी अर्थव्यवस्था के गले में मुद्रा-पूंजी का फंदा पड़ जाता है और अपनी पिछड़ी हुई प्रविधि के बोझ के नीचे उसका ह्रास होने लगता है, वह तबाह हो जाती है। कृषि में छोटे पैमाने के उत्पादन का ह्रास भिन्न रूप धारण करता है, परंतु ख़ुद ह्रास एक निर्विवाद तथ्य है।

छोटे पैमाने के उत्पादन को तबाह करके पूंजी श्रम की उत्पादिता में वृद्धि करती है और बड़े से बड़े पूंजीपतियों के संघों के लिए इजारेदारी की स्थिति उत्पन्न करती है। उत्पादन स्वयं अधिकाधिक सामाजिक रूप धारण करता जाता है – लाखों-करोड़ों मज़दूर एक योजनाबद्ध आर्थिक संगठन में एक-दूसरे से बंध जाते हैं, परंतु इस सामूहिक श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुओं को मुट्ठी भर पूंजीपति हड़प लेते हैं। उत्पादन की अराजकता, संकट, मंडियों की बेतहाशा तलाश और जनसाधारण की जीवन-वृत्ति में अनिश्चितता बढ़ती जाती है।

पूंजी पर मज़दूरों की निर्भरता को बढ़ाने के साथ ही पूंजीवादी व्यवस्था समूहबद्ध श्रम की महान शक्ति को जन्म देती है।

माल-उत्पादन पर आधारित अर्थव्यवस्था के प्रथम अंकुरों से लेकर, साधारण विनिमय से लेकर मार्क्स ने पूंजीवाद के विकासक्रम का उसके उच्चतम रूप, अर्थात बड़े पैमाने के उत्पादन तक पता लगाया।

और पुराने तथा नये, सभी पूंजीवादी देशों का अनुभव वर्ष प्रति वर्ष अधिकाधिक मज़दूरों के सामने मार्क्स की इस शिक्षा के सत्य को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता जा रहा है।

पूंजीवाद ने सारे संसार में विजय प्राप्त कर ली है, परंतु यह विजय पूंजी पर श्रम की विजय की भूमिका मात्र है।

३

जब भूदास-प्रणाली का तख़्ता उलट दिया गया और इस पृथ्वी पर "स्वतंत्र" पूंजीवादी समाज का उदय हुआ, तब यह बात तुरंत स्पष्ट हो गयी कि इस स्वतंत्रता का अर्थ श्रमिकों के उत्पीड़न तथा शोषण की एक नयी व्यवस्था है। इस उत्पीड़न के प्रतिबिंब के रूप में और इसके विरोध में फ़ौरन विविध प्रकार के समाजवादी मत जन्म लेने लगे। परंतु प्रारंभिक

समाजवाद **काल्पनिक** समाजवाद था। वह पूंजीवादी समाज की ग्रालोचना करता था, उसकी निंदा करता था ग्रौर उसे कोसता था, वह उसके विनाश के स्वप्न देखता था, एक बेहतर व्यवस्था की सुखद कल्पना करता था ग्रौर धनवान लोगों को शोषण की ग्रनैतिकता का क़ायल करने का प्रयास करता था।

परंतु काल्पनिक समाजवाद वास्तविक समाधान का निर्देश नहीं कर सका। वह न तो पूंजीवाद के ग्रंतर्गत उजरती ग़ुलामी के ग्रसली स्वरूप की व्याख्या कर सका, न उसके विकास के नियमों का पता लगा सका ग्रौर न ही उस **सामाजिक शक्ति** की ग्रोर संकेत कर सका, जो एक नये समाज की रचना करने की क्षमता रखती है।

इसी दौरान सामंतवाद ग्रौर भूदास-प्रणाली के पतन के साथ यूरोप भर में ग्रौर विशेष रूप से फ़्रांस में जो तूफ़ानी क्रांतियां हुईं, उनसे यह बात ग्रधिकाधिक स्पष्ट होती गयी कि समस्त विकास का ग्राधार ग्रौर उसकी प्रेरक शक्ति **वर्गों का संघर्ष** है।

सामंती वर्ग पर राजनीतिक स्वतंत्रता की एक भी विजय ऐसी नहीं थी, जो घोर प्रतिरोध का सामना किये बिना प्राप्त की गयी हो। एक भी पूंजीवादी देश ऐसा नहीं है, जो पूंजीवादी समाज के विभिन्न वर्गों के बीच ज़िंदगी ग्रौर मौत की लड़ाई के बिना न्यूनाधिक रूप में स्वतंत्र तथा जनवादी ग्राधार पर विकसित हुग्रा हो।

मार्क्स की प्रतिभा इस बात में निहित है कि वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इससे वह निष्कर्ष निकाला, जो विश्व इतिहास हमें सिखाता है, ग्रौर सुसंगत रूप से इस निष्कर्ष को लागू किया। यह निष्कर्ष **वर्ग संघर्ष** की शिक्षा है।

लोग राजनीति में सदा छल ग्रौर ग्रात्म-प्रवंचना के नादान शिकार हुए हैं ग्रौर तब तक होते रहेंगे, जब तक वे तमाम नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक ग्रौर सामाजिक कथनों, घोषणाग्रों ग्रौर वायदों के पीछे किसी न किसी वर्ग के **हितों** का पता लगाना नहीं सीखेंगे। सुधारों ग्रौर बेहतरी के समर्थक जब तक यह नहीं समझ लेंगे कि हर पुरानी संस्था, वह कितनी ही बर्बरतापूर्ण ग्रौर सड़ी हुई क्यों न प्रतीत होती हो, किन्हीं शासक वर्गों के बल-बूते पर ही क़ायम रहती है, तब तक पुरानी व्यवस्था के संरक्षक

उन्हें बेवक़ूफ़ बनाते रहेंगे। ग्रौर इन वर्गों के प्रतिरोध को चकनाचूर करने का **केवल एक** तरीक़ा है ग्रौर वह यह कि जिस समाज में हम रह रहे हैं, उसी में उन शक्तियों का पता लगायें ग्रौर उन्हें संघर्ष के लिए जागृत तथा संगठित करें, जो पुरातन को विनष्ट कर नूतन का सृजन करने में समर्थ हो सकती हैं ग्रौर जिन्हें ग्रपनी सामाजिक स्थिति के कारण समर्थ होना चाहिए।

केवल मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन ने ही सर्वहारा वर्ग को उस ग्रात्मिक दासता से मुक्ति पाने का मार्ग दिखाया है, जिसमें सभी उत्पीड़ित वर्ग ग्रब तक सिसकते हुए ग्रपने दिन काट रहे थे। केवल मार्क्स के ग्रार्थिक सिद्धांत ने ही पूंजीवाद की सामान्य व्यवस्था में सर्वहारा वर्ग की वास्तविक स्थिति की व्याख्या की है।

ग्रमरीका से लेकर जापान तक ग्रौर स्वीडन से लेकर दक्षिणी ग्रफ़्रीका तक सारे संसार में सर्वहारा वर्ग के स्वतंत्र संगठनों की संख्या बढ़ती जा रही है। ग्रपना वर्ग संघर्ष चलाकर सर्वहारा वर्ग जागृत ग्रौर शिक्षित हो रहा है, बुर्जुग्रा समाज के पूर्वाग्रहों से मुक्त होता जा रहा है, ग्रपनी पांतों को ग्रौर भी घनिष्ठ रूप से एकजुट कर रहा है ग्रौर ग्रपनी सफलताग्रों को ग्रांकना सीखता जा रहा है; वह ग्रपनी शक्तियों को फ़ौलादी बना रहा है ग्रौर ग्रदम्य रूप से विकसित हो रहा है।

३ मार्च, १९१३ को प्रकाशित। खंड २३, पृ० ४०–४८

मार्क्सवाद श्रौर संशोधनवाद

प्रसिद्ध उक्ति है कि अगर रेखागणित की स्वयंसिद्धियां लोगों के हितों से टकरातीं, तो शायद उन्हें भी ग़लत साबित किया जाता। धर्मशास्त्र के पुराने पूर्वाग्रहों से टकरानेवाले प्राकृतिक-ऐतिहासिक सिद्धांतों ने अधिकतम प्रचंड संघर्ष पैदा किये श्रौर अब तक पैदा करते आये हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि मार्क्स का सिद्धांत, जो आधुनिक समाज के अग्रगामी वर्ग की शिक्षा तथा संगठन में प्रत्यक्ष रूप से सहायता पहुंचाता है, उस वर्ग के कार्यभार बताता है श्रौर वर्तमान समाज-व्यवस्था की जगह एक नयी व्यवस्था की स्थापना की अनिवार्यता (आर्थिक विकास की बदौलत) सिद्ध करता है, कोई आश्चर्य नहीं कि इस सिद्धांत को अपने जीवन-पथ पर एक-एक क़दम बढ़ाने के लिए लड़ना पड़ा।

कहने की ज़रूरत नहीं कि यह बुर्जुआ विज्ञान तथा दर्शन पर लागू होता है, जिन्हें संपत्तिवान वर्गों के उदीयमान नौजवानों को मतिमूढ़ बनाने श्रौर उन्हें भीतरी तथा बाहरी शत्रुओं का "पीछा करने की शिक्षा" देने के लिए सरकारी प्रोफ़सर सरकारी ढंग से पढ़ाते हैं। यह विज्ञान तो मार्क्स-वाद की बाबत सुनना भी नहीं चाहता, वह घोषित करता है कि उसका तो खंडन श्रौर उन्मूलन हो चुका है; समाजवाद के खंडन द्वारा अपनी जीव-नोन्नति का मार्ग बना रहे युवा वैज्ञानिक श्रौर हर प्रकार की जीर्ण "पद्ध-तियों" की सीखों को बरक़रार रखनेवाले जरा-जर्जर वृद्धजन, दोनों ही समान उत्साह से मार्क्स पर प्रहार करते हैं। मार्क्सवाद के विकास श्रौर मज़दूर वर्ग में उसके विचारों के प्रसार तथा दृढ़ीकरण का फल यह होता है कि सरकारी विज्ञान द्वारा 'उन्मूलन' के बाद हर बार अधिक शक्ति-शाली, अधिक इस्पाती तथा अधिक जीवंत बन जानेवाले मार्क्सवाद पर ये बुर्जुआ हमले अनिवार्यतः बढ़ते श्रौर तेज़ होते जाते हैं।

लेकिन मज़दूर वर्ग के संघर्ष से संबंधित श्रौर मुख्यतः सर्वहारा वर्ग के बीच प्रचलित शिक्षाओं में भी मार्क्सवाद की स्थिति तुरंत दृढ़ होने

से बहुत दूर रही। अपने अस्तित्व की पहली अर्द्धशताब्दी में (१८४० के बाद) मार्क्सवाद उन सिद्धांतों से लड़ता रहा, जो मूलतः उसके विरोधी थे। १८४०–१८४५ के दौरान मार्क्स और एंगेल्स ने आमूलवादी तरुण हेगेलपंथियों[8] से हिसाब चुकता किया, जिनका दृष्टिकोण दार्शनिक भाववादी दृष्टिकोण पर आधारित था। १८४५–१८४६ के दौरान यह संघर्ष आर्थिक शिक्षाओं के क्षेत्र में, प्रूदोंवाद[9] के विरोध में प्रगट हुआ। १८४८ के तूफ़ानी साल में सामने आनेवाली पार्टियों तथा शिक्षाओं की आलोचना के रूप में छठी दशाब्दी में इस संघर्ष की निष्पत्ति हुई। सातवीं दशाब्दी में यह संघर्ष आम सिद्धांतों के क्षेत्र से ऐसे क्षेत्र में पहुंचा, जो प्रत्यक्ष मज़दूर आंदोलन के अधिक निकट था: इंटरनेशनल से बकूनिनवाद[10] का निष्कासन। जर्मनी के अंदर आठवीं दशाब्दी के शुरू में प्रूदोंवादी म्यूलबर्गर और अंत में प्रत्यक्षवादी ड्यूहरिंग कुछ समय के लिए आगे आ गये। लेकिन सर्वहारा वर्ग पर दोनों का ही प्रभाव बिलकुल नगण्य हो चुका था। मज़दूर आंदोलन की सभी दूसरी विचारधाराओं पर मार्क्सवाद निस्संदेह विजयी हो रहा था।

पिछली सदी की अंतिम दशाब्दी तक वह विजय मुख्यतया पूरी हो गयी। लैटिन देशों में भी, जहां प्रूदोंवाद की परंपराएं अधिकतम काल तक क़ायम रही थीं, मज़दूरों की पार्टियों ने वस्तुतः मार्क्सवादी आधार पर अपने कार्यक्रम और कार्यनीति की रचना की। मीयादी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेसों के रूप में मज़दूर आंदोलन का पुनरुज्जीवित अंतर्राष्ट्रीय संगठन तत्काल और प्रायः बिना संघर्ष के सभी मूल बातों में मार्क्सवाद के आधार पर खड़ा हो गया। लेकिन जब मार्क्सवाद ने अपने प्रति वैमनस्य रखनेवाली सभी न्यूनाधिक अविकल शिक्षाओं को निकाल बाहर किया, तब उन शिक्षाओं में अभिव्यक्त प्रवृत्तियां अपने लिए अन्य मार्ग ढूंढ़ने लगीं। संघर्ष के रूप और कारण बदल गये, लेकिन संघर्ष चलता रहा। मार्क्सवाद के अस्तित्व की दूसरी अर्द्धशताब्दी (पिछली सदी की अंतिम दशाब्दी से) मार्क्सवाद में ही निहित एक मार्क्सवाद विरोधी प्रवृत्ति द्वारा किये गये संघर्ष से प्रारंभ हुई।

भूतपूर्व कट्टर मार्क्सवादी बर्नस्टीन ने अधिकतम कोलाहलपूर्वक और मार्क्स के संशोधन की, मार्क्स पर पुनर्विचार की, संशोधनवाद की अधिकतम अविकल अभिव्यक्ति के साथ सामने आकर इस प्रवृत्ति को अपना नाम प्रदान किया[11]। रूस में भी, जहां देश के आर्थिक पिछड़ेपन और

भूदासता के अवशेषों के बोझ से झुकी किसान आबादी के प्राधान्य के कारण ग़ैर मार्क्सवादी समाजवाद स्वभावतः अधिकतम काल तक जमा रहा, वह ठीक हमारी आंखों के सामने संशोधनवाद में परिवर्तित होता जा रहा है। जैसे कृषि के प्रश्न पर (सारी ज़मीन के म्युनिसपलीकरण का कार्यक्रम) वैसे ही कार्यक्रम तथा कार्यनीति के आम प्रश्नों पर हमारे सामाजिक-नरोद-वादी अपने ढंग से अविकल, मूलतः मार्क्सवाद विरोधी पुरानी पद्धति के मृतप्राय, कालातीत अवशेषों के स्थान पर मार्क्स में "संशोधनों" को अधिकाधिक प्रतिष्ठापित करते जा रहे हैं।

प्राक्-मार्क्सवादी समाजवाद चकनाचूर हो चुका है। अब वह अपने स्वतंत्र आधार पर नहीं, बल्कि संशोधनवाद के रूप में मार्क्सवाद के आम आधार पर संघर्ष चला रहा है। आइये, देखें कि संशोधनवाद का वैचारिक अंतर्य क्या है।

दर्शन के क्षेत्र में संशोधनवाद बुर्जुआ अध्यापकीय "विज्ञान" के पीछे चला। प्रोफ़ेसर लोग "कान्ट की ओर वापस" गये और संशोधनवाद नवकान्टपंथियों[12] के पीछे घिसटने लगा। प्रोफ़ेसर लोग दार्शनिक भौतिकवाद के ख़िलाफ़ पादरियों द्वारा हज़ारों बार कही गयी घिसी-पिटी बातें दुहराने लगे और संशोधनवादी अनुग्रहपूर्वक मुस्कुराते हुए बुदबुदाते रहे (शब्दशः नवीनतम गुटके के अनुसार) कि भौतिकवाद तो बहुत पहले "ग़लत साबित हो चुका था"; प्रोफ़ेसरों ने "मरे हुए कुत्ते" की तरह हेगेल का अपमान किया और ख़ुद हेगेल के भाववाद से भी कई हज़ार गुना तुच्छ और घिसे-पिटे भाववाद का प्रचार करते हुए द्वंद्ववाद के संबंध में तिरस्कारपूर्वक कंधे बिचकाये और संशोधनवादी "चालाकीभरे" (और क्रांतिकारी) द्वंद्ववाद के स्थान पर "सीधे-सादे" (और शांतिमय) "विकासक्रम" का प्रतिष्ठापन करते हुए उनके पीछे-पीछे विज्ञान के दार्शनिक विकृतीकरण के दलदल में धंस पड़े; प्रोफ़ेसर लोग अपनी भाववादी तथा "आलोचनात्मक", दोनों पद्धतियों का प्रभुत्वशील मध्ययुगीन "दर्शन" के साथ (याने धर्म-शास्त्र के साथ) ताल-मेल बैठाते हुए अपना सरकारी वेतन अर्जित कर रहे थे और संशोधनवादी आधुनिक राज्य के संबंध में नहीं, बल्कि अग्रगामी वर्ग की पार्टी के संबंध में धर्म को "निजी मामला" बनाने का प्रयत्न करते हुए उनके पास खिंचते गये।

मार्क्स में ऐसे "संशोधनों" का वास्तविक वर्गीय अर्थ क्या था– यह बताना नहीं पड़ेगा, वह स्वतःस्पष्ट है। हम केवल इस बात का उल्लेख करेंगे कि अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद में अकेले मार्क्सवादी प्लेखानोव थे, जिन्होंने संशोधनवादियों द्वारा बकी गयी नितांत घिसी-पिटी बातों की सुसंगत द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के दृष्टिकोण से आलोचना की। इस बात पर दृढ़तापूर्वक ज़ोर देना इसलिए और भी आवश्यक है कि आजकल प्लेख़ानोव की कार्यनीतिक अवसरवाद की आलोचना के बहाने पुराने और प्रतिगामी दार्शनिक कूड़े को चोरी से अंदर लाने की सख़्त ग़लत कोशिशें की जा रही हैं*।

राजनीतिक अर्थशास्त्र पर आने में सबसे पहले यह उल्लेख करना ज़रूरी है कि इस क्षेत्र में संशोधनवादियों के "संशोधन" कहीं अधिक बहुमुखी तथा ब्योरेवार थे। "आर्थिक विकास के नये तथ्यों" द्वारा लोगों को प्रभावित करने के प्रयत्न किये गये। कहा गया कि कृषक अर्थव्यवस्था में संकेंद्रण तथा बड़े उत्पादन द्वारा छोटे का उन्मूलन बिलकुल नहीं होता और वाणिज्य तथा उद्योग में भी बेहद धीरे-धीरे होता है। कहा गया कि अब संकट अधिक विरल तथा अधिक दुर्बल हो गये हैं और संभवतः कार्टेल और ट्रस्ट पूंजी को संकट बिलकुल मिटा देने का मौक़ा देंगे। कहा गया कि वर्गीय वैरभाव के कुंठित और मद्धिम होने की प्रवृत्ति के कारण वह "ध्वंस का सिद्धांत", जिस ओर पूंजीवाद बढ़ रहा है, निराधार है। अंत में कहा गया कि मार्क्स के मूल्य-सिद्धांत को भी बोम-बावेर्क के अनुसार संशोधित करना ग़लत न होगा।

इन प्रश्नों पर संशोधनवादियों के साथ संघर्ष ने अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद

---

* देखें बोगदानोव, बज़ारोव, आदि की पुस्तक 'मार्क्सवादी दर्शन की रूपरेखा'। इस पुस्तक पर विचार करने का यह स्थान नहीं है और मैं इस समय केवल इतना ही कहकर बस करूंगा कि निकट भविष्य में ही मैं एक लेखमाला या विशेष पुस्तिका में यह सिद्ध करूंगा कि इस पुस्तक में नवकान्टपंथी संशोधनवादियों के विषय में कही गयी सारी बातें मूलतः इन "नये" नवह्यूमपंथी और नवबर्कलेपंथी संशोधनवादियों पर भी लागू होती हैं। (देखें व्ला० इ० लेनिन, 'भौतिकवाद और इंद्रियानुभविक आलोचना'।–सं०)

के सैद्धांतिक विचारों को वैसा ही फलप्रद पुनरुज्जीवन प्रदान किया, जैसा उससे बीस साल पहले ड्यूहरिंग के साथ एंगेल्स के वादानुवाद ने किया था। संशोधनवादियों के तर्कों का तथ्यों तथा आंकड़ों को लेकर विश्लेषण किया गया। यह सिद्ध कर दिया गया कि संशोधनवादी आधुनिक लघु उत्पादन को नियमित रूप से अतिरंजित कर रहे हैं। उद्योगों में ही नहीं, बल्कि कृषि में भी लघु **उत्पादन** पर बड़े उत्पादन की तकनीकी तथा वाणिज्यिक श्रेष्ठता की बात अकाट्य तथ्यों द्वारा सिद्ध होती है। लेकिन कृषि में माल-उत्पादन का विकास कहीं क्षीण है और आधुनिक सांख्यिकीविद तथा अर्थशास्त्री कृषि की उन विशेष शाखाओं का (और कभी-कभी संक्रियाओं तक का) आम तौर से पता लगाने में अच्छी तरह समर्थ नहीं हैं, जो विश्व अर्थव्यवस्था के **विनिमय** में कृषि के अधिकाधिक फंसाव को अभिव्यक्त करती हैं। विनिमयहीन अर्थव्यवस्था के खंडहरों पर लघु उत्पादन टिका हुआ है आहार को अंतहीन रूप से बदतर बनाने के, चिरकालिक भुखमरी के, काम के दिन को लंबा बनाने के, पशुधन की गुणवत्ता और देखरेख को बदतर बनाने के ज़रिये, एक शब्द में, उन्हीं साधनों के ज़रिये, जिनके ज़रिये पूंजीवादी मैनुफ़ैक्चर के विरुद्ध दस्तकारी उत्पादन टिका रहा। विज्ञान और तकनीक का हर अग्रगामी क़दम अनिवार्यतः और निर्ममतापूर्वक पूंजीवादी समाज के अंदर लघु उत्पादन की जड़ें खोदता है और इस प्रक्रिया के सभी रूपों की, जो अकसर पेचीदे और उलझे होते हैं, छानबीन करना और लघु उत्पादनकर्त्ताओं के सामने यह साबित कर दिखाना समाजवादी अर्थशास्त्र का काम है कि पूंजीवाद के तहत उनका टिक पाना असंभव है, कि पूंजीवाद के तहत किसानी अर्थव्यवस्था के लिए कोई आशा नहीं है, कि किसानों के लिए सर्वहारा वर्ग का दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। संशोधनवादियों ने इस मसले पर एकतरफ़ा ढंग से खींचे-बटोरे तथ्यों का, उन्हें पूंजीवाद के पूरे ढांचे से जोड़े बिना, सतही सामान्यीकरण करके वैज्ञानिक दृष्टि से गुनाह किया। राजनीतिक दृष्टि से उनका यह गुनाह था कि उन्होंने अनिवार्यतः, चाहे या अनचाहे, किसानों का क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग का दृष्टिकोण अपनाने के बजाय, मिल्कियों का (अर्थात बुर्जुआ वर्ग का) दृष्टिकोण अपनाने के लिए आह्वान किया, अथवा उन्हें प्रेरित किया।

संकटों के सिद्धांत और ध्वंस के सिद्धांत के संबंध में संशोधनवाद की स्थिति और भी बुरी थी। केवल अत्यंत संक्षिप्त काल तक और केवल अधिकतम अदूरदर्शी लोग ही चंद बरसों की औद्योगिक गरमबाज़ारी और ख़ुशहाली से प्रभावित होकर मार्क्स की शिक्षा की नींव को नया रूप देने की बात सोच सकते थे। वास्तविकता ने संशोधनवादियों को बहुत शीघ्र दिखा दिया कि संकटों के दिन बीते नहीं हैं: ख़ुशहाली के बाद संकट ने चढ़ाई कर दी। अलग-अलग संकटों के रूप, उनका अनुक्रम और चित्र बदल गये, पर संकट पूंजीवादी व्यवस्था के अनिवार्य उपादान बने रहे। कार्टेलों और ट्रस्टों ने उत्पादन को एकबद्ध करने के साथ ही सब के देखते-देखते उत्पादन की अराजकता, सर्वहारा वर्ग की ग़रीबी और पूंजी द्वारा किये जानेवाले उत्पीड़न को ज़ोरदार बना दिया और इस प्रकार वर्ग वि-रोधों को अभूतपूर्व सीमा तक तीव्र कर दिया। पूंजीवाद ध्वंस की ओर बढ़ रहा है – जैसे अलग-अलग राजनीतिक तथा आर्थिक संकटों के अर्थ में, वैसे ही पूरी पूंजीवादी व्यवस्था के पूर्ण विनाश के अर्थ में भी – यह बात ठीक नवीनतम विराट ट्रस्टों ने ही विशेष स्पष्टता के साथ और विशेष व्यापक पैमाने पर प्रदर्शित की। हाल का अमरीकी वित्तीय संकट, सारे यूरोप में व्याप्त बेरोज़गारी की भयानक तीव्रता और सबसे बढ़कर वह आसन्न औद्योगिक संकट, जिसके अनेक लक्षण दिखाई देने लगे हैं – इन सारी बातों का नतीजा यह हुआ है कि संशोधनवादियों के हाल के "सिद्धांत" सभी द्वारा, लगता है, ख़ुद उनमें से भी बहुतेरों द्वारा, भुला दिये गये हैं। लेकिन उन सबक़ों को नहीं भुलाया जाना चाहिए, जो बुद्धि-जीवियों की इस अस्थिरता से मज़दूर वर्ग ने सीखे हैं।

मूल्य-सिद्धांत की बाबत केवल यह कहना काफ़ी है कि बोम-बावेर्क के ढंग की ओर बहुत अस्पष्ट संकेतों और उस पर उच्छ्वासों के अतिरिक्त संशोधनवादियों ने बिलकुल कुछ नहीं दिया और इसी कारण वैज्ञानिक विचारों के विकास पर कोई छाप नहीं छोड़ी।

राजनीति के क्षेत्र में संशोधनवाद ने मार्क्सवाद के आधार, याने वर्ग संघर्ष की शिक्षा में संशोधन करने का सचमुच प्रयत्न किया। हमसे कहा गया कि राजनीतिक स्वतंत्रता, जनवाद और सार्विक मताधिकार वर्ग संघर्ष के आधार को निश्शेष कर देते हैं और 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' की इस

पुरानी प्रस्थापना को ग़लत बना देते हैं कि मज़दूरों का कोई पितृदेश नहीं होता। चूंकि जनवाद में "बहुसंख्या की इच्छा" प्रभुत्वशील होती है, इसलिए हमें राज्य को वर्गीय प्रभुत्व के उपकरण के रूप में नहीं देखना चाहिए, प्रतिगामियों के ख़िलाफ़ प्रगतिशील सामाजिक-सुधारवादी बुर्जुआ वर्ग के साथ गंठजोड़ से इनकार नहीं करना चाहिए।

यह निर्विवाद है कि संशोधनवादियों की इन आपत्तियों ने काफ़ी सुगठित विचार-पद्धति का, याने चिर-परिचित उदारतावादी-बुर्जुआ विचारों का रूप धारण कर लिया। उदारतावादी सदा कहा करते हैं कि बुर्जुआ संसदवाद वर्गों तथा वर्ग विभेदों को निश्शेष करता है, क्योंकि मतदान का अधिकार, राजकीय कार्यों में शिरकत का अधिकार बिना भेदभाव के सभी नागरिकों को होता है। १६ वीं सदी के उत्तरार्द्ध का समस्त यूरोपीय इतिहास और २० वीं सदी के शुरू की रूसी क्रांति का समस्त इतिहास साक्षात रूप में प्रदर्शित करता है कि ऐसे विचार कितने बेतुके हैं। "जनवादी" पूंजीवाद की आज़ादी के तहत आर्थिक भेद कमज़ोर नहीं, बल्कि ज़ोरदार और तीखे होते जाते हैं। संसदवाद वर्गीय उत्पीड़न के उपकरण के रूप में अधिकतम जनवादी बुर्जुआ जनतंत्रों के सार को मिटाता नहीं, बल्कि बेनक़ाब कर देता है। राजनीतिक घटनाओं में जो लोग पहले सक्रिय भाग लेते थे, उनकी अपेक्षा बेअंदाज़ अधिक विस्तृत आबादी को प्रबुद्ध तथा संगठित करने में सहायता पहुंचाकर संसदवाद संकटों तथा राजनीतिक क्रांतियों को मिटाने की नहीं, बल्कि ऐसी क्रांतियों के समय गृहयुद्ध को तीव्रतम बना देने की तैयारी करता है। १८७१ के वसंत की पेरिसवाली और १६०५ की सर्दियों की रूसी घटनाओं ने स्पष्टतम ढंग से दिखा दिया कि गृहयुद्ध में ऐसी तीव्रता किस तरह अनिवार्यतः आ जाती है। सर्वहारा आंदोलन के दमन के लिए क्षण भर भी आगा-पीछा किये बिना फ़्रांसीसी बुर्जुआ वर्ग ने संपूर्ण राष्ट्र के शत्रु के साथ, अपने पितृदेश का विध्वंस करनेवाली विदेशी सेना के साथ सौदेबाज़ी कर ली। जो व्यक्ति संसदवाद और बुर्जुआ जनवादिता की उस अपरिहार्य आंतरिक द्वंद्वात्मकता को नहीं समझता, जिसके फलस्वरूप विवाद का हल पहले की अपेक्षा तीव्रतर आम हिंसा द्वारा होता है, वह इस संसदवाद के आधार पर मज़दूर समूहों को इन "विवादों" में विजयी ढंग से भाग लेने के निमित्त वस्तुतः तैयार करने-

वाले, उसूली तौर से सुसंगत आंदोलन और प्रचार को कभी नहीं चला सकता। पश्चिम में सामाजिक-सुधारवादी उदारतावाद के साथ तथा रूसी क्रांति में उदारतावादी सुधारवाद (कैडेटों[13]) के साथ संघबद्धताओं, समझौतों और गंठजोड़ों के अनुभव ने यक़ीनी तौर से दिखा दिया कि ये समझौते संघर्षकर्त्ताओं को न्यूनतम संघर्षक्षम और अधिकतम ढुलमुल तथा विश्वासघाती तत्वों के साथ संबंधित करके, जनता के संघर्ष के वास्तविक महत्व को बढ़ाकर नहीं, बल्कि घटाकर, उसकी चेतना को महज़ कुंठित बना देते हैं। फ़्रांसीसी मिलेरांवाद[14] ने – संशोधनवादी राजनीतिक कार्यनीति के व्यापक, वस्तुतः राष्ट्रव्यापी प्रयोग के सबसे बड़े अनुभव ने – संशोधनवाद का ऐसा व्यावहारिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया, जिसे सारी दुनिया का सर्वहारा वर्ग कभी नहीं भूलेगा।

संशोधनवाद की आर्थिक तथा राजनीतिक प्रवृत्तियों का स्वाभाविक पूरक समाजवादी आंदोलन के अंतिम लक्ष्य के प्रति उसका रवैया था। "अंतिम लक्ष्य कुछ नहीं, आंदोलन ही सब कुछ है" – बर्नस्टीन की यह प्रचलित उक्ति संशोधनवाद के सार को अनेक लंबे विवादों की अपेक्षा ज़्यादा बेहतर ढंग से अभिव्यक्त करती है। हर मामले के मुताबिक़ अपना आचरण निर्धारित करना, आये दिन की घटनाओं के अनुसार, क्षुद्र राजनीतिक परिवर्तनों के अनुसार अपने को ढालना, सर्वहारा वर्ग के बुनियादी हितों और पूरी पूंजीवादी व्यवस्था के, समूचे पूंजीवादी विकास के आधारभूत लक्षणों को भुला देना, वास्तविक अथवा प्रत्याशित तात्कालिक लाभ की ख़ातिर इन बुनियादी हितों को क़ुर्बान कर देना – ऐसी है संशोधनवादी नीति। और इस नीति की प्रकृति से ही यह प्रत्यक्ष निष्कर्ष निकलता है कि यह नीति असंख्य विविध रूप धारण कर सकती है, कि प्रत्येक किंचित् "नया" प्रश्न, घटनाओं का किंचित् आकस्मिक अथवा अप्रत्याशित उलट-फेर, चाहे वह उलट-फेर विकास की बुनियादी लाइन को नगण्य पैमाने पर और अल्पतम अवधि के लिए ही बदलनेवाला क्यों न हो, सदा संशोधनवाद के इस या उस रूप को अनिवार्यतः जन्म देंगे।

संशोधनवाद की अनिवार्यता का कारण आधुनिक समाज में उसकी वर्गीय जड़ें हैं। संशोधनवाद अंतर्राष्ट्रीय परिघटना है। किसी भी किंचित् अभिज्ञ तथा चिंतनशील समाजवादी को इसमें लेशमात्र संदेह नहीं हो सकता

कि जर्मनी में कट्टरपंथियों[15] और बर्नस्टीनवादियों के फ़्रांस में गेदवादियों और जोरेसवादियों (और अब विशेषतः ब्रूसवादियों)[16] के, ब्रिटेन में सामाजिक-जनवादी संघ[17] और स्वतंत्र लेबर पार्टी[18] के, बेल्जियम में ब्रूकर और वानदरवेल्डे के, इटली में अखंडतावादियों[19] और सुधारवादियों के तथा रूस में बोल्शेविकों और मेंशेविकों[20] के संबंध इन सभी देशों की आधुनिक अवस्था में राष्ट्रीय परिस्थितियों तथा ऐतिहासिक कारकों की ज़बर्दस्त विभिन्नताओं के बावजूद सर्वत्र सारतः एक ही तरह के हैं। समकालीन अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद के अंदर "विभाजन" संसार के विभिन्न देशों में अब सारतः **एक ही** ढर्रे पर चलने लगा है, जिससे ३०-४० साल पहले की अपेक्षा, जबकि विभिन्न देशों में एक ही अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद के अंदर नाना प्रवृत्तियां संघर्ष करती थीं, ज़बर्दस्त प्रगति प्रमाणित होती है। और वह "वामपंथी संशोधनवाद" भी, जो अब लैटिन देशों में "क्रांतिकारी संघाधिपत्यवाद"[21] के रूप में उभरा है, मार्क्सवाद का "संशोधन करते हुए" अपने को उसके अनुकूल ढाल रहा है: इटली में लैब्रियोला और फ़्रांस में लागार्देल ग़लत ढंग से समझे गये मार्क्स की ओर से सही ढंग से समझे गये मार्क्स से बारंबार अपील करते हैं।

हम इस संशोधनवाद के वैचारिक अंतर्य का विश्लेषण करने के लिए यहां नहीं रुक सकते, जो उतने विकास से अभी बहुत दूर है, जितना अवसरवादी संशोधनवाद का हुआ था, जो अंतर्राष्ट्रीय नहीं बना है, किसी भी देश की समाजवादी पार्टी के साथ एक भी बड़ी व्यावहारिक टक्कर में कामयाब नहीं हुआ है। इसलिए हम अपने को उस "दक्षिणपंथी संशोधनवाद" तक ही सीमित रखेंगे, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

पूंजीवादी समाज के अंदर उसकी अनिवार्यता किस बात में निहित है? वह राष्ट्रीय विशिष्टताओं और पूंजीवादी विकास-स्तरों की विभिन्नताओं की अपेक्षा अधिक गहन क्यों है? इसलिए कि सभी पूंजीवादी देशों में सर्वहारा वर्ग के साथ-साथ सदा ही टुटपुंजिया वर्ग के, छोटे मिल्कियों के विस्तृत तबक़े होते हैं। पूंजीवाद का लघु उत्पादन से जन्म हुआ और निरंतर होता जा रहा है। पूंजीवाद सदा नये सिरे से नये-नये "बिचले तबक़ों" (कारख़ानों के उपांगों, घर पर किये जानेवाले कामों और साइकिल-मोटर उद्योग, आदि जैसे बड़े उद्योगों की आवश्यकताओं के कारण सारे देश में

बिखरे छोटे-छोटे वर्कशापों) को अनिवार्यतः जन्म दे रहा है। ये नये लघु उत्पादक भी उतने ही अनिवार्य रूप से फिर सर्वहारा वर्ग की पांतों में फेंके जा रहे हैं। बिलकुल स्वाभाविक है कि मज़दूरों की व्यापक पार्टियों की पांतों में टुटपुंजिया विश्वदृष्टिकोण बार-बार घुस आये। बिलकुल स्वाभाविक है कि ऐसा हो और सर्वहारा क्रांति के ठीक भाग्य-परिवर्तन तक ऐसा होता रहेगा, क्योंकि यह सोचना गंभीर भूल होगी कि ऐसी क्रांति के निष्पादन के लिए आबादी की बहुसंख्या का पूर्ण सर्वहाराकरण आवश्यक है। इस समय जो चीज़ हम अकसर केवल विचार-रूप में अनुभव करते हैं, याने मार्क्सवाद में सैद्धांतिक संशोधन संबंधी विवादों के रूप में अनुभव करते हैं, इस समय जो चीज़ व्यवहार में मज़दूर आंदोलन के केवल अलग-अलग आंशिक प्रश्नों पर संशोधनवादियों के साथ कार्यनीतिक मतभेदों और उनके आधार पर संबंध-विच्छेद के रूप में फूट पड़ती है, उसे मज़दूर वर्ग द्वारा अतुलनीय रूप से अधिक बड़े पैमाने पर उस समय अनुभव किया जाना लाज़िमी होगा, जब सर्वहारा क्रांति सभी विवादग्रस्त प्रश्नों को तीखा बना देगी, सभी मतभेदों को जन-समूहों का आचरण निर्धारित करने में सर्वाधिक प्रत्यक्ष महत्व रखनेवाले मुद्दों पर केंद्रीभूत कर देगी और संघर्ष के जोश में शत्रुओं तथा मित्रों में भेद करने के लिए, शत्रु पर निर्णयकारी प्रहार के निमित्त बुरे संघातियों को निकाल फेंकने के लिए मजबूर कर देगी।

१९ वीं सदी के अंत में संशोधनवाद के ख़िलाफ़ क्रांतिकारी मार्क्सवाद का वैचारिक संघर्ष सर्वहारा वर्ग की, जो टुटपुंजिया वर्ग की सारी ढुलमुलयक़ीनियों और कमज़ोरियों के बावजूद अपने हेतु की पूर्ण विजय की ओर अग्रसर हो रहा है, महान क्रांतिकारी लड़ाइयों की केवल भूमिका है।

३(१६) अप्रैल,
१९०८ से पहले
लिखित।

खंड १७, पृ० १५–२६

हमारा कार्यक्रम

अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद आजकल वैचारिक डांवांडोलपन की हालत में है। अब तक मार्क्स तथा एंगेल्स की शिक्षाओं को क्रांतिकारी सिद्धांत की सुदृढ़ आधारशिला माना जाता रहा, अब इन शिक्षाओं की अपर्याप्तता तथा उनके कालातीत हो जाने के बारे में चारों ओर से आवाज़ें सुनाई दे रही हैं। जो कोई अपने को सामाजिक-जनवादी घोषित करता है तथा सामाजिक-जनवादी अख़बार प्रकाशित करने का इरादा रखता है, उसे उस सवाल के प्रति अपना रुख़ सटीक ढंग से निश्चित कर देना चाहिए, जो मात्र जर्मन सामाजिक-जनवादियों को ही उद्विग्न नहीं कर रहा है।

हम पूर्णतया मार्क्स के सिद्धांत को अपना आधार बनाये हुए हैं: इस सिद्धांत ने ही सबसे पहले समाजवाद को कल्पना-विलास से विज्ञान में रूपांतरित किया, इस विज्ञान की अडिग आधारशिला रखी तथा वह मार्ग लक्षित किया, जिसका इस विज्ञान का आगे विकास करने तथा उसका समस्त भागों समेत विशदीकरण करने के लिए अनुसरण करना होगा। यह सिद्धांत आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सार को यह समझाते हुए प्रकाश में लाया कि मज़दूर को उजरत पर रखे जाने से, याने श्रम-शक्ति की ख़रीद से किस तरह मुट्ठी भर पूंजीपतियों, ज़मीन, कल-कारख़ानों, खानों, आदि के मालिकों द्वारा लाखों-लाख निर्धन लोगों को ग़ुलाम बनाये जाने पर परदा पड़ता है। उसने दिखलाया कि सारा आधुनिक पूंजीवादी विकास छोटे पैमाने के उत्पादन का बड़े पैमाने के उत्पादन द्वारा उन्मूलन किये जाने की प्रवृत्ति का परिचय देता है तथा ऐसी परिस्थितियां पैदा करता है, जो समाज की समाजवादी व्यवस्था को संभव तथा आवश्यक बनाती हैं। उसने गहरी जड़ें जमाये रीति-रिवाजों, राजनीतिक साज़िशों, दुर्बोध क़ानूनों तथा दांव-पेंचभरी शिक्षाओं के आवरण में ढके **वर्ग संघर्ष** को, सब क़िस्म के संपत्तिधारी वर्गों तथा संपत्तिहीन जनसाधारण, **सवहारा**

के बीच, जो समस्त संपत्तिहीनों का अगुआ है, संघर्ष को पहचानना सिखाया। उसने क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी के वास्तविक कार्यभार को सुस्पष्ट कर दिया। यह कार्यभार है: समाज के पुनर्गठन के मंसूबे बांधना नहीं, मज़दूरों की दशा सुधारने के बारे में पूंजीपतियों तथा उनके टुकड़खोरों को उपदेश देना नहीं, साज़िशें रचना नहीं, **अपितु सर्वहारा का वर्ग संघर्ष संगठित करना तथा इस संघर्ष का नेतृत्व करना, जिसका अंतिम ध्येय है सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता पर अधिकार प्राप्त किया जाना तथा समाजवादी समाज का संगठन किया जाना।**

तो हम अब पूछते हैं: क्या इस सिद्धांत में कांव-कांव करनेवाले उसके "पुनरुद्धारकों" ने, जो जर्मन समाजवादी बर्नस्टीन के गिर्द समूहबद्ध होकर हमारे ज़माने में इतना हंगामा मचा रहे हैं, किसी नयी चीज़ का समावेश किया है? **बिलकुल नहीं**: उन्होंने इस विज्ञान को एक पग भी आगे नहीं बढ़ाया है, जिसका विकास करने की मार्क्स तथा एंगेल्स ने हमें वसीयत की थी; उन्होंने सर्वहारा वर्ग को संघर्ष के कोई नये तरीक़े नहीं सिखाये हैं; वे केवल पीछे हटे हैं, उन्होंने पिछड़े सिद्धांतों के अंशों को उधार लेते हुए सर्वहारा वर्ग को संघर्ष के सिद्धांत का नहीं, वरन रियायतों के सिद्धांत का उपदेश दिया है—सर्वहारा वर्ग के उन कटुतम शत्रुओं को, सरकारों तथा बुर्जुआ पार्टियों को रियायतें, जो समाजवादियों को सताने के नये-नये साधनों की तलाश करते कभी नहीं थकते। रूसी सामाजिक-जनवाद के एक संस्थापक तथा नेता प्लेख़ानोव ने बर्नस्टीन की नवीनतम "आलोचना" की, जिनके विचारों को जर्मन मज़दूरों के प्रतिनिधियों ने भी अब ठुकरा दिया है (हैनोवर कांग्रेस में), निर्ममतापूर्वक आलोचना कर बिलकुल सही काम किया[22]।

हम जानते हैं कि इन शब्दों के लिए हमारे ऊपर आरोपों की बौछार की जायेगी: गला फाड़-फाड़कर कहा जायेगा कि हम समाजवादी पार्टी को "सच्चे आस्थावानों" के ऐसे धर्मसंघ में बदल देना चाहते हैं, जो "धर्मसूत्र" से भटकावों के लिए, हर स्वतंत्र विचार, आदि के लिए "काफ़िरों" का पीछा करता है। हम इन सब प्रचलित तीखे फ़िक़रों को जानते हैं। लेकिन इनमें सच्चाई या समझदारी लेशमात्र नहीं है। कोई मज़बूत समाजवादी पार्टी ऐसे क्रांतिकारी सिद्धांत के बिना संभव नहीं हो सकती,

जो तमाम समाजवादियों को ऐक्यबद्ध करे, जिससे वे अपनी सारी आस्थाएं ग्रहण करते हों तथा जिसे वे संघर्ष की अपनी विधियों तथा कार्रवाई के साधनों पर लागू करते हों; ऐसे सिद्धांत की, जिसे आप अपनी पूरी जानकारी के अनुसार सच्चा मानते हों, निराधार प्रहारों से तथा भ्रष्ट करने की कोशिशों से रक्षा करने का अर्थ यह नहीं है कि आप **हर प्रकार** की आलोचना के शत्रु हैं। हम मार्क्स के सिद्धांत को कोई अंतिम या अनुल्लंघनीय वस्तु कदापि नहीं मानते; इसके विपरीत, हम इस बात के क़ायल हैं कि मार्क्स के सिद्धांत ने तो महज़ उस विज्ञान की नींव रखी है, जिसका समाजवादियों को सर्वतोमुखी विकास करना **होगा**, अगर वे जीवन के साथ क़दम से क़दम मिलाकर चलना चाहते हैं। हमारा ख़याल है कि मार्क्स के सिद्धांत का **स्वतंत्र** विशदीकरण रूसी समाजवादियों के लिए विशेष रूप से आवश्यक है, इसलिए कि यह सिद्धांत तो केवल आम **निदेशनकारी** प्रस्थापनाएं प्रस्तुत करता है, जो **ब्योरे में** ब्रिटेन में फ़्रांस से भिन्न ढंग से, फ़्रांस में जर्मनी से भिन्न ढंग से तथा जर्मनी में रूस से भिन्न ढंग से लागू की जाती हैं। इसलिए हम अपने अख़बार में सैद्धांतिक प्रश्नों पर लेखों को सहर्ष स्थान देंगे तथा सारे साथियों को विवादास्पद मुद्दों पर खुले ढंग से विचार करने का निमंत्रण देते हैं।

वे कौन-से मुख्य प्रश्न हैं, जो सभी सामाजिक-जनवादियों के लिए एकसमान कार्यक्रम को रूस पर लागू करने के सिलसिले में उठते हैं? हम कह चुके हैं कि इस कार्यक्रम का सारतत्व सर्वहारा के वर्ग संघर्ष को संगठित करना तथा इस संघर्ष का नेतृत्व करना है, जिसका अंतिम ध्येय सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता पर क़ब्ज़ा और समाजवादी समाज की स्थापना है। सर्वहारा का वर्ग संघर्ष आर्थिक संघर्ष (मज़दूरों की हालत सुधारने के लिए अलग-अलग पूंजीपतियों या पूंजीपतियों के अलग-अलग समूहों के विरुद्ध संघर्ष) तथा राजनीतिक संघर्ष (जनता के अधिकारों को व्यापक बनाने के लिए, याने जनवाद के लिए तथा सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक सत्ता को व्यापक बनाने के लिए सरकार के विरुद्ध संघर्ष) में विभक्त है। कुछ रूसी सामाजिक-जनवादी (उनमें, लगता है, वे भी शामिल हैं, जो 'राबोचाया मीस्ल'[23] अख़बार चलाते हैं) आर्थिक संघर्ष को अतुलनीय रूप से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं, लेकिन राजनीतिक संघर्ष

को कमोबेश दूर भविष्य तक टालने की हद तक बढ़ते हैं। यह दृष्टिकोण सरासर ग़लत है। सारे सामाजिक-जनवादी इस बात पर सहमत हैं कि मज़दूरों का आर्थिक संघर्ष संगठित करना आवश्यक है, कि इस आधार पर मज़दूरों के बीच आंदोलन चलाना, याने मज़दूरों को मालिकों के ख़िलाफ़ नित्यप्रति के संघर्ष में मदद देना, उत्पीड़न के हर रूप तथा हर मामले की ओर उनका ध्यान खींचना और इस तरह उनके लिए एकजुटता की आवश्यकता स्पष्ट करना ज़रूरी है। परंतु आर्थिक संघर्ष की ख़ातिर राजनीतिक संघर्ष को भूलने का अर्थ अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद के आधारभूत सिद्धांत का परित्याग करना होगा, उसका अर्थ होगा उसे भूल जाना, जो मज़दूर आंदोलन का पूरा इतिहास हमें सिखाता है। बुर्जुआ वर्ग के तथा उसकी सेवा करनेवाली सरकार के कट्टर भक्तों ने तो मज़दूरों की विशुद्ध आर्थिक यूनियनें संगठित करने और इस तरह उन्हें "राजनीति" से, समाजवाद से विमुख करने की कोशिशें तक की हैं। बहुत संभव है कि रूसी सरकार भी कुछ ऐसा काम करने का बीड़ा उठाये, क्योंकि उसने सदा जनता के आगे कोई तुच्छ टुकड़ा, या, कहना चाहिए, दिखावटी टुकड़ा फेंकने की कोशिश महज़ इसलिए की है कि उसका ध्यान इस तथ्य की ओर से हटाया जा सके कि वह अधिकारहीन तथा उत्पीड़ित है। अगर मज़दूरों को आज़ादी के साथ अपनी सभाएं और यूनियनें संगठित करने का, अपने अख़बार निकालने का तथा राष्ट्रीय सभाओं में अपने प्रतिनिधि भेजने का, जैसा कि जर्मनी तथा तमाम अन्य यूरोपीय देश (तुर्की तथा रूस को छोड़कर) करते हैं, अधिकार नहीं होगा, तो कोई भी आर्थिक संघर्ष मज़दूरों की स्थिति में स्थायी सुधार नहीं ला सकेगा, यहां तक कि यह संघर्ष बड़े पैमाने पर भी नहीं चलाया जा सकेगा। परंतु इन अधिकारों को हासिल करने के लिए **राजनीतिक संघर्ष** चलाना आवश्यक है। रूस में मज़दूर ही नहीं, अपितु तमाम नागरिक राजनीतिक अधिकारों से वंचित हैं। रूस निरंकुश तथा असीमित राजतंत्र है। अकेला ज़ार क़ानून बनाता है, अधिकारियों को नियुक्त तथा नियंत्रित करता है। इस कारण **प्रतीत होता है**, मानो रूस में ज़ार तथा ज़ारशाही सरकार वर्गों से स्वतंत्र हैं और वे सबकी एकसमान चिंता करते हैं। परंतु **वस्तुतः** सारे अधिकारी मात्र संपत्तिधारी वर्ग से चुने जाते हैं और वे सब उन बड़े पूंजीपतियों के प्रभाव में

होते हैं, जो मंत्रियों को अपनी उंगलियों पर नचाते हैं तथा जो चाहे, वह हासिल करते हैं। रूसी मज़दूर वर्ग के कंधों पर दुहरे जुए का भार है: उसे पूंजीपति तथा ज़मींदार लूटते-खसोटते हैं तथा वह उनके ख़िलाफ़ न लड़ सके, इसके लिए पुलिस उसके हाथ-पांव बांध देती है, उसकी ज़बान बंद कर देती है तथा जनता के अधिकारों की रक्षा के हर प्रयत्न को कुचल देती है। पूंजीपतियों के ख़िलाफ़ हर हड़ताल का नतीजा यह होता है कि फ़ौज और पुलिस मज़दूरों पर टूट पड़ती हैं। हर आर्थिक संघर्ष लाज़िमी तौर पर राजनीतिक संघर्ष बन जाता है तथा सामाजिक-जनवादियों को **सर्वहारा के एक ही वर्ग संघर्ष** में दोनों को जोड़ना होगा। ऐसे संघर्ष का पहला तथा मुख्य उद्देश्य राजनीतिक अधिकार हासिल करना, **राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल करना** होना चाहिए। यदि समाजवादियों की थोड़ी मदद से अकेले पीटर्सबर्ग के मज़दूरों ने सरकार से रियायत – कार्य-दिवस घटाने के संबंध में क़ानून की मंज़ूरी [24] – प्राप्त करने में तेज़ी से कामयाबी हासिल कर ली है, तो पूरा रूसी मज़दूर वर्ग ऐक्यबद्ध रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के नेतृत्व में दृढ़ संघर्ष के दौरान अतुलनीय रूप से अधिक महत्वपूर्ण रियायतें प्राप्त करने में सफल रहेगा।

रूसी मज़दूर वर्ग अकेले ही अपना आर्थिक तथा राजनीतिक संघर्ष चला सकता है, भले ही कोई दूसरा वर्ग उसकी मदद के लिए आगे न बढ़े। परंतु राजनीतिक संघर्ष में मज़दूर अकेले नहीं हैं। जनता की पूर्ण अधिकारहीनता तथा लुटेरे अधिकारियों की बर्बर मनमानी उन सभी ईमान-दार शिक्षित लोगों में क्रोधाग्नि भड़काती हैं, जो स्वतंत्र चिंतन तथा स्वतंत्र अभिव्यक्ति के दमन को चुपचाप स्वीकार नहीं कर सकते, वे दमन के शिकार पोलों, फ़िनों, यहूदियों तथा रूसी धार्मिक संप्रदायों में क्रोधाग्नि भड़काती हैं, वे छोटे तिजारतियों, कारख़ानेदारों तथा किसानों में क्रोधा-ग्नि भड़काती हैं, जिन्हें अधिकारियों तथा पुलिस की यंत्रणा से कहीं रक्षा प्राप्त नहीं होती। आबादी के ये सारे समूह पृथक-पृथक रूप से दृढ़ राज-नीतिक संघर्ष चलाने में असमर्थ हैं, परंतु जब मज़दूर वर्ग इस संघर्ष का झंडा बुलंद करेगा, तो उसे चारों ओर से समर्थन प्राप्त होगा। रूसी सामा-जिक-जनवाद जनता के अधिकारों के लिए सभी योद्धाओं, जनवाद के लिए

सभी योद्धाओं के बीच शीर्ष स्थान ग्रहण करेगा और तब वह अजेय सिद्ध होगा !

यह हमारे मूलभूत विचार हैं और हम अपने अख़बार में उनका विधिवत तथा हर पहलू से विकास करेंगे। हमें यक़ीन है कि इस तरह हम रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी द्वारा प्रकाशित अपने 'घोषणापत्र'[25] में बताये गये मार्गों पर अग्रसर होंगे।

अक्तूबर, १८९९ के बाद लिखित। खंड ४, पृ० १८२–१८६

कहां से शुरू करें?

यह सवाल कि "क्या करें?", पिछले बरसों के दौरान रूसी जनवादियों के सामने ख़ास तौर से ज़ोरदार तरीक़े से उठा है। बात यह नहीं है कि कौन-सा रास्ता चुना जाये (जैसे कि बात नवीं दशाब्दी के अंत और दसवीं के शुरू में थी), बल्कि यह है कि मालूम रास्ते पर कौन-से व्यावहारिक क़दम और ठीक कैसे उठाये जायें। बात है व्यावहारिक काम की पद्धति तथा योजना की। और यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि अमली कार्रवाईवाली पार्टी के लिए संघर्ष के स्वरूप और तरीक़ों के इस बुनियादी सवाल को हमने अभी तक हल नहीं किया है, कि यह सवाल अभी तक गंभीर मतभेदों को जन्म देता है, जो विचारों की खेदजनक अस्थिरता और ढुलमुलपन को उजागर करते हैं। एक तरफ़ तो लुप्त होने से कोसों दूर अर्थवादी प्रवृत्ति[26] राजनीतिक संगठन और आंदोलन के काम को जकड़ने तथा संकुचित बनाने की कोशिश कर रही है। दूसरी तरफ़, बेउसूल सारसंग्रहवादी प्रवृत्ति फिर सिर उठा रही है, जो हर नयी "प्रवृत्ति" की भोंडी नक़ल करती है और जो पूरे के पूरे आंदोलन के मुख्य कार्यभारों तथा स्थायी आवश्यकताओं और तात्कालिक मांगों के बीच भेद करने में असमर्थ है। इस प्रवृत्ति ने, जैसा कि हम जानते हैं, 'राबोचेये देलो'[27] में अपना अड्डा जमा लिया है। इस पत्र का "कार्यक्रम" संबंधी ताज़ातरीन बयान – 'ऐतिहासिक मोड़' के भारी-भरकम शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित भारी-भरकम लेख ('लिस्तोक 'राबोचेगो देला''[28], अंक ६) – हमारे द्वारा किये गये उक्त चरित्रनिरूपण की ख़ास तौर से ज़ोरदार पुष्टि करता है। अभी कल ही हम अर्थवाद के साथ चोंचलेबाज़ी कर रहे थे, 'राबोचाया मीस्ल' की निश्चयात्मक निंदा के संबंध में क्रोध प्रकट कर रहे थे, तानाशाही के ख़िलाफ़ संघर्ष के प्रश्न पर प्लेख़ानोव की प्रस्थापना को "नरम" बना

रहे थे—ग्रौर ग्राज हम लीब्कनेख़्त के शब्दों को उद्धृत करने लगे हैं: "ग्रगर २४ घंटे के ग्रंदर परिस्थितियां बदल जायें, तो कार्यनीति को भी २४ घंटे में बदल देना चाहिए", हम तानाशाही पर प्रत्यक्ष हमले के लिए, धावे के लिए "प्रबल जुझारू संगठन" की बात करने लगे हैं, "जनता के बीच विस्तृत क्रांतिकारी राजनीतिक" (वाह! क्या ज़ोरदार बात: क्रांतिकारी ग्रौर राजनीतिक, दोनों ही) "ग्रांदोलन" की बात करने लगे हैं, "सड़कों पर विरोध प्रदर्शन के लिए निरंतर ग्राह्वानों" की, "सड़कों पर प्रबल" (sic!)* "राजनीतिक स्वरूप के प्रदर्शनों के बंदोबस्त", ग्रादि की बात करने लगे हैं।

हम संभवतः इस बात पर ख़ुशी ज़ाहिर करते कि 'राबोचेये देलो' ने हमारे द्वारा प्रस्तुत किये गये ग्रौर 'ईस्क्रा'[29] के पहले ग्रंक में प्रकाशित हो चुके कार्यक्रम को इतनी जल्दी ग्रात्मसात कर लिया, जिसमें एक ऐसी मज़बूत ग्रौर सुगठित पार्टी के निर्माण का तक़ाज़ा किया गया था, जिसका लक्ष्य केवल इक्की-दुक्की रियायतें प्राप्त करना ही नहीं, बल्कि ख़ुद तानाशाही के गढ़ पर धावा बोलना है। लेकिन इन ग्रात्मसात करनेवालों में किसी भी पक्के दृष्टिकोण का ग्रभाव हमारी सारी ख़ुशी पर पानी फेर सकता है।

'राबोचेये देलो' लीब्कनेख़्त का नाम बेशक व्यर्थ ही लेता है। किसी विशेष प्रश्न के बारे में ग्रांदोलन की कार्यनीति ग्रथवा पार्टी संगठन के किसी ब्योरे से संबंधित कार्यनीति २४ घंटे में बदली जा सकती है, लेकिन इस संबंध में कि सामान्यतः, सदैव ग्रौर बिना किसी शर्त के जुझारू संगठन तथा जनता के बीच राजनीतिक ग्रांदोलन की ज़रूरत है ग्रथवा नहीं, ग्रपने विचार २४ घंटे में क्या, २४ महीने में भी केवल वे ही लोग बदल सकते हैं, जिनमें हर प्रकार के उसूल का ग्रभाव है। विभिन्न परिस्थितियों ग्रौर मंज़िलों की दलीलें पेश करना हास्यास्पद है: जुझारू संगठन बनाने ग्रौर राजनीतिक ग्रांदोलन चलाने का काम किन्हीं "वैविध्यहीन, शांतिमय" परिस्थितियों में, "क्रांतिकारी भावना के ह्रास" की किन्हीं मंज़िलों में ग्रावश्यक होता है। इतना ही नहीं, ठीक ऐसी ही मंज़िलों में ग्रौर ठीक ऐसी

---

*—जी हां, ये ही शब्द।—सं०

ही परिस्थितियों में इस क़िस्म का काम ख़ास तौर से ज़रूरी होता है, क्योंकि विस्फोट और उबाल की घड़ियों में संगठन बनाने के लिए समय नहीं रह जाता; संगठन को फ़ौरन कार्रवाई करने के लिए तैयार रहना चाहिए। "कार्यनीति को २४ घंटे में बदलना!" लेकिन कार्यनीति को बदलने के लिए पहले कार्यनीति का होना ज़रूरी है, पर अगर सभी परिस्थितियों में और सभी अवधियों में राजनीतिक संघर्ष चलाने में कुशल कोई मज़बूत संगठन नहीं है, तो कार्रवाई की ऐसी व्यवस्थित, पक्के उसूलों से आलोकित तथा दृढ़तापूर्वक प्रचारित योजना का कोई सवाल ही नहीं पैदा होता, जो एकमात्र कार्यनीति कहलाने की हक़दार हो सके। असल में देखिये: हमसे कहा जाने लगा है कि "ऐतिहासिक घड़ी" ने हमारी पार्टी के सामने "बिलकुल ही नया" सवाल, आतंक का सवाल पेश कर दिया है। कल "बिलकुल ही नया" सवाल राजनीतिक संगठन और आंदोलन का था, आज आतंक का है। क्या ऐसे लोगों को, जो उसूलों को इस हद तक भूल गये हैं, कार्यनीति में बुनियादी परिवर्तन के संबंध में विचार-विमर्श करते हुए पाना अजीब बात नहीं है?

सौभाग्य से 'राबोचेये देलो' ग़लती पर है। आतंक का सवाल नया सवाल बिलकुल नहीं है। इस बारे में रूसी सामाजिक-जनवाद के निश्चित विचारों को संक्षेप में याद कर लेना ही काफ़ी होगा।

उसूली तौर से हमने आतंक को कभी नहीं ठुकराया और न ऐसा कर ही सकते हैं। वह फ़ौजी कार्रवाई का एक रूप है, जो लड़ाई की किसी ख़ास घड़ी में और फ़ौजों की एक ख़ास अवस्था के तहत, ख़ासपरिस्थितियों के तहत बिलकुल मुनासिब, यहां तक कि आवश्यक भी हो सकता है। लेकिन बात का सारतत्व यही है कि वर्तमान समय में आतंक को संघर्ष की संपूर्ण पद्धति के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित तथा समन्वित अमली फ़ौजी कार्रवाई के रूप में नहीं, बल्कि स्वाधीन और किसी भी सेना से असंबंधित इक्के-दुक्के हमले के साधन के रूप में पेश किया जाता है। वस्तुत: किसी केंद्रीय क्रांतिकारी संगठन के अभाव और स्थानिक संगठनों की कमज़ोरी के तहत आतंक और कुछ हो भी नहीं सकता। इसलिए हम निश्चयात्मक ढंग से घोषित करते हैं कि वर्तमान हालतों में संघर्ष का ऐसा साधन असामयिक और नामुनासिब है, कि वह सक्रिय योद्धाओं को उनके

असली कार्यभार से, पूरे के पूरे आंदोलन के हितों की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यभार से विरत करता है, कि वह सरकार की नहीं, बल्कि क्रांति की शक्तियों को विश्रृंखलित करता है। हमें महज़ हाल की घटनाओं को याद करने की ज़रूरत है: हमने अपनी आंखों से देखा कि शहरी मज़दूरों और शहरी "सामान्य जनों" के विराट समुदाय संघर्ष के लिए उमड़ पड़े, जबकि क्रांतिकारियों के पास रहनुमाओं और संगठनकर्त्ताओं का अभाव था। ऐसी परिस्थितियों में क्या इस बात का ख़तरा नहीं है कि सर्वाधिक जोशीले क्रांतिकारियों के आतंक की ओर चले जाने से वे जुझारू दस्ते कमज़ोर पड़ जायेंगे, मात्र जिन पर गंभीरता के साथ भरोसा किया जा सकता है? क्या इस बात का ख़तरा नहीं है कि क्रांतिकारी संगठनों और उन असंतुष्ट, विरोध करनेवाले तथा संघर्ष-तत्पर जनसमुदायों के बीच संपर्क टूट जायेगा, जो एकताबद्ध नहीं हैं और ठीक इसी कारण कमज़ोर हैं। फिर भी यही संपर्क हमारी सफलता की एकमात्र गारंटी है। यह विचार हमसे बहुत दूर है कि हम वीरतापूर्ण अकेले-दुकेले प्रहारों के महत्व को अस्वीकार कर दें, लेकिन यह हमारा कर्तव्य है कि हम आतंक की भावना में मग्न हो जाने के ख़िलाफ़ दृढ़तापूर्वक चेतावनी दें, आतंक को संघर्ष का मुख्य और बुनियादी साधन समझ लेने के ख़िलाफ़ ज़ोरदार चेतावनी दें, जिसकी इस समय बहुतेरे लोगों में सशक्त प्रवृत्ति है। आतंक कभी भी मामूली फ़ौजी कार्रवाई नहीं बन सकता: अच्छी से अच्छी हालत में वह अधिक निर्णयात्मक हमले में इस्तेमाल किये जानेवाले एक तरीक़े का काम कर सकता है। लेकिन क्या हम वर्तमान घड़ी में ऐसे निर्णयात्मक हमले के लिए **आह्वान** कर सकते हैं? प्रत्यक्षत: 'राबोचेये देलो' के ख़याल से हम ऐसा कर सकते हैं। कम से कम वह चीख-पुकार मचाता है: "हमलावर दस्ते बनाओ!" लेकिन यह फिर बुद्धि की अपेक्षा उत्साह अधिक है। हमारी फ़ौजी शक्ति का मुख्य भाग वालंटियरों और बाग़ियों को लेकर बना है। हमारे पास स्थायी सेना की महज़ चंद छोटी टुकड़ियां हैं और वे भी लामबंद नहीं हैं, आपस में संबंधित नहीं हैं और हमलावर दस्तों की तो बात ही क्या, किसी प्रकार का भी फ़ौजी दस्ता बनाने के लिए प्रशिक्षित नहीं हैं। ऐसी हालतों में जो लोग हमारे संघर्ष की आम परिस्थितियों को समझने में समर्थ हैं और उन्हें घटनाओं की ऐतिहासिक गति

के प्रत्येक "मोड़" पर याद रखते हैं, उन सब के लिए यह साफ़ होना चाहिए कि वर्तमान घड़ी में हमारा नारा "धावा बोल दो" नहीं हो सकता, बल्कि "दुश्मन के गढ़ को ठीक तरह से घेर डालो" होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, हमारी पार्टी का तात्कालिक कार्यभार फ़ौरन हमला करने के लिए सभी उपलब्ध शक्तियों का ग्राह्वान करना नहीं, बल्कि ऐसे क्रांतिकारी संगठन के निर्माण के लिए पुकार लगाना है, जो सभी शक्तियों को एकताबद्ध करने ग्रौर कथनी में ही नहीं, बल्कि करनी में भी ग्रांदोलन का नेतृत्व करने में समर्थ हो, याने जो हर घड़ी हर विरोध-प्रदर्शन ग्रौर हर विस्फोट का समर्थन करने, निर्णायक संघर्ष के लिए उपयुक्त जुझारू शक्तियों की वृद्धि तथा सुदृढ़ता के वास्ते उनका इस्तेमाल करने को तैयार हो।

फ़रवरी ग्रौर मार्च की घटनाग्रों का सबक़[30] इतना प्रभावशाली था कि ग्रब इस निष्कर्ष पर शायद ही कोई उसूली एतराज़ सामने ग्राये। लेकिन वर्तमान समय में हमें मसले को उसूली नहीं, बल्कि ग्रमली ढंग से हल करना चाहिए। न सिर्फ़ इस बात को ही समझना चाहिए कि संगठन ठीक कैसा ग्रौर किस काम के लिए ज़रूरी है, बल्कि संगठन की एक निश्चित **योजना** तैयार करनी चाहिए, ताकि हर पहलू से उसका निर्माण शुरू किया जा सके। प्रश्न के तात्कालिक महत्व को देखते हुए हमने ग्रपनी ग्रोर से साथियों के विचारार्थ योजना की एक रूपरेखा प्रस्तुत करने का फ़ैसला किया है, जिसे हमने ग्रधिक ब्योरे के साथ एक पैंफ़लेट[31] में विकसित किया है, जो छपने के लिए तैयार किया जा रहा है।

हमारी राय में सरगर्मियों का प्रस्थान-बिंदु, वांछित संगठन के निर्माण की दिशा में पहला व्यावहारिक क़दम, या कहें कि वह मुख्य सूत्र, जिसे पकड़कर हम उस संगठन को ग्रडिगतापूर्वक विकसित कर सकते हैं, गहरा बना सकते हैं ग्रौर फैला सकते हैं, एक ग्रखिल रूसी राजनीतिक ग्रख़बार की स्थापना होनी चाहिए। हमें सबसे बढ़कर ग्रख़बार की ज़रूरत है, जिसके बिना उसूली तौर से ठोस ग्रौर सर्वतोमुखी प्रचार तथा ग्रांदोलन का बराबर चलाया जाना ग्रसंभव है, जो ग्राम तौर पर सामाजिक-जनवाद का स्थायी तथा मुख्य ग्रौर ख़ास तौर से वर्तमान समय में तात्कालिक कार्यभार है, जबकि ग्राबादी की ग्रधिकतम विस्तृत श्रेणियों में राजनीति

के प्रति, समाजवाद के सवालों के प्रति रुचि जागृत हो उठी है। वैयक्तिक कार्य, स्थानीय पर्चों, पैंफ़लेटों, आदि के रूप में चलते हुए बिखरे आंदोलन को व्यापक तथा नियमित आंदोलन द्वारा परिवर्द्धित करने की, जो केवल निश्चित समय पर निकलनेवाले अख़बारों की सहायता से ही किया जा सकता है, ज़रूरत जितने ज़ोरदार ढंग से आज महसूस की जा रही है, उतनी और कभी नहीं की गयी। बिना किसी अतिशयोक्ति के कहा जा सकता है कि अख़बार के प्रकाशन की बारंबारता तथा नियमितता (और वितरित होना) इस बात को जानने का सबसे सटीक पैमाना बन सकती हैं कि हमारी जुझारू सरगर्मियों की इस सबसे शुरूआती और सबसे आवश्यक शाखा का निर्माण कितने ठोस ढंग से हुआ है। आगे, हमें ठीक अखिल रूसी अख़बार ही चाहिए। अगर और जब तक हम छपे शब्दों के साधन द्वारा जनता और सरकार पर अपने प्रभाव को एकीभूत नहीं कर सकते, प्रभाव के अन्य जटिलतर, कठिनतर और साथ ही अधिक निर्णयकारी साधनों को एकीभूत करने का विचार कोरी कल्पना है। हमारा आंदोलन अपने बिखराव के कारण जैसे वैचारिक, वैसे ही व्यावहारिक, सांगठनिक कठिनाइयों का शिकार है, इस कारण शिकार है कि सामाजिक-जनवादियों की भारी बहुसंख्या स्थानीय कामों में प्रायः पूर्णतः व्यस्त रहती है, जो उनके दृष्टिकोण, उनकी सरगर्मियों के पैमाने, उनकी गोपनीयता रखने की सिद्धहस्तता और कटिबद्धता को सीमित-संकुचित करते हैं। ठीक इसी बिखराव में हमें उस अस्थिरता और उन ढुलमुल-यक़ीनियों की अधिकतम गहरी जड़ें ढूंढ़नी चाहिए, जिनका ऊपर ज़िक्र किया गया है। इस कमी को दूर करने और विभिन्न स्थानीय आंदोलनों को एक ही अखिल रूसी आंदोलन में रूपांतरित करने की दिशा में **पहला** क़दम एक अखिल रूसी अख़बार की स्थापना होनी चाहिए। अंततः हमें निश्चित रूप से **राजनीतिक** अख़बार की ज़रूरत है। आज यूरोप में **राजनीतिक** मुखपत्र के बिना राजनीतिक नाम को सार्थक बनानेवाला आंदोलन अकल्पनीय है। उसके बिना हमारे कार्यभार की – राजनीतिक असंतोष और विरोध के सभी तत्वों के संकेंद्रण और उनके द्वारा सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी आंदोलन को फलप्रद बनाये जाने के कार्यभार की – पूर्ति नहीं हो सकती। हम पहला क़दम उठा चुके हैं, हमने मज़दूर वर्ग में "आर्थिक", कारख़ाना संबंधी भंडाफोड़ करने का जोश

पैदा कर दिया है। अब हमें दूसरा क़दम उठाना चाहिए: आबादी के सभी, तनिक भी वर्ग-चेतन हिस्सों में **राजनीतिक** भंडाफोड़ करने का जोश पैदा करना चाहिए। हमें इस बात से हतोत्साह नहीं होना चाहिए कि आज राजनीतिक भंडाफोड़ की आवाज़ें इतनी कमज़ोर, दब्बू और विरल हैं। इसका कारण पुलिस की मनमानी के आगे आम आत्मसमर्पण नहीं, बल्कि यह है कि जो लोग भंडाफोड़ कर सकते हैं और इसके लिए तैयार हैं, उनके पास कोई मंच नहीं है, जहां से वे बोल सकें, उनके पास उत्सुक तथा प्रोत्साहित करनेवाले श्रोता नहीं हैं, वे जनता के बीच कहीं भी उस शक्ति को नहीं देखते, जिसके सामने "सर्वशक्तिपूर्ण" रूसी सरकार की शिकायत करने का श्रम सार्थक हो। लेकिन आज यह सब कुछ बहुत तेज़ी से बदल रहा है। आज वैसी शक्ति है और वह है क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग, जिसने यह प्रदर्शित कर दिया है कि वह राजनीतिक संघर्ष की पुकार को सुनने और उसका समर्थन करने के लिए ही नहीं, बल्कि साहसपूर्वक संघर्ष में जूझने के लिए भी तैयार है। आज हम ज़ारशाही सरकार के राष्ट्रव्यापी भंडाफोड़ के लिए मंच बनाने की स्थिति में हैं और इसे बनाना हमारा कर्त्तव्य है। यह मंच सामाजिक-जनवादी अख़बार होना चाहिए। रूसी समाज के अन्य वर्गों तथा श्रेणियों से भिन्न रूसी मज़दूर वर्ग राजनीतिक ज्ञान में सतत रुचि प्रदर्शित करता है, ग़ैर क़ानूनी साहित्य की निरंतर और व्यापक मांग (सो भी केवल असाधारण उबाल की मुद्दतों में ही नहीं) करता है। ऐसी आम मांग की सूरत में, अनुभवी क्रांतिकारी नेताओं के शुरू हो चुके आविर्भाव की सूरत में, मज़दूर वर्ग के उस संकेंद्रण की सूरत में, जिससे उसे बड़े शहरों के मज़दूर इलाक़ों और कारख़ानाई बस्तियों में यथार्थतः प्रमुख स्थान प्राप्त हो गया है, सर्वहारा वर्ग के लिए राजनीतिक अख़बार निकालना बिलकुल संभव है। सर्वहारा वर्ग की मार्फ़त अख़बार शहरी टुटपुंजिया वर्ग और देहाती दस्तकारों तथा किसानों के पास पहुंचेगा और असली अवामी राजनीतिक अख़बार बन जायेगा।

लेकिन अख़बार की भूमिका विचारों के प्रचार, राजनीतिक शिक्षा और राजनीतिक साथियों की प्राप्ति तक ही सीमित नहीं है। अख़बार केवल सामूहिक प्रचारक और सामूहिक आंदोलनकर्त्ता ही नहीं होता, बल्कि

वह सामूहिक संगठनकर्त्ता भी होता है। इस ग्राख़िरी बात के लिहाज़ से उसकी तुलना किसी बनायी जानेवाली इमारत के गिर्द उस पाड़ से की जा सकती है, जो निर्माण की रूपरेखा प्रदर्शित करता है, ग्रलग-ग्रलग निर्मा-ताग्रों के ग्रापसी संबंधों में सुविधा पहुंचाता है, उन्हें काम का बंटवारा करने ग्रौर ग्रपने संगठित श्रम के सम्मिलित परिणामों की समीक्षा करने में मदद पहुंचाता है। ग्रख़बार के सहारे ग्रौर इसके द्वारा स्वाभाविक रूप से एक स्थायी संगठन पैदा होता जायेगा, जो केवल स्थानीय ही नहीं, बल्कि नियमित ग्राम सरगर्मियों में संलग्न होगा ग्रौर जो ग्रपने सदस्यों को राजनी-तिक घटनाएं गहरी नज़र से देखने, उनके महत्व तथा ग्राबादी के विभिन्न हलक़ों पर उनके प्रभाव का मूल्यांकन करने ग्रौर क्रांतिकारी पार्टी द्वारा उन घटनाग्रों को प्रभावित करने के उपयुक्त साधनों का विकास करने के लिए प्रशिक्षित करेगा। ग्रख़बार को नियमित रूप से सामग्री पहुंचाने ग्रौर उसके ठीक ढंग से वितरण के मात्र तकनीकी काम के लिए संयुक्त पार्टी के स्थानीय एजेंटों का जाल तैयार करने की ज़रूरत होगी, जो एक-दूसरे के साथ निरंतर संपर्क रखेंगे, जो सामान्य वस्तुस्थिति की जानकारी रखेंगे, जो ग्रखिल रूसी काम में ग्रपने ब्योरेवार कर्त्तव्यों को नियमित रूप से पूरा करने के ग्रभ्यस्त हो जायेंगे ग्रौर विभिन्न क्रांतिकारी कार्रवाइयों का संगठन करने में ग्रपनी सामर्थ्य की ग्राज़माइश करेंगे। एजेंटों* का यह जाल ठीक वैसे ही संगठन की रीढ़ बन जायेगा, जिसकी हमें ज़रूरत है: याने जो पर्याप्त रूप से बड़ा होगा, ताकि सारे देश को ग्रपनी लपेट में ले ले; पर्याप्त रूप से व्यापक तथा बहुमुखी होगा, ताकि सख़्ती के साथ ग्रौर ब्योरे-वार ढंग से श्रम-विभाजन की तामील करे; पर्याप्त रूप से तपा-तपाया होगा, ताकि हर परिस्थिति में, हर ग्राकस्मिक "मोड़" पर ग्रपने काम

---

*यह स्वतः स्पष्ट है कि ऐसे एजेंट हमारी पार्टी की स्थानीय समितियों (दलों, मंडलों) के निकटतम संपर्क में ही सफलतापूर्वक काम कर सकते हैं। ग्राम तौर से हमारे द्वारा तैयार की गयी सारी योजना, बेशक, केवल उन समितियों के ग्रधिक से ग्रधिक सक्रिय समर्थन से ही तामील की जायेगी, जिन्होंने ग्रनेक बार पार्टी को एकताबद्ध करने के लिए क़दम उठाये हैं ग्रौर जो, हमारा विश्वास है, ग्राज नहीं, तो कल, एक नहीं, तो दूसरे रूप में वह एकता उपलब्ध करेंगी।

को अडिग ढंग से चला सके; पर्याप्त रूप से लोचदार होगा, ताकि एक तरफ़ तो ज़बर्दस्त दुश्मन के ख़िलाफ़, जब वह एक-एक स्थान पर अपनी सारी शक्तियां संकेंद्रित कर दे, खुली मुठभेड़ से कतरा सके और, दूसरी तरफ़, उसके बेडौलपन का फ़ायदा उठा सके और जब तथा जहां वह कम से कम हमले की उम्मीद करता हो, तब और वहां उस पर हमला कर सके। आज हमारे सामने बड़े शहरों की सड़कों पर विद्यार्थियों के प्रदर्शनों को समर्थन प्रदान करने का अपेक्षाकृत आसान कार्यभार है। कल हमारे सामने, मिसाल के लिए, किसी ख़ास क्षेत्र में बेकारों के आंदोलन को समर्थन देने का ज़्यादा कठिन कार्यभार प्रस्तुत हो सकता है। परसों हमें किसी किसान विद्रोह में क्रांतिकारी ढंग से भाग लेने के लिए अपनी-अपनी जगहें संभालनी पड़ सकती हैं। आज हमें ज़ेम्स्त्वो[32] के ख़िलाफ़ सरकारी मुहिम से पैदा हुई क्षुब्ध राजनीतिक परिस्थिति से फ़ायदा उठाना चाहिए। कल हमें ज़ारशाही के एक या दूसरे धृष्ट लुटेरे के ख़िलाफ़ आबादी के क्षोभ का समर्थन करना चाहिए और बहिष्कार, दुतकार, प्रदर्शन, आदि के ज़रिये उसको ऐसा सबक़ सिखाने में मदद करनी पड़ेगी कि उसे खुलेआम क़दम पीछे हटाने के लिए मजबूर होना पड़े। इस हद तक जुझारू तैयारी केवल नियमित फ़ौजों की सतत सरगर्मियों द्वारा ही संपन्न की जा सकती है। अगर हम सम्मिलित अख़बार को निकालने में अपनी सारी शक्तियां जुटा दें, तो उस काम से केवल अधिकतम समर्थ प्रचारक ही नहीं, बल्कि अधिकतम कुशल संगठनकर्त्ता, पार्टी के अधिकतम मेधावी राजनीतिक नेता भी प्रशिक्षित होकर आगे आयेंगे, जो सही वक़्त पर निर्णायक संघर्ष का नारा बुलंद करने और उस संघर्ष का नेतृत्व करने में समर्थ होंगे।

अंत में चंद शब्द संभव ग़लतफ़हमी से बचने के लिए। हमने लगातार व्यवस्थित, नियोजित तैयारी की बात की है, फिर भी हमारा मतलब किसी प्रकार यह नहीं रहा है कि तानाशाही को केवल नियमित घेरेबंदी अथवा संगठित हमले से ही उलटा जा सकता है। ऐसा विचार बेहूदा और जड़सूत्री होगा। इसके विपरीत, यह बिलकुल संभव और ऐतिहासिक दृष्टि से कहीं अधिक संभव है कि तानाशाही उन स्वतःस्फूर्त विस्फोटों अथवा अप्रत्याशित राजनीतिक उलझावों में से किसी एक के दबाव से ध्वस्त हो जाये, जिनका ख़तरा उसे निरंतर और हर तरफ़ से रहता है। लेकिन

दुस्साहसिक जुएबाज़ियों से बचने की चाह रखनेवाली कोई भी राजनीतिक पार्टी ऐसे विस्फोटों और ऐसे उलझावों की प्रत्याशा को अपनी सरगर्मियों का आधार नहीं बना सकती। हमें अपनी राह पर चलना चाहिए, अपने नियमित काम को जमकर करते रहना चाहिए और अप्रत्याशित घटनाओं पर हम जितना ही कम भरोसा करेंगे, उतना ही कम इसका ख़तरा होगा कि हम किसी अप्रत्याशित "ऐतिहासिक मोड़" की गिरफ़्त में आ जायें।

मई, १९०१ में लिखित।　खंड ५, पृ० १–१३

अर्थवाद के पैरवीकारों से एक बातचीत

हमारे एक प्रतिनिधि ने हमें जो पत्र भेजा है, उसे हम यहां अविकल रूप में प्रकाशित कर रहे हैं।

"रूसी सामाजिक-जनवादी अख़बारों को चिट्ठी

"अपने साथ निर्वासित साथियों के इस सुझाव के कि हम 'ईस्क्रा' के विषय में अपने विचार प्रकट करें, उत्तर में हमने इस अख़बार के साथ अपने मतभेद के कारण बताने का निर्णय किया है।

"राजनीतिक संघर्ष के प्रश्नों से ख़ास तौर पर सरोकार रखनेवाले एक विशेष सामाजिक-जनवादी अख़बार के निकलने की पूर्ण सामयिकता को स्वीकार करते हुए भी हम यह नहीं मानते कि 'ईस्क्रा', जिसने इस कार्यभार को अपने हाथों में लिया है, इसे संतोषप्रद ढंग से हल कर पायेगा। अख़बार की मुख्य त्रुटि, जो उसके सारे कालमों में लाल धागे की तरह पिरोयी हुई है और जो उसकी छोटी-बड़ी दूसरी सारी त्रुटियों का कारण है, इस बात में निहित है कि 'ईस्क्रा' आंदोलन की इन या उन धाराओं पर उसके विचारधारा-निरूपकों के प्रभाव को प्रमुख स्थान देता है। इसके साथ ही 'ईस्क्रा' आंदोलन के उन भौतिक तत्वों तथा भौतिक परिवेश को ध्यान में कम रखता है, जिनकी अन्योन्यक्रिया एक निश्चित प्रकार के मज़दूर आंदोलन का निर्माण करती है, और उसका वह पथ निर्धारित करती है, जिससे विचारधारा-निरूपक आंदोलन को अपनी सारी ताक़त लगाकर भी नहीं हटा सकते, भले ही वे सर्वोत्तम सिद्धांतों और कार्यक्रमों से क्यों न अनुप्राणित हों।

"'ईस्क्रा' की यह त्रुटि उसकी 'यूज्नी राबोची'[33] के साथ, जो 'ईस्क्रा' की भांति राजनीतिक संघर्ष का झंडा उठाते हुए उसे दक्षिण रूसी

मज़दूर आंदोलन के पूर्ववर्ती दौर के साथ जोड़ता है, तुलना करने पर आंखों के सामने विशेष तीक्ष्ण रूप से उभरती है। प्रश्न का इस प्रकार प्रस्तुतीकरण 'ईस्क्रा' के लिए परायी चीज़ है। अपने सामने 'चिनगारी* से बहुत बड़ी आग' भड़काने का ध्येय निर्दिष्ट करते समय वह यह भूल जाता है कि इसके लिए उपयुक्त प्रज्ज्वलनशील सामग्री और अनुकूल बाहरी परिस्थितियां आवश्यक होती हैं। 'अर्थवादियों' से पूरी तरह अपना पिंड छुड़ाते समय 'ईस्क्रा' इस बात को नज़र से ओझल कर देता है कि उनकी गतिविधियों ने फ़रवरी तथा मार्च की घटनाओं में मज़दूरों की उस शिरकत का पथ प्रशस्त किया था, जिस पर 'ईस्क्रा' विशेष प्रयत्न के साथ ज़ोर डालता है और जिसे वह सभी लक्षणों के अनुसार बहुत ज़्यादा अतिरंजित करता है। गत शताब्दी के अंतिम दशक के दौरान सामाजिक-जनवादियों के कार्यकलाप के प्रति नकारात्मक रुख़ अपनाते हुए 'ईस्क्रा' उस समय छोटी-मोटी मांगों के लिए संघर्ष करने के अलावा किसी भी तरह के अन्य कामों के लिए परिस्थितियों के अभाव की तथा इस संघर्ष के ज़बर्दस्त शैक्षणिक महत्व की उपेक्षा करता है। उस अवधि की तथा रूसी सामाजिक-जनवादियों के कार्यकलाप की इस दिशा का सरासर ग़लत और अनैतिहासिक मूल्यांकन करते हुए 'ईस्क्रा' उनकी कार्यनीति को ज़ुबातोव की कार्यनीति के सदृश मानता है, यह न देखते हुए कि 'छोटी-मोटी मांगों के लिए संघर्ष', जो मज़दूर आंदोलन का विस्तार करता है और उसे गहन बनाता है, तथा उन 'छोटी-मोटी रिआयतों' के बीच अंतर है, जिनका उद्देश्य प्रत्येक संघर्ष और प्रत्येक आंदोलन को अपंग बना देना है।

"पंथवादी असहिष्णुता से, जो सामाजिक आंदोलनों के शैशव काल के विचारधारा-निरूपकों की इतनी अभिलाक्षणिकता थी, पूर्णतः ओतप्रोत 'ईस्क्रा' अपने साथ किसी भी असहमति को सामाजिक-जनवादी सिद्धांतों से विचलन के ही नहीं, अपितु शत्रु के शिविर में जा पहुंचने के रूप में कलंकित करने के लिए तैयार है। उसने ऐसी ही घोर अश्लीलतापूर्ण तथा सबसे कड़ी और निर्मम निंदा योग्य हरकत 'राबोचाया मीस्ल' के साथ की है, जिसे उसने ज़ुबातोव के संबंध में अपना लेख अर्पित किया है और

---

*चिनगारी का रूसी मतलब ईस्क्रा है। – सं०

जिसे मज़दूरों के एक हिस्से के बीच ज़ुबातोव की सफलता का श्रेय दिया गया है। अन्य सामाजिक-जनवादी संगठनों के प्रति, जो रूसी मज़दूर आंदोलन की गति और कार्यभारों को 'ईस्क्रा' से भिन्न दृष्टि से देखते हैं, नकारात्मक रवैया अपनाते हुए वह वाद-विवाद की गरमा-गरमी में कभी-कभी सच्चाई को भूल जाता है और अलग-थलग, वस्तुतः खेदजनक अभिव्यक्तियों में मीन-मेख निकालते हुए अपने विरोधियों के मत्थे वे विचार मढ़ देता है, जो उनके नहीं होते, मतभेद के उन मुद्दों पर ज़ोर देता है, जिनका बहुधा बहुत ही कम सारभूत महत्व होता है और विचारों में बहुत-सारे संपर्क-बिंदुओं पर हठपूर्वक चुप्पी साधे रहता है: हमारा आशय 'राबोचेये देलो' के प्रति 'ईस्क्रा' के रुख़ से है।

"वाद-विवाद की ओर उसका बेहद झुकाव सबसे पहले आंदोलन में 'विचारधारा' (कार्यक्रमों, सिद्धांतों...) की भूमिका के उस द्वारा अतिरंजित मूल्यांकन से पैदा होता है और अंशतः उस आपसी तू-तड़ाक की प्रतिध्वनि है, जो पश्चिम में रूसी उत्प्रवासियों के बीच भड़क उठी है और जिसके बारे में उन्होंने अनेक वाद-विवादात्मक पुस्तिकाओं तथा लेखों में दुनिया को बताने में जल्दी बरती है। हमारी राय में उनके इन सारे मतभेदों का रूसी सामाजिक-जनवादी आंदोलन की वास्तविक गति पर लगभग कोई प्रभाव नहीं पड़ता, सिवाय इसके कि रूस में काम करनेवाले साथियों के बीच अवांछनीय फूट लाकर वे आंदोलन को नुक़सान पहुंचाते हैं, और इस कारण हम 'ईस्क्रा' के जोशभरे वाद-विवाद के प्रति अस्वीकृति का रुख़ अपनाये बिना नहीं रह सकते, ख़ास तौर पर तब, जब वह शिष्टता की सीमाएं लांघ जाता है।

"'ईस्क्रा' की यही बुनियादी त्रुटि नाना सामाजिक वर्गों तथा प्रवृत्तियों के प्रति सामाजिक-जनवादियों के दृष्टिकोण के प्रश्न के विषय में उसकी असंगतता का भी कारण है। निरंकुशवाद के विरुद्ध संघर्ष में तत्काल संक्रमण के कार्यभार को सैद्धांतिक दलीलों से हल करके और शायद मौजूदा हालात में मज़दूरों के लिए इस तरह के कार्यभार की कठिनाई को अनुभव करते हुए, परंतु इस संघर्ष के लिए मज़दूरों द्वारा पर्याप्त शक्तियां जमा किये जाने तक प्रतीक्षा करने का धैर्य न होने के कारण 'ईस्क्रा' उदारतावादियों और बुद्धिजीवियों की क़तारों में संगी-साथी ढूंढ़ना शुरू कर देता है और

इस तलाश में वह वर्ग वैरभावों को धुंधला करते हुए, सरकार के प्रति असंतोष के एक समान कारणों को सबसे आगे लाते हुए – भले ही 'संगी-साथियों' के बीच इस असंतोष के कारण और मात्रा अत्यंत भिन्न-भिन्न क्यों न हों – अकसर वर्ग दृष्टिकोण से विचलित हो जाता है। ऐसा ही है, उदाहरण के लिए, ज़ेम्स्त्वो के प्रति 'ईस्क्रा' का रुख़। वह ज़ेम्स्त्वो की छिद्रान्वेषी हरकतों को, जिन्हें सरकार द्वारा उद्योग की तुलना में ज़ेम्स्त्वो के महाशयों की कृषि संबंधी आकांक्षाओं की अपर्याप्त चिंता जन्म देती है, भड़काकर राजनीतिक संघर्ष की लपटों में बदलने का प्रयास करता है और सरकार के रोटी के टुकड़ों से असंतुष्ट अभिजातों को मज़दूर वर्ग की सहायता का वचन देता है, परंतु आबादी की इन श्रेणियों के बीच विद्यमान वर्गगत वैमनस्य के विषय में एक शब्द भी नहीं कहता। हम यह मान सकते हैं कि ज़ेम्स्त्वोवालों के जागने की बात करना और ज़ेम्स्त्वो को सरकार के विरुद्ध लड़ रहे तत्व के रूप में लक्षित करना संभव है, परंतु यह बात इतने सुस्पष्ट और साफ़-साफ़ ढंग से कही जानी चाहिए, जिससे इस तरह के तत्वों के साथ हमारे संभव समझौते के स्वरूप के बारे में संदेह की कोई गुंजाइश न रह जाये। परंतु 'ईस्क्रा' ज़ेम्स्त्वो के प्रति हमारे रुख़ के प्रश्न को इस तरह प्रस्तुत करता है कि यह, हमारी राय में, वर्ग चेतना को केवल धुंधला ही बना सकता है, क्योंकि यहां उदारतावाद और विभिन्न सांस्कृतिक पहलों के विभिन्न प्रचारकों की ही भांति 'ईस्क्रा' ने सामाजिक-जनवादी साहित्य के आधारभूत कार्यभार का, उस कार्यभार का प्रतिसंतुलन स्थापित कर दिया है, जो वर्गगत वैरभावों को धूमिल करने में नहीं, अपितु बुर्जुआ प्रणाली की आलोचना करने तथा वर्गगत हितों को स्पष्ट करने में निहित है। ऐसा ही है छात्र-आंदोलन के प्रति 'ईस्क्रा' का रुख़। और फिर भी 'ईस्क्रा' दूसरे लेखों में सब तरह के 'रिआयती समझौतों' की तीक्ष्ण रूप से निंदा करता है और, उदाहरण के लिए, गेदपंथियों के असह्य आचरण की हिमायत करता है।

"'ईस्क्रा' की अन्य छोटी-मोटी त्रुटियों और भूलों की चर्चा न करते हुए हम अंत में यह लक्षित करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं कि हम अपनी आलोचना द्वारा ज़रा भी उस महत्व को नहीं घटाना चाहते, जो 'ईस्क्रा' प्राप्त कर सकता है, और न हम उसके गुणों की ओर से आंखें मूंदते हैं।

हम रूस में राजनीतिक, सामाजिक-जनवादी अख़बार के रूप में उसका अभिनंदन करते हैं। हम आतंक के प्रश्न के सफल स्पष्टीकरण को, जिसके विषय में उसने कई सामयिक लेख प्रकाशित किये, उसकी बहुत बड़ी सेवा मानते हैं। अंत में, हम 'ईस्क्रा' की अनुकरणीय साहित्यिक भाषा को, जो ग़ैर क़ानूनी प्रकाशनों में इतनी विरल होती है, उसके नियमित रूप से प्रकाशन को, उसमें ताज़ा और रोचक सामग्री की प्रचुरता को लक्षित किये बिना नहीं रह सकते।

सितंबर, १९०१

साथीगण "

इस चिट्ठी के संबंध में हम सबसे पहले यह लक्षित करते हैं कि हम उसके लेखकों की स्पष्टवादिता और दो-टूकपन का हार्दिक अभिनंदन करते हैं। अपने अर्थवादी "credo"* को छुपाकर (जैसा कि ओदेसा समिति का एक हिस्सा करता है, जिससे "राजनीतिज्ञ" अलग हो गये हैं) अथवा सत्य का मानो मखौल उड़ाते हुए यह घोषित कर कि इस समय "एक भी सामाजिक-जनवादी संगठन अर्थवाद का दोषी नहीं है" ('राबोचेये देलो' की पुस्तिका 'दो कांग्रेसें', पृ० ३२) आंख-मिचौनी खेलना बंद करने का समय बहुत पहले गुज़र चुका है।—अब काम की बात की जाये।

चिट्ठी के लेखकों की बुनियादी ग़लती वही है, जिसमें 'राबोचेये देलो' जा धंसा है (देखें विशेष रूप से अंक १०)। वे आंदोलन के "भौतिक" ('राबोचेये देलो' के शब्द में—स्वतःस्फूर्त) तथा विचारधारात्मक (सचेत, "योजना के अनुसार" क्रियाशील) तत्वों के बीच संबंधों के प्रश्न पर गडमडा जाते हैं। वे यह नहीं समझते कि "विचारधारा-निरूपक" केवल तभी अपने नाम के योग्य होता है, जब वह स्वतःस्फूर्त आंदोलन से आगे चलता है, उसे मार्ग दिखाता है, जब वह उन सब सैद्धांतिक, राजनीतिक, कार्यनीतिक तथा संगठनात्मक प्रश्नों को दूसरों से पहले हल करने में समर्थ होता है, जिनका सामना आंदोलन के "भौतिक तत्व" स्वतःस्फूर्त ढंग से करते हैं। सचमुच "आंदोलन के भौतिक तत्वों को ध्यान में रख सकने

---

*आस्था का प्रतीक, कार्यक्रम, विश्वदृष्टिकोण की व्याख्या।—सं०

के लिए" उनके प्रति आलोचनात्मक रवैया अपनाना आवश्यक है, स्वतः-स्फूर्त आंदोलन के ख़तरों तथा त्रुटियों को लक्षित करने, स्वतःस्फूर्तता को चेतना के स्तर तक **ऊपर उठाने** में सक्षम होना आवश्यक है। परंतु यह बात कहने का कि विचारधारा-निरूपक (याने राजनीतिक दृष्टि से सचेत नेता) आंदोलन को परिवेश तथा तत्वों की अन्योन्यक्रिया द्वारा निर्धारित मार्ग से नहीं हटा सकते, अर्थ इस स्वयंसिद्ध सत्य को भुला बैठना है कि चेतन-शीलता इस अन्योन्यक्रिया में तथा इस मार्ग-निर्धारण में **भाग लेती है**। यूरोप में कैथोलिक तथा राजतंत्रवादी मज़दूर यूनियनें भी परिवेश तथा तत्वों की अन्योन्यक्रिया का अपरिहार्य परिणाम हैं, परंतु इस अन्योन्यक्रिया में समाजवादियों की नहीं, अपितु पादरियों तथा जुबातोवों की चेतनशीलता ने भाग लिया। इस चिट्ठी के लेखकों के सैद्धांतिक विचार ('राबोचेये देलो' के विचार की भांति) मार्क्सवाद का प्रतिनिधित्व नहीं करते, अपितु उसकी पैरोडी हैं, जिसे स्वतःस्फूर्त क्रमविकास को सचेत क्रांतिकारी कार्य-कलाप के साथ जोड़ने में असमर्थ हमारे "आलोचक" और बर्नस्टीनवादी पोषित करते हैं।

हमारी आज की परिस्थिति में यह गहन सैद्धांतिक ग़लती अनिवार्यतः और भी बड़ी कार्यनीतिक ग़लती की ओर ले जाती है, जो रूसी सामा-जिक-जनवाद को अकूत हानि पहुंचा चुकी है और पहुंचा रही है। बात यह है कि मज़दूर जनसाधारण का और (उनके प्रभाव की बदौलत) अन्य सामाजिक श्रेणियों में स्वतःस्फूर्त उभार पिछले कुछ वर्षों से विस्मयजनक तेज़ रफ़्तार के साथ आता जा रहा है। आंदोलन के "भौतिक तत्व" १८९८ तक की तुलना में[34] विराट रूप में संवर्द्धित हुए हैं, परंतु **सचेत नेता** (सामाजिक-जनवादी) **इस संवर्द्धन से पिछड़ गये हैं**। इसी में रूसी सामाजिक-जनवाद द्वारा इस समय झेले जा रहे संकट का बुनियादी कारण निहित है। जन-व्यापी (स्वतःस्फूर्त) आंदोलन के पास ऐसे "विचारधारा-निरूपकों" की कमी है, जो सब तरह के ढुलमुलपन से बचे रहने के लिए सैद्धांतिक दृष्टि से पर्याप्त रूप में प्रशिक्षित हों, उसके पास ऐसे व्यापक राजनीतिक दृष्टिकोणवाले, ऐसी क्रांतिकारी स्फूर्तिवाले, ऐसी संगठनात्मक प्रतिभावाले नेताओं की कमी है, जो नये आंदोलन के आधार पर एक जुझारू राजनीतिक पार्टी का निर्माण कर सकें।

परंतु यह सब अभी आधी ही बदक़िस्मती होती। सैद्धांतिक ज्ञान, राजनीतिक अनुभव तथा संगठनकारी योग्यता – ये सब चीज़ें हासिल की जा सकती हैं। आवश्यक केवल यह है कि इन अपेक्षित गुणों का अध्ययन करने तथा उन्हें अर्जित करने की इच्छा हो। परंतु १८९७ के अंत से, विशेष रूप से १८९८ की पतझड़ से रूसी सामाजिक-जनवादी आंदोलन में ऐसे लोग और ऐसी पत्र-पत्रिकाएं उभरे हैं, जिन्होंने इस त्रुटि की ओर से न केवल अपनी आंखें मूंद ली हैं, अपितु जिन्होंने इसे विशेष गुण घोषित किया है, जिन्होंने स्वतःस्फूर्तता की पूजा को और उसके प्रति दास-भावना को ऊपर सिद्धांत के स्तर पर पहुंचा दिया, जो यह उपदेश देते रहे हैं कि सामाजिक-जनवादियों को आंदोलन के आगे नहीं, अपितु उसकी **दुम के साथ बंधकर** घिसटते चलना चाहिए। (इन पत्र-पत्रिकाओं में केवल 'राबोचाया मीस्ल' ही नहीं, अपितु 'राबोचेये देलो' भी है, जिसने "मंज़िलों के सिद्धांत" के साथ शुरूआत की थी और जो स्वतःस्फूर्तता, "वर्तमानकालीन आंदोलन के पूर्ण अधिकारों", "प्रक्रिया के रूप में कार्य-नीति", आदि की सिद्धांततः पैरवी पर ख़त्म हो गया।)

यह सब असल बदक़िस्मती बन चुकी थी। यह सब उस **विशेष प्रवृत्ति** का गठन था, जिसे आम तौर से अर्थवाद (शब्द के व्यापक अर्थ में) कहा जाता है और जिसका विशेष गुण **पिछड़ेपन की**, याने जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं, जनसाधारण के स्वतःस्फूर्त उभार से सचेत नेताओं के **पिछड़ जाने** की नासमझी में, यहां तक कि **हिमायत** में निहित है। इस प्रवृत्ति की अभिलाक्षणिकताएं हैं: सिद्धांतों के मामले में – मार्क्सवाद को विकृत करना तथा आधुनिक "आलोचना" के, अवसरवाद के इस नवीनतम रूपांतर के सामने बेबसी; राजनीतिक मामले में – राजनीतिक आंदोलन तथा राजनीतिक संघर्ष को सीमित करने अथवा उन्हें तुच्छ गतिविधियों में परिवर्तित करने की इच्छा अथवा इस बात की नासमझी कि आम जनवादी आंदोलन का नेतृत्व **अपने** हाथों में न लेने पर सामाजिक-जनवादी राजतंत्र का तख़्ता नहीं उलट सकते; कार्यनीति के मामले में – घोर डांवांडोलपन ('राबोचेये देलो' पिछले वसंत में आतंक के "नये" प्रश्न के सामने हैरान रह गया था और केवल आधे वर्ष बाद जाकर, काफ़ी डांवांडोल रहने और सदा की भांति आंदोलन की दुम के साथ बंधकर घिसटते रहने

के बाद उसने एक बहुत ही द्वयर्थक प्रस्ताव में आतंकवाद के विरुद्ध अपना विचार व्यक्त किया); संगठन के मामले में – इस बात की नासमझी कि आंदोलन का जनव्यापी स्वरूप क्रांतिकारियों का एक ऐसा मज़बूत और केंद्रीयकृत संगठन स्थापित करने के, जो तैयारी संबंधी संघर्ष, प्रत्येक अप्रत्याशित विस्फोट और, अंततः, अंतिम निर्णायक धावे का नेतृत्व करने में सक्षम हो, हमारे दायित्व को घटाता नहीं, अपितु इसके विपरीत उसे बढ़ाता है।

हम इस प्रवृत्ति के विरुद्ध अनम्य संघर्ष करते रहे और करते रहेंगे। चिट्ठी के लेखक, स्पष्टतः, इसी प्रवृत्ति के लोग हैं। वे हमें बताते हैं कि आर्थिक संघर्ष ने प्रदर्शनों में मज़दूरों की शिरकत का मार्ग प्रशस्त किया था। जी हां, लेकिन हमने ही सबसे पहले और सबसे ज़्यादा गहनतापूर्वक इस तैयारी का उस समय मूल्यांकन किया था, जब हमने दिसंबर १९०० (अंक १) में मंज़िलों के सिद्धांत का विरोध किया था,* और जब फ़रवरी (अंक २) में, सेना में छात्रों की जबरन भरती के फ़ौरन बाद और प्रदर्शनों से पहले छात्रों की सहायता के लिए पहुंचने का मज़दूरों का आह्वान किया था।** फ़रवरी तथा मार्च की घटनाओं ने 'ईस्क्रा' के "भय और आशंकाओं का खंडन नहीं किया" (जैसा कि मार्तीनोव इस मसले की पूरी नासमझी प्रदर्शित करते हुए सोचते हैं – 'राबोचेये देलो', अंक १०, पृ० ५३), अपितु उनकी पूरी तरह पुष्टि की, इसलिए कि नेता जनसाधारण के स्वतःस्फूर्त उभार से **पिछड़ गये** और नेताओं के रूप में अपने दायित्व की पूर्ति के लिए तैयार सिद्ध नहीं हुए। यह तैयारी वर्तमान काल में भी अभी सर्वथा अपर्याप्त है और इस कारण "विचारधारा की भूमिका के अतिरंजित मूल्यांकन" और स्वतःस्फूर्त तत्व की तुलना में सचेत तत्व की भूमिका, आदि के बारे में सारी बातें हमारी पार्टी पर सर्वाधिक हानिकर व्यावहारिक प्रभाव डालती जा रही हैं।

---

*व्ला० इ० लेनिन, 'हमारे आंदोलन के तात्कालिक कार्यभार', १९००। – सं०

**व्ला० इ० लेनिन, 'फ़ौज में १८३ विद्यार्थियों की जबर्दस्ती भरती', १९०१। – सं०

इतना ही हानिकर प्रभाव यह बात भी डाल रही है कि मानो वर्ग दृष्टिकोण की पैरवी की ख़ातिर आबादी की विभिन्न श्रेणियों के सरकार के विरुद्ध असंतोष के सामान्य स्वरूप पर कम ज़ोर देना आवश्यक है। इसके विपरीत हमें इस बात पर गर्व है कि 'ईस्क्रा' आबादी की **समस्त** श्रेणियों के बीच राजनीतिक असंतोष को उत्तेजित करता है, और हमें केवल यह खेद है कि हम यह काम और बड़े पैमाने पर नहीं कर पा रहे हैं। यह सच नहीं है कि ऐसा करते समय हम वर्ग दृष्टिकोण में धुंधलापन ला रहे हैं: चिट्ठी के लेखकों ने ऐसे धुंधलेपन का एक भी ठोस उदाहरण न तो प्रस्तुत किया और न कर सकते हैं। परंतु जनवाद के लिए अग्रगामी योद्धा होने के नाते सामाजिक-जनवाद को – 'राबोचेये देलो' द्वारा अपने अंक १०, पृ० ४१ में प्रस्तुत राय के बावजूद – विपक्ष की विभिन्न श्रेणियों की गतिविधियों का नेतृत्व करना चाहिए, सरकार के विरुद्ध उनके आंशिक तथा व्यावसायिक टकरावों का सामान्य राजनीतिक महत्व उन्हें समझाना चाहिए, उन्हें क्रांतिकारी पार्टी के समर्थन में एकजुट करना चाहिए, अपनी पांतों से ऐसे नेता प्रशिक्षित करने चाहिए, जो विपक्ष की सभी और सब प्रकार की श्रेणियों पर राजनीतिक प्रभाव डालने में सक्षम हों। इस कार्य का किसी भी तरह का परित्याग – चाहे वह सर्वहारा संघर्ष के साथ घनिष्ठ, आंगिक संबंध, आदि के बारे में कैसे ही शानदार फ़िक़रों से क्यों न ढका हो – सामाजिक-जनवादियों के "पिछड़ जाने" की नयी "पैरवी" के, राष्ट्रव्यापी जनवादी आंदोलन से पिछड़ जाने की पैरवी के समान है, नेतृत्व की भूमिका बुर्जुआ जनवाद के हाथों में सौंप देने के समान है। चिट्ठी के लेखक इस बात पर विचार करें कि गत वर्ष के वसंत की घटनाओं ने सामाजिक-जनवाद की प्रतिष्ठा तथा सम्मान बढ़ाने के बजाय ग़ैर सामाजिक-जनवादी क्रांतिकारी प्रवृत्तियों को इतनी प्रेरणा क्यों दी!

हम उस आश्चर्यजनक अदूरदर्शिता का विरोध किये बिना भी नहीं रह सकते, जो चिट्ठी के लेखकों ने राजनीतिक उत्प्रवासियों के बीच वाद-विवाद और आपसी झगड़ों के प्रश्न पर प्रकट किया है। वे ज़ुबातोव के विषय में एक लेख 'राबोचाया मीस्ल' को अर्पित करने की अश्लीलता के विषय में बासी हो चुकी बकवास को दुहराते हैं। क्या वे इस बात से इनकार करने की सोचते हैं कि अर्थवाद का प्रसार ज़ुबातोव महाशयों

के कार्यभार को हल्का बना देता है? परंतु हम यह कहते हुए अर्थवादियों की कार्यनीति तथा ज़ुबातोव की कार्यनीति को कदापि "एक जैसी" नहीं समझते। जहां तक "उत्प्रवासियों" का सरोकार है (यदि चिट्ठी के लेखक रूसी सामाजिक-जनवादी आंदोलन में विचारों की निरंतरता के प्रति इतनी अक्षम्य लापरवाही न बरतते, तो उन्हें पता होता कि अर्थवाद के बारे में उत्प्रवासियों द्वारा, ठीक-ठीक 'श्रम-मुक्ति' दल[35] द्वारा दी गयी चेतावनी की अत्यंत ज्वलंत रूप से पुष्टि हो गयी!), तो ज़रा सुनिये कि १८५२ में राइन के मज़दूरों के बीच सक्रिय लासाल ने लंदनवासी उत्प्रवासियों में विवाद के बारे में क्या राय दी थी। उन्होंने मार्क्स को लिखा:

"'बड़े लोगों', किंकेल, रूगे, आदि के विरुद्ध आपकी रचना के प्रकाशन में पुलिस की ओर से मुश्किल से ही कोई कठिनाई पेश आयेगी... सरकार, मेरे ख़याल से, ऐसी रचनाओं के प्रकाशन के विरुद्ध नहीं है, इसलिए कि वह सोचती है कि 'क्रांतिकारी स्वयं एक-दूसरे का गला काट डालेंगे।' नौकरशाही तर्क को इस बात का न तो कोई संदेह है और न भय कि पार्टी संघर्ष पार्टी को ताक़त और जीवन-शक्ति प्रदान करता है, कि पार्टी की कमज़ोरी का सबसे बड़ा प्रमाण उसकी अस्पष्टता, तीक्ष्ण रूप से निर्धारित सीमाओं का धुंधला पड़ जाना है, कि पार्टी अपने अंदर सफ़ाई करके और मज़बूत बनती है" (मार्क्स को लासाल की चिट्ठी, २४ जून, १८५२)।

सख़्ती, अनम्यता, उत्कट वाद-विवाद, आदि के बहुत-सारे नेकदिल विरोधी इसे ध्यान में रखें!

अंत में यह उल्लेख कर दें कि हम यहां विवादास्पद प्रश्नों पर केवल सरसरी तौर से विचार कर पाये हैं। हम एक विशेष पुस्तिका में इनकी विस्तारपूर्वक छानबीन करेंगे, जो, हमें आशा है, डेढ़ माह में प्रकाशित हो जायेगी।

दिसंबर, १९०१ में
प्रकाशित।

खंड ५, पृ० ३६०–३६७

जनवादी क्रांति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियां[36]

जून – जुलाई, १९०५
में लिखित।

खंड ११, पृ० १–१३१

भूमिका

क्रांतिकारी दौर में उन घटनाओं पर बराबर नज़र रखना बहुत कठिन होता है, जिनसे क्रांतिकारी पार्टियों के कार्यनीति संबंधी नारों का मूल्यांकन करने के लिए नयी सामग्री आश्चर्यजनक परिमाण में मिल जाती है। प्रस्तुत पुस्तिका ओदेसा की घटनाओं* से पहले लिखी गयी थी। हम 'प्रोलेतारी'[38] (अंक ९, 'क्रांति सिखाती है') में पहले ही बता चुके हैं कि जिन सामाजिक-जनवादियों ने विद्रोह-प्रक्रिया के सिद्धांत की रचना की थी और अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के प्रचार को अस्वीकार किया था, इन घटनाओं ने उन्हें भी वस्तुतः अपने विरोधियों के पक्ष में आ जाने या आना शुरू करने पर मजबूर कर दिया है। क्रांति निस्संदेह इतनी तेजी तथा इतनी संपूर्णता के साथ सिखाती है कि वे राजनीतिक विकास के शांतिपूर्ण दौरों में असंभव प्रतीत होती हैं। और विशेष रूप से महत्वपूर्ण यह है कि वह केवल नेताओं को ही नहीं, बल्कि अवाम को भी सिखाती है।

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि क्रांति रूस के मज़दूर समूहों को सामाजिक-जनवाद की शिक्षा देगी। समाज के विभिन्न वर्गों के वास्तविक स्वरूप को प्रदर्शित करके, हमारे जनवाद के बुर्जुआ चरित्र तथा किसानों की सच्ची आकांक्षाओं को प्रदर्शित करके, जो बुर्जुआ-जनवादी अर्थ में तो क्रांतिकारी होते हैं, पर जिनके मन में "समाजीकरण" का विचार नहीं, बल्कि किसान बुर्जुआ वर्ग तथा ग्रामीण सर्वहारा वर्ग के बीच एक नये वर्ग संघर्ष के बीज निहित होते हैं, क्रांति व्यवहार में सामाजिक-जनवाद के कार्यक्रम तथा कार्यनीति की पुष्टि करेगी। पुराने नरोदवाद के पुराने भ्रम, जो, उदाहरण के लिए, "समाजवादी-क्रांतिकारी पार्टी"[39] के कार्यक्रम में, रूस

---

*यह संकेत बख़्तरबंद जहाज़ 'प्रिंस पोत्योमकिन' पर विद्रोह की ओर है[37]। (१९०७ के संस्करण में लेखक की टिप्पणी।–सं०)

में पूंजीवाद के विकास के प्रश्न में, हमारे "समाज" के जनवादी स्वरूप के प्रश्न में और किसान विद्रोह की पूर्ण विजय के महत्व के प्रश्न में इतने स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं – इन सारे भ्रमों को क्रांति बड़ी निर्ममतापूर्वक और आख़िरी तौर से एक झोंके में उड़ा देगी। पहली बार वह विभिन्न वर्गों का वास्तविक राजनीतिक बपतिस्मा करेगी। ये वर्ग क्रांति में से एक निश्चित राजनीतिक आकृति धारण करके निकलेंगे, क्योंकि वे अपने को न केवल अपने विचारधारा-निरूपकों के कार्यक्रमों तथा कार्यनीतिक नारों में, बल्कि अवाम की खुली राजनीतिक हलचल में भी प्रकट कर चुके होंगे।

निस्संदेह क्रांति हमें सिखायेगी, आम जनता को सिखायेगी। परंतु इस समय जुझारू राजनीतिक पार्टी के सामने **प्रश्न** यह है: क्या हम क्रांति को कुछ सिखा पायेंगे? क्या हम अपनी सामाजिक-जनवादी शिक्षा के सही होने का, एकमात्र पूर्णतः क्रांतिकारी वर्ग, याने सर्वहारा वर्ग के साथ अपने संबंध का फ़ायदा उठा सकेंगे, ताकि क्रांति पर सर्वहारा वर्ग की छाप डाल सकें, ताकि शब्दों में नहीं, बल्कि व्यवहार में क्रांति को सच्ची तथा निश्चित विजय की मंज़िल तक पहुंचा सकें, ताकि जनवादी बुर्जुआ वर्ग की अस्थिरता, उसकी ढुलमुल नीति तथा उसके विश्वासघात को निष्फल कर सकें?

हमें इसी लक्ष्य को सिद्ध करने में अपनी सारी ताक़त लगा देनी चाहिए। और इस लक्ष्य की सिद्धि एक तरफ़ तो इस बात पर निर्भर होगी कि हम राजनीतिक परिस्थिति का मूल्यांकन सही-सही करें, हमारे कार्यनीतिक नारे ठीक हों और दूसरी तरफ़, इस बात पर कि इन नारों को मज़दूर समूहों की वास्तविक संघर्षशील शक्ति का समर्थन प्राप्त हो। हमारी पार्टी के सभी संगठनों तथा ग्रुपों का सारा सामान्य, नियमित तथा चालू काम, प्रचार, आंदोलन तथा संगठन का काम अवाम के साथ अपने संबंधों को मज़बूत करने तथा बढ़ाने की ओर लक्षित है। यह काम हमेशा आवश्यक होता है, लेकिन क्रांतिकारी दौर में उसे अन्य किसी समय की अपेक्षा कहीं कम पर्याप्त समझा जा सकता है। ऐसे समय में मज़दूर वर्ग में खुले क्रांतिकारी संघर्ष की एक सहज धुन होती है और हमें इस संघर्ष के कार्यभारों को सही-सही निर्धारित करने में समर्थ होना चाहिए, ताकि फिर यथासंभव व्यापकतम रूप से लोगों को उन कार्यभारों से परिचित कराया

जा सके, उन्हें समझाया जा सके। इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि जनता के साथ हमारे संबंधों के बारे में जो निराशा फैली हुई है, वह क्रांति में सर्वहारा वर्ग की भूमिका के बारे में बुर्जुआ धारणाओं के लिए इस समय बहुधा एक आड़ का काम देती है। निस्संदेह अभी हमें मज़दूर वर्ग को शिक्षित तथा संगठित करने के सिलसिले में बहुत कुछ करना है, परंतु अब सारा सवाल यह है कि शिक्षा तथा संगठन के इस काम का मुख्य राजनीतिक गुरुत्व-केंद्र कहां रखा जाना चाहिए? ट्रेड-यूनियनों और क़ानूनी संस्थाओं में या सशस्त्र विद्रोह में, क्रांतिकारी सेना तथा क्रांतिकारी सरकार के निर्माण-कार्य में? दोनों ही मज़दूर वर्ग को शिक्षा देने तथा संगठित करने का काम करते हैं। दोनों ही बेशक आवश्यक हैं। परंतु इस समय, वर्तमान क्रांति में, सारा सवाल यह रह जाता है कि मज़दूर वर्ग की शिक्षा तथा संगठन में गुरुत्व-केंद्र कहां रखा जायेगा, पहले या दूसरे में?

क्रांति का परिणाम इस पर निर्भर है कि मज़दूर वर्ग बुर्जुआ वर्ग के ऐसे सहायक की भूमिका अदा करेगा, जो एकतांत्रिक शासन पर प्रहार करने की अपनी शक्ति की दृष्टि से मज़बूत, पर राजनीतिक दृष्टि से कमज़ोर है, या वह जन-क्रांति के नेता की भूमिका अदा करेगा। बुर्जुआ वर्ग के सचेत प्रतिनिधि इस बात को अच्छी तरह महसूस करते हैं। ठीक यही कारण है कि 'ओस्वोबोज्देनिये'[40] सामाजिक-जनवाद में अकीमोववाद की, अर्थवाद की प्रशंसा करता है, जो **इस समय** ट्रेड-यूनियनों तथा क़ानूनी संस्थाओं को सबसे प्रमुख स्थान देता है। यही कारण है कि श्री स्त्रूवे नव 'ईस्क्रा'-पंथ[41] में अकीमोववाद की उसूली प्रवृत्तियों का स्वागत करते हैं ('ओस्वोबोज्देनिये', अंक ७२)। यही कारण है कि वह रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस[42] के निर्णयों की निंदनीय क्रांतिकारी संकीर्णता पर तीव्र प्रहार करते हैं।

सामाजिक-जनवाद के सही कार्यनीतिक नारे इस समय आवाम का नेतृत्व करने के लिए असाधारण रूप से महत्वपूर्ण हैं। इससे बढ़कर ख़तरनाक कोई दूसरी चीज़ नहीं होती कि क्रांतिकारी युग में उसूली तौर से खरे कार्यनीतिक नारों के महत्व को घटाया जाये। उदाहरण के लिए, 'ईस्क्रा' अपने अंक १०४ में वस्तुतः सामाजिक-जनवादी आंदोलन में अपने विरोधियों की तरफ़ चला गया है, पर साथ ही वह उन नारों तथा कार्य-

नीतिक निर्णयों के महत्व की बाबत उपेक्षा प्रगट करता है, जो जीवन से आगे जाते हैं और उस पथ को इंगित करते हैं, जिस पर आंदोलन अनेक असफलताओं तथा ग़लतियों, आदि के बावजूद आगे बढ़ रहा है। इसके विपरीत जो पार्टी केवल घटनाओं की दुम में बंधे-बंधे घिसटना नहीं, बल्कि मार्क्सवाद के खरे उसूलों के अनुसार सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व करना चाहती है, उसके लिए सही कार्यनीतिक निर्णय करने का बहुत महत्व है। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के और पार्टी से अलग हो गये हिस्से के सम्मेलन* के प्रस्तावों में हमें उन कार्यनीतिक दृष्टियों की सबसे अधिक सही, सबसे अधिक सुविचारित तथा सबसे अधिक पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है, जिन्हें अलग-अलग लेखकों ने संयोगवश व्यक्त नहीं किया है, बल्कि जिन्हें सामाजिक-जनवादी सर्वहारा वर्ग के ज़िम्मेदार प्रतिनिधियों ने स्वीकार किया है। हमारी पार्टी औरों से आगे है, क्योंकि उसके पास एक सटीक कार्यक्रम है, जिसे सभी ने स्वीकार किया है। उसे दूसरी पार्टियों के सामने अपने कार्यनीतिक प्रस्तावों के प्रति सख़्ती के रवैये का उदाहरण भी प्रस्तुत करना चाहिए, बरख़िलाफ़ 'ओस्वोबोज्देनिये' के जनवादी बुर्जुआ वर्ग के अवसरवाद के, बरख़िलाफ़ समाजवादी-क्रांतिकारियों की क्रांतिकारी लफ़्फ़ाज़ी के, जिन्हें बस क्रांति के ही दौरान सहसा कार्यक्रम का "मस्विदा" पेश करने और पहली बार इस बात की छानबीन करने की सूझी कि उनकी आंखों के सामने बुर्जुआ क्रांति हो रही है कि नहीं।

यही कारण है कि रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के तथा उक्त सम्मेलन के कार्यनीतिक प्रस्तावों का ध्यानपूर्वक अध्ययन, उनमें मार्क्सवाद के उसूलों से भटकावों का निर्धारण और अपने लिए

---

*रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस में (जो मई, १६०५ में लंदन में हुई थी) केवल बोल्शेविकों ने भाग लिया था और "सम्मेलन" में (जो उसी समय जेनेवा में हुआ था) केवल मेंशेविकों ने भाग लिया था। इस पुस्तिका में इन मेंशेविकों को अकसर नव 'ईस्क्रा'-पंथी कहा गया है, क्योंकि 'ईस्क्रा' का प्रकाशन जारी रखते हुए उन्होंने अपने तत्कालीन अनुयायी त्रोत्स्की की मारफ़त यह घोषणा की कि पुराने तथा नव 'ईस्क्रा' के बीच एक खाई है। (१६०७ के संस्करण में लेखक की टिप्पणी। – सं०)

जनवादी क्रांति में सामाजिक-जनवादी सर्वहारा वर्ग के ठोस कार्यभारों का स्पष्टीकरण हम क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों का सबसे अनिवार्य काम समझते हैं। इसी काम के लिए यह पुस्तिका अर्पित है। जो लोग केवल नसीहत के शब्दों पर ही बस न करके पूरी रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के पूर्ण भावी एकीकरण के आधार के रूप में कार्यनीतिक एकता के लिए मार्ग प्रशस्त करने की सच्ची इच्छा रखते हैं, उन लोगों के लिए भी यह आवश्यक है कि हमारी कार्यनीति को मार्क्सवाद के उसूलों तथा क्रांति के सबक़ों के दृष्टिकोण से परखा जाये।

जुलाई, १९०५ न० लेनिन

१. एक तात्कालिक राजनीतिक प्रश्न

जिस क्रांतिकारी दौर से हम गुज़र रहे हैं, उसमें राष्ट्रव्यापी संविधान सभा बुलाने का प्रश्न तात्कालिक बन गया है। इस प्रश्न को कैसे हल किया जाये, इसके बारे में मतभेद हैं। इस संबंध में तीन राजनीतिक धाराएं देखने में आती हैं। ज़ारशाही सरकार जनता के प्रतिनिधियों को बुलाने की आवश्यकता को स्वीकार करती है, पर उनकी सभा को किसी भी हालत में राष्ट्रव्यापी तथा सांविधानिक नहीं बनने देना चाहती। यदि समाचारपत्रों में प्रकाशित बुलीगिन आयोग[43] के काम की रिपोर्टों पर विश्वास किया जाये, तो वह मानो आंदोलन की आज़ादी के अभाव के तहत, अर्हता-सीमित अथवा सामाजिक श्रेणी-सीमित चुनाव-पद्धति के तहत निर्वाचित सलाहकारी सभा के लिए राजी है। क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग सामाजिक-जनवादियों के नेतृत्व में होने के कारण यह मांग करता है कि सत्ता पूरी तरह संविधान सभा को हस्तांतरित कर दी जाये और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह न केवल सार्विक मताधिकार तथा आंदोलन की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने की, बल्कि फ़ौरन ज़ारशाही सरकार का तख़्ता उलटकर उसके स्थान पर एक अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की स्थापना करने की भी कोशिश करता है। अंत में उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग, जिसकी इच्छाओं की अभिव्यक्ति तथाकथित "सांविधानिक-जनवादी पार्टी" के नेता करते हैं, ज़ारशाही सरकार का तख़्ता उलटने की मांग नहीं करता, अस्थायी सरकार का नारा नहीं देता और इस बात के लिए सच्ची गारंटियों पर आग्रह नहीं करता कि चुनाव पूरी तरह स्वतंत्र तथा न्यायसंगत हों और प्रतिनिधियों की सभा सचमुच राष्ट्रव्यापी और सचमुच संविधान सभा हो। सारतः उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग, जो 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों का एकमात्र गंभीर सामाजिक आधार है, इस बात की कोशिश कर रहा है कि ज़ार तथा क्रांतिकारी जनता के बीच यथासंभव शांतिपूर्ण सौदा हो जाये, जो

साथ ही साथ ऐसा सौदा हो, जिसमें अधिकतम सत्ता उसे, अर्थात बुर्जुआ वर्ग को मिले और न्यूनतम सत्ता – क्रांतिकारी जनता को, सर्वहारा वर्ग तथा किसानों को।

यह है इस समय की राजनीतिक स्थिति। ये हैं आधुनिक रूस की तीन मुख्य सामाजिक शक्तियों के अनुरूप तीन मुख्य राजनीतिक धाराएं। हम अनेक बार 'प्रोलेतारी' (अंक ३,४,५) में* यह बता चुके हैं कि किस प्रकार क्रांति के प्रति अपनी ढुलमुल, या यदि दो-टूक तथा साफ़ कहें, तो अपनी घोर विश्वासघातक नीति को छिपाने के लिए 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी छद्म जनवादी लफ़्फ़ाज़ी का इस्तेमाल करते हैं। अब देखें कि सामाजिक-जनवादी इस समय के कार्यभार का किस प्रकार मूल्यांकन करते हैं। इसके लिए उन दो प्रस्तावों में बहुत उम्दा सामग्री मिल जाती है, जो अभी हाल ही में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस और पार्टी से अलग हो गये हिस्से के "सम्मेलन" द्वारा स्वीकार किये गये थे। यह प्रश्न बहुत अधिक महत्व रखता है कि इन प्रस्तावों में से कौन-सा राजनीतिक स्थिति का अधिक सही मूल्यांकन करता है, क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति को ज़्यादा ढंग से सही निर्धारित करता है, और हर सामाजिक-जनवादी को, जो एक प्रचारक, आंदोलनकारी तथा संगठनकर्त्ता के रूप में अपने कर्त्तव्यों को समझदारी के साथ पूरा करना चाहता है, सारी असंगत बातों को बिलकुल छोड़कर अत्यधिक ध्यानपूर्वक इस प्रश्न का अध्ययन करना चाहिए।

पार्टी की कार्यनीति से हमारा अभिप्राय है पार्टी का राजनीतिक आचरण अथवा उसकी राजनीतिक सरगर्मी के चरित्र, रुख़, तरीक़े। पार्टी कांग्रेसों में कार्यनीतिक प्रस्ताव इसलिए स्वीकार किये जाते हैं कि नये कार्यभारों के प्रसंग में या नयी राजनीतिक परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए समग्र रूप में पार्टी का राजनीतिक आचरण ठीक-ठीक निर्धारित कर दिया जाये। रूस में आरंभ हुई क्रांति के कारण इस प्रकार की नयी परिस्थिति

---

*देखें व्ला० इ० लेनिन, 'क्रांतिकारी संघर्ष और उदारतावादी गुमाश्तावाद', 'क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग के जनवादी कार्यभार' तथा 'बुर्जुआ वर्ग के विश्वासघात के पहले क़दम'। – सं०

उत्पन्न हो गयी है, अर्थात जनता की विशाल बहुसंख्या और ज़ारशाही सरकार के बीच पूरा, निश्चयात्मक तथा खुला संबंध-विच्छेद। नया प्रश्न यह है कि सचमुच राष्ट्रव्यापी तथा सचमुच संविधान सभा (इस प्रकार की सभा से संबंधित सैद्धांतिक प्रश्न का फ़ैसला सामाजिक-जनवादियों ने बहुत पहले, अन्य सभी पार्टियों से पहले, अपनी पार्टी के कार्यक्रम में आधिकारिक ढंग से कर दिया था) बुलाने के व्यावहारिक उपाय क्या हैं? यदि जनता ने सरकार से नाता तोड़ लिया है और अवाम एक नयी व्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता को महसूस करते हैं, तो जिस पार्टी ने अपने सामने सरकार का तख़्ता उलट देने का लक्ष्य रखा हो, उसे इस बात पर अवश्य विचार करना चाहिए कि वह पुरानी सरकार को हटाकर उसके स्थान पर किस सरकार की स्थापना करेगी। अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के संबंध में एक **नया** प्रश्न पैदा होता है। इस प्रश्न का पूरा-पूरा उत्तर देने के लिए वर्ग-चेतन सर्वहारा की पार्टी को इन बातों को स्पष्ट कर देना चाहिए: (१) चालू क्रांति में और आम तौर से सर्वहारा वर्ग के पूरे संघर्ष में अस्थायी क्रांतिकारी सरकार का **क्या महत्व** है; (२) अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के प्रति उसका क्या **रवैया** हो; (३) इस सरकार में सामाजिक-जनवादी ठीक किन शर्तों पर **भाग ले सकते हैं**; (४) किन परिस्थितियों में इस सरकार पर **नीचे से** दबाव डाला जाना चाहिए, अर्थात उसमें सामाजिक-जनवादियों के न होने की सूरत में। केवल इन सभी सवालों के स्पष्ट हो जाने के बाद ही इस सिलसिले में पार्टी का राजनीतिक आचरण उसूली, स्पष्ट तथा दृढ़ हो सकता है।

अब देखें कि रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के प्रस्ताव में इन प्रश्नों को किस प्रकार हल किया गया है। वह पूरा प्रस्ताव इस प्रकार है:

"**अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के बारे में प्रस्ताव।**

"इस बात को ध्यान में रखते हुए:

"(१) कि सर्वहारा वर्ग के प्रत्यक्ष हितों के लिए भी और समाजवाद के अंतिम उद्देश्यों के निमित्त उसके संघर्ष के हितों के लिए भी यथासंभव पूर्णतम राजनीतिक स्वतंत्रता और फलस्वरूप एकतांत्रिक ढंग की सरकार के स्थान पर जनवादी जनतंत्र की स्थापना की ज़रूरत है;

"(२) कि रूस में जनवादी जनतंत्र की स्थापना विजयी जन-विद्रोह के फलस्वरूप ही संभव है, जिसका उपकरण अस्थायी क्रांतिकारी सरकार होगा, जो एकमात्र ऐसी संस्था है, जो चुनावपूर्व आंदोलन की पूरी स्वतंत्रता को सुनिश्चित बनाने और सार्विक, समान तथा प्रत्यक्ष मताधिकार तथा गुप्त मतदान के आधार पर ऐसी संविधान सभा बुलाने की क्षमता रखती है, जो सचमुच जनता की इच्छा को व्यक्त करेगी ;

"(३) कि वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत यह जनवादी क्रांति रूस में बुर्जुआ वर्ग के प्रभुत्व को कमज़ोर नहीं, बल्कि मज़बूत करेगी, जो एक निश्चित क्षण में अनिवार्य रूप से रूस के सर्वहारा वर्ग से क्रांतिकारी युग की उपलब्धियों का यथासंभव अधिकाधिक भाग छीनने की कोशिश करेगा और इसमें कोई कसर नहीं छोड़ेगा, –

"रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस फ़ैसला करती है कि :

"(क) मज़दूर वर्ग के बीच क्रांति के सर्वाधिक संभाव्य विकासक्रम की बाबत तथा उसके दौरान एक निश्चित समय पर अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के उद्भव की अनिवार्यता की बाबत एक ठोस विचार का प्रसार करना आवश्यक है, जिससे सर्वहारा वर्ग यह मांग करेगा कि वह हमारे कार्यक्रम में (न्यूनतम कार्यक्रम में)[44] सम्मिलित सभी तात्कालिक राजनीतिक तथा आर्थिक मांगों को पूरा करे ;

"(ख) शक्तियों के संतुलन और दूसरे ऐसे कारकों के अनुसार, जिन्हें पहले से ठीक-ठीक निर्धारित नहीं किया जा सकता, हमारी पार्टी के प्रतिनिधियों के लिए सभी क्रांति विरोधी कोशिशों के विरुद्ध निर्ममतापूर्वक संघर्ष चलाने और मज़दूर वर्ग के स्वतंत्र हितों की रक्षा करने के उद्देश्य से अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में भाग लेना उचित है ;

"(ग) पार्टी द्वारा अपने प्रतिनिधियों पर कठोर नियंत्रण रखना और पूर्ण समाजवादी क्रांति के लिए प्रयत्नशील एवं तदनुसार ही सभी बुर्जुआ पार्टियों के अनम्य शत्रु सामाजिक-जनवाद की स्वाधीनता की अडिग ढंग से रक्षा करना सरकार में उक्त प्रकार की शिरकत की लाज़िमी शर्त है ;

"(घ) अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में सामाजिक-जनवादियों का भाग लेना संभव हो या न हो, हमें सर्वहारा वर्ग के व्यापकतम हिस्सों के

बीच इस विचार का प्रचार करना चाहिए कि क्रांति से जो उपलब्धियां हुई हैं, उनकी रक्षा करने, उन्हें सुदृढ़ तथा विस्तृत करने के उद्देश्य से सामाजिक-जनवादी पार्टी के नेतृत्व में सशस्त्र सर्वहारा वर्ग द्वारा अस्थायी सरकार पर लगातार दबाव डालते रहना आवश्यक है।"

२. अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के बारे में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस का प्रस्ताव हमें क्या सिखाता है?

रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस का प्रस्ताव, जैसा कि उसके शीर्षक से स्पष्ट है, पूर्णतः और एकमात्र अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के प्रश्न से संबंधित है। इसका मतलब यह है कि अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में सामाजिक-जनवादियों की शिरकत पूरे प्रश्न के एक भाग के रूप में इसमें अंतर्निहित है। दूसरी ओर, बात केवल अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की है, किसी और चीज़ की नहीं; फलस्वरूप उसमें, उदाहरण के लिए, आम तौर पर "सत्ता पर अधिकार करने", आदि के प्रश्न बिलकुल शामिल नहीं हैं। क्या कांग्रेस ने इस प्रश्न को तथा ऐसे ही अन्य प्रश्नों को छोड़कर उचित किया? निःसंदेह उसने ठीक किया, क्योंकि रूस की राजनीतिक स्थिति इस प्रकार के प्रश्नों को तात्कालिक नहीं बनाती। इसके विपरीत इस समय सारी जनता जिस सवाल को तात्कालिक बना रही है, वह एकतांत्रिक शासन का तख़्ता उलटने और संविधान सभा बुलाने का सवाल है। पार्टी कांग्रेसों को ऐसे सवालों को उठाकर फ़ैसला करना चाहिए, जो वर्तमान परिस्थितियों तथा सामाजिक विकास की वस्तुपरक गति के कारण गंभीर राजनीतिक महत्व रखते हैं, न कि जिनका किसी लेखक ने प्रसंगानुसार कहीं उल्लेख कर दिया हो।

वर्तमान क्रांति में और सर्वहारा वर्ग के आम संघर्ष में अस्थायी क्रांतिकारी सरकार का क्या महत्व है? कांग्रेस का प्रस्ताव शुरू में ही सर्वहारा वर्ग के तात्कालिक हितों और "समाजवाद के अंतिम उद्देश्यों", दोनों के

दृष्टिकोण से "यथासंभव पूर्णतम राजनीतिक स्वतंत्रता" की आवश्यकता की ओर संकेत करके इस बात को समझाता है। और पूर्णतम राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए इस बात की आवश्यकता है कि ज़ारशाही एकतंत्र के स्थान पर जनवादी जनतंत्र की स्थापना की जाये, जैसा कि हमारी पार्टी के कार्यक्रम में स्वीकार किया जा चुका है। कांग्रेस के प्रस्ताव में जनवादी जनतंत्र के नारे पर जो ज़ोर दिया गया है, वह तर्क की दृष्टि से तथा सिद्धांत के मामले में भी आवश्यक है, क्योंकि जनवाद का अग्रगामी संघर्ष-कर्त्ता होने के नाते सर्वहारा वर्ग पूर्ण स्वतंत्रता ही प्राप्त करने की कोशिश कर रहा है; इसके अतिरिक्त इस बात पर इस समय ज़ोर देना इसलिए और भी मुनासिब है कि ठीक इसी समय हमारे देश में राजतंत्रवादी, अर्थात तथाकथित सांविधानिक-"जनवादी" या 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी पार्टी "जनवाद" का झंडा उठाकर चल रहे हैं। जनतंत्र की स्थापना के लिए यह नितांत आवश्यक है कि जनता के प्रतिनिधियों की एक सभा हो, जो साथ ही राष्ट्रव्यापी (सार्विक, समान तथा प्रत्यक्ष मताधिकार तथा गुप्त मतदान के आधार पर चुनी गयी) तथा संविधान सभा हो। इस बात को भी कांग्रेस के प्रस्ताव में आगे चलकर स्वीकार किया गया है। परंतु प्रस्ताव में केवल इतनी ही बात नहीं कही गयी है। ऐसी नयी व्यवस्था स्थापित करने के लिए, जो "सचमुच जनता की इच्छा को व्यक्त करे", प्रतिनिधियों की सभा को संविधान सभा कह देना ही काफ़ी नहीं है। इस सभा को "संविधान बनाने" की सत्ता तथा शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए कांग्रेस का प्रस्ताव अपने आपको "संविधान सभा" के औपचारिक नारे तक ही सीमित नहीं रखता, बल्कि उन भौतिक परिस्थितियों को भी उसमें शामिल करता है, जिनके होने पर ही वह सभा अपने कार्यभार को सचमुच पूरा कर सकती है। उन परिस्थितियों को विशिष्ट रूप से बताना नितांत आवश्यक है, जिनके होने पर वह सभा केवल कथनी में ही नहीं, बल्कि वास्तव में संविधान सभा बन सकती है, क्योंकि जैसा कि हम अनेक बार बता चुके हैं, उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग, जिसका प्रतिनिधित्व सांविधानिक-राजतंत्रवादी पार्टी करती है, राष्ट्रव्यापी संविधान सभा के नारे को जान-बूझकर तोड़-मरोड़कर पेश कर रहा है और उसे केवल एक खोखला फ़िक़रा बनाये दे रहा है।

कांग्रेस के प्रस्ताव में कहा गया है कि **केवल** अस्थायी क्रांतिकारी सरकार ही, जो विजयी जन-विद्रोह का उपकरण हो, चुनावपूर्व आंदोलन की पूर्ण स्वतंत्रता को सुनिश्चित कर सकती है और एक ऐसी सभा बुला सकती है, जो सचमुच जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति करती हो। क्या यह प्रस्थापना सही है? जो भी इसका खंडन करने की सोचेगा, उसे यह दावा करना पड़ेगा कि ज़ारशाही सरकार के लिए यह संभव है कि वह प्रतिक्रियावादी शक्तियों का पक्ष नहीं ले सकती, कि वह चुनावों के दौरान निष्पक्ष रह सकती है, कि वह इस बात का प्रबंध कर सकती है कि जनता की इच्छा की सचमुच अभिव्यक्ति हो। इस प्रकार के दावे इतने बेसिर-पैर के हैं कि कोई भी खुले तौर से उनका समर्थन करने का साहस नहीं करेगा, परंतु ठीक हमारे 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी उन्हें चोरी से उदारतावादी झंडे के नीचे ढककर ला रहे हैं। किसी को संविधान सभा बुलानी चाहिए; किसी को चुनाव में स्वतंत्रता और न्यायसंगति की गारंटी देनी चाहिए; किसी को ऐसी सभा को शक्ति तथा सत्ता पूर्णतः देनी चाहिए: केवल एक क्रांतिकारी सरकार ही, जो विद्रोह का उपकरण होगी, पूरी ईमानदारी के साथ यह चाह सकती है और इसे पूरा करने के लिए सभी आवश्यक क़दम उठा सकती है। ज़ारशाही सरकार अनिवार्य रूप से इसका विरोध करेगी। उदारतावादी सरकार, जिसने ज़ार के साथ समझौता कर लिया है और जो पूरी तरह जनता के विद्रोह पर भरोसा नहीं करती, ईमानदारी के साथ इस बात की इच्छा नहीं रख सकती और पूरी ईमानदारी के साथ इसकी इच्छा रखने पर भी वह इसे पूरा नहीं कर सकती। फलतः कांग्रेस के प्रस्ताव में एकमात्र सही और पूर्णतः सुसंगत जनवादी नारा दिया गया है।

परंतु यदि जनवादी क्रांति के वर्ग चरित्र को ध्यान में नहीं रखा जाये, तो अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के महत्व का मूल्यांकन अपूर्ण तथा ग़लत होगा। इसलिए प्रस्ताव में यह बात भी शामिल कर दी गयी है कि क्रांति बुर्जुआ वर्ग के प्रभुत्व को मज़बूत करेगी। वर्तमान, अर्थात पूंजीवादी, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था में ऐसा होना अनिवार्य है। और जिस सर्वहारा वर्ग ने कुछ हद तक राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, उसके ऊपर बुर्जुआ वर्ग का प्रभुत्व मज़बूत होने का नतीजा अनिवार्य रूप से यह

होगा कि उनके बीच सत्ता के लिए भीषण संघर्ष होगा, कि बुर्जुआ वर्ग अपना पूरा ज़ोर लगाकर "सर्वहारा वर्ग से क्रांतिकारी युग की उपलब्धियां छीनने" की कोशिश करेगा। इसलिए जनवाद के लिए सबसे पहले और सबसे आगे-आगे लड़नेवाले सर्वहारा वर्ग को बुर्जुआ जनवाद में अंतर्निहित नये वैरभावों और नये संघर्ष को क्षण भर के लिए भी नहीं भूलना चाहिए।

इस प्रकार, प्रस्ताव के जिस भाग पर हमने अभी विचार किया है, उसमें अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के महत्व का पूरी तरह मूल्यांकन किया गया है: स्वतंत्रता तथा जनतंत्र के लिए संघर्ष के प्रति उसके रवैये के प्रसंग में, संविधान सभा और नये वर्ग संघर्ष के लिए ज़मीन तैयार करनेवाली जनवादी क्रांति के प्रति उसके रवैये के प्रसंग में।

इसके बाद सवाल उठता है कि अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के प्रति सर्वहारा वर्ग का रवैया आम तौर पर क्या होना चाहिए? कांग्रेस के प्रस्ताव में इसका उत्तर सबसे पहले पार्टी को सीधे इस सलाह द्वारा दिया गया है कि वह मज़दूर वर्ग के बीच इस दृढ़ धारणा को फैलाये कि अस्थायी क्रांतिकारी सरकार आवश्यक है। मज़दूर वर्ग को यह आवश्यकता समझनी होगी। जबकि "जनवादी" बुर्जुआ वर्ग ज़ारशाही सरकार को उलटने के प्रश्न को पार्श्वभूमि में रखता है, हमें उसे सबसे आगे रखना होगा और अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की आवश्यकता पर ज़ोर देना होगा। इतना ही नहीं, हमें इस सरकार के लिए कार्रवाइयों का एक ऐसा कार्यक्रम तैयार करना होगा, जो वर्तमान ऐतिहासिक घड़ी की वस्तुपरक परिस्थितियों के और सर्वहारा जनवाद के कार्यभारों के अनुकूल हो। यह कार्यक्रम हमारी पार्टी का **सारा** न्यूनतम कार्यक्रम है, वह उन तात्कालिक राजनीतिक तथा आर्थिक सुधारों का कार्यक्रम है, जिन्हें, एक ओर तो, वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक संबंधों के आधार पर पूरी तरह लागू किया जा सकता है और जो, दूसरी ओर, आगे क़दम उठाने के लिए, समाजवाद की स्थापना के लिए आवश्यक हैं।

इस प्रकार, प्रस्ताव में अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के चरित्र तथा उद्देश्य को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया गया है। अपनी उत्पत्ति तथा अपने बुनियादी चरित्र के मामले में ऐसी सरकार को जन-विद्रोह का उपकरण होना चाहिए। अपने औपचारिक उद्देश्य के मामले में उसे राष्ट्रव्यापी संवि-

धान सभा बुलाने का साधन होना चाहिए। उसकी सरगर्मियों का ग्रंतर्य सर्वहारा जनवाद के न्यूनतम कार्यक्रम की तामील होना चाहिए, जो एक-तांत्रिक शासन के ख़िलाफ़ विद्रोह के लिए उठ खड़ी जनता के हितों की रक्षा करने की क्षमता रखनेवाला एकमात्र कार्यक्रम है।

यह ग्रापत्ति की जा सकती है कि ग्रस्थायी सरकार केवल ग्रस्थायी होने के कारण किसी ऐसे रचनात्मक कार्यक्रम की तामील नहीं कर सकती, जिसे पूरी जनता का ग्रनुमोदन न मिल चुका हो। इस प्रकार की ग्रापत्ति प्रतिक्रियावादियों तथा "एकतंत्रवादियों" का कुतर्क ही होगी। किसी भी रचनात्मक कार्यक्रम की तामील से बाज़ रहने का मतलब है सड़े-गले एकतंत्र की सामंती व्यवस्था के ग्रस्तित्व को बर्दाश्त करना। इस प्रकार की व्यवस्था को केवल क्रांति के साथ ग़द्दारी करनेवालों की सरकार ही बर्दाश्त कर सकती है, न कि वह सरकार, जो जन-विद्रोह का उपकरण हो। किसी के लिए भी यह सुझाव रखना हास्यास्पद होगा कि जब तक संविधान सभा सभाएं करने की स्वतंत्रता की पुष्टि न कर दे, तब तक हम इस स्वतंत्रता का उपभोग करने से बाज़ रहें, क्योंकि हो सकता है कि शायद संविधान सभा सभाएं करने की स्वतंत्रता की पुष्टि न करे! ग्रस्थायी क्रांतिकारी सरकार द्वारा न्यूनतम कार्यक्रम की तत्काल तामील पर ग्रापत्ति करना भी उतना ही हास्यास्पद है।

ग्राख़िरी बात, न्यूनतम कार्यक्रम की तामील का कार्यभार ग्रस्थायी क्रांतिकारी सरकार के ज़िम्मे करके प्रस्ताव ग्रधिकतम कार्यक्रम की तत्काल तामील ग्रौर समाजवादी क्रांति के लिए सत्ता पर क़ब्ज़ा करने के बारे में बेहूदा ग्रर्द्ध-ग्रराजकतावादी विचारों को बिलकुल ख़त्म कर देता है। रूस के ग्रार्थिक विकास के स्तर (वस्तुपरक परिस्थिति) ग्रौर व्यापक सर्वहारा समूहों की वर्ग चेतना तथा संगठन के स्तर के कारण (ग्रात्मपरक परि-स्थिति, जो वस्तुपरक परिस्थिति से ग्रभिन्न रूप से बंधी हुई है) मज़दूर वर्ग की पूर्ण मुक्ति फ़ौरन ग्रसंभव है। केवल बिलकुल ग्रज्ञानी लोग ही प्रस्तुत जनवादी क्रांति के बुर्जुग्रा चरित्र की उपेक्षा कर सकते हैं; केवल बिलकुल भोले ग्राशावादी ही इस बात को भुला सकते हैं कि मज़दूर समूहों को समाजवाद के उद्देश्यों तथा उसे प्राप्त करने के उपायों के बारे में ग्रभी तक कितनी कम जानकारी है। हम सब का यह दृढ़ विश्वास है कि मज़दूरों

की मुक्ति स्वयं मज़दूरों के ही हाथों हो सकती है; जब तक अवाम वर्ग-चेतन तथा संगठित न हो जायें, जब तक वे पूरे बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ खुले वर्ग संघर्ष की शिक्षा प्राप्त करके उसमें अभ्यस्त न हो जायें, तब तक समाजवादी क्रांति का सवाल ही पैदा नहीं हो सकता। इस प्रकार की अराजकतावादी आपत्तियों के उत्तर में कि हम समाजवादी क्रांति को टाल रहे हैं, हम कहते हैं: हम उसे टाल नहीं रहे हैं, बल्कि हम उसकी दिशा में एकमात्र संभव तरीक़े से, एकमात्र उचित मार्ग पर, अर्थात जनवादी जनतंत्र के मार्ग पर, पहला क़दम बढ़ा रहे हैं। जो भी राजनीतिक जनवाद के अतिरिक्त किसी दूसरे मार्ग से समाजवाद तक पहुंचना चाहता है, वह अनिवार्य रूप से ऐसे नतीजों पर पहुंचेगा, जो आर्थिक तथा राजनीतिक, दोनों ही अर्थ में बेतुके तथा प्रतिक्रियावादी होंगे। यदि ये अथवा वे मज़दूर हमसे मुनासिब घड़ी में यह सवाल करेंगे कि हम अधिकतम कार्यक्रम की तामील क्यों न कर डालें, तो हम उन्हें उत्तर में यह बतायेंगे कि जनवादी विचार रखनेवाले **अवाम अभी** तक समाजवाद से कितने दूर हैं, वर्ग वैरभाव अभी तक कितने अविकसित हैं, सर्वहारा वर्ग के लोग अभी तक कितने असंगठित हैं। सारे रूस में लाखों मज़दूरों को ज़रा संगठित तो कीजिये, अपने कार्यक्रम के प्रति लाखों-करोड़ों लोगों की सहानुभूति ज़रा प्राप्त तो कीजिये! अपने आपको गुंजायमान, पर खोखले अराजकतावादी फ़िक़रों तक ही सीमित रखे बिना इस काम को करने की ज़रा कोशिश तो कीजिये – फिर आप फ़ौरन देख लेंगे कि इस संगठन की तामील, इस समाजवादी शिक्षा का प्रसार जनवादी सुधारों की यथासंभव पूर्णतम तामील पर निर्भर है।

आइये, आगे बढ़ें। अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के महत्व और उसके प्रति सर्वहारा वर्ग के रवैये को स्पष्ट रूप से समझ लेने के बाद यह सवाल पैदा होता है: क्या हमारे लिए उसमें भाग लेना (ऊपर से कार्रवाई) उचित है और यदि है, तो किन शर्तों पर? नीचे से हमारी कार्रवाई क्या होनी चाहिए? प्रस्ताव में इन दोनों प्रश्नों का सटीक उत्तर दिया गया है। उसमें ज़ोर देकर घोषणा की गयी है कि उसूली तौर से सामाजिक-जनवादियों के लिए अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में भाग लेना (जनवादी क्रांति के ज़माने में, जनतंत्र के लिए संघर्ष के ज़माने में) **उचित** है। इस घोषणा

द्वारा हम हमेशा के लिए अपने आपको अराजकतावादियों से भी अलग कर लेते हैं, जो उसूली तौर से इस प्रश्न का उत्तर "नहीं" में देते हैं, और सामाजिक-जनवाद के उन पुछल्लावादियों (मार्तीनोव तथा नव 'ईस्क्रा'-पंथियों जैसे लोगों) से भी, जिन्होंने हमें ऐसी परिस्थिति की संभावना से डराने की कोशिश की है, जिसमें हमारे लिए ऐसी सरकार में भाग लेना आवश्यक हो जाये। इस घोषणा द्वारा रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस ने हमेशा के लिए नव 'ईस्क्रा' में व्यक्त किये गये इस विचार को ठुकरा दिया कि अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में सामाजिक-जनवादियों का भाग लेना एक प्रकार का मिलेरांवाद है, कि वह बुर्जुआ व्यवस्था को उचित ठहराने के रूप में उसूली तौर से अनुचित है, आदि।

परंतु उसूली तौर से उचित होने से, ज़ाहिर है, व्यावहारिक सार्थकता की समस्या हल नहीं होती। संघर्ष का, "ऊपर से" संघर्ष का यह नया रूप, जिसे पार्टी कांग्रेस ने स्वीकार किया, किन परिस्थितियों में सार्थक होगा? यह तो मानी हुई बात है कि इस समय शक्तियों के संतुलन, आदि जैसी ठोस परिस्थितियों की बात करना असंभव है और स्वाभाविक रूप से प्रस्ताव में इन परिस्थितियों की व्याख्या पहले से नहीं की गयी है। कोई भी समझदार आदमी इस समय हमारी दिलचस्पी के विषय पर कोई भी भविष्यवाणी करने का साहस नहीं करेगा। हम जो कर सकते हैं और हमें जो करना चाहिए, वह यह है कि हम अपनी शिरकत का चरित्र और लक्ष्य निर्धारित कर लें। प्रस्ताव में यही बात की गयी है, उसमें हमारी शिरकत के दो लक्ष्य बताये गये हैं: (१) क्रांति विरोधी कोशिशों के ख़िलाफ़ निर्मम संघर्ष और (२) मज़दूर वर्ग के स्वतंत्र हितों की रक्षा। ऐसे समय पर, जबकि उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग क्रांतिकारी जनता को डराने और उसमें एकतंत्र के आगे झुकने की भावना जागृत करने की कोशिश में बड़े जोश के साथ प्रतिक्रियावाद की मनोवृत्ति की बातें करने लगा है ('ओस्वोबोज्देनिये' के ७१ वें अंक में श्री स्त्रूवे का अत्यंत शिक्षाप्रद 'खुला पत्र' देखिये), ऐसे समय पर सर्वहारा वर्ग की पार्टी के लिए प्रति-क्रांति के विरुद्ध असली लड़ाई की आवश्यकता की याद दिलाना विशेष रूप से उपयुक्त है। राजनीतिक स्वतंत्रता तथा वर्ग संघर्ष की बड़ी समस्याएं अंतिम विश्लेषण में शक्ति के बल पर ही तय होती हैं और यह हमारा

काम है कि हम ऐसी शक्ति को तैयार तथा संगठित करें और उसे सक्रिय रूप से केवल रक्षा के लिए ही नहीं, बल्कि आक्रमण के लिए भी इस्तेमाल करें। यूरोप में राजनीतिक प्रतिक्रियावाद के लंबे दौर ने, जो पेरिस कम्यून के दिनों से लगभग निरंतर क़ायम रहा है, हमें केवल "नीचे से" कार्रवाई के विचार का बेहद आदी बना दिया है, केवल प्रतिरक्षात्मक संघर्ष देखने का बेहद आदी बना दिया है। निःसंदेह, अब हमने एक नये युग में प्रवेश किया है; राजनीतिक उथल-पुथल और क्रांतियों का युग आरंभ हो गया है। इस समय रूस जिस दौर से होकर गुज़र रहा है, उसमें हमारे लिए अपने आपको पुराने, पिटे-पिटाये नमूनों तक ही सीमित रखना उचित नहीं है। हमें ऊपर से कार्रवाई के विचार का प्रचार करना चाहिए, हमें अत्यंत ज़ोरदार आक्रामक कार्रवाइयों की तैयारी करनी चाहिए और ऐसी कार्रवाइयों के लिए आवश्यक शर्तों तथा उनके रूपों का अध्ययन करना चाहिए। कांग्रेस के प्रस्ताव में इस प्रकार की दो शर्तों को सबसे प्रमुख स्थान दिया गया है: एक का संबंध अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में सामाजिक-जनवादियों की शिरकत के औपचारिक पहलू से है (अपने प्रतिनिधियों पर पार्टी का कठोर नियंत्रण) और दूसरी का संबंध इस शिरकत के चरित्र से है (पूर्ण समाजवादी क्रांति के लक्ष्य को एक क्षण के लिए भी आंख से ओझल न होने देना)।

इस प्रकार, "ऊपर से" कार्रवाई के संबंध में – जो संघर्ष का नया और प्रायः बिलकुल अभूतपूर्व तरीक़ा है – पार्टी की नीति को हर पहलू से समझा चुकने के बाद प्रस्ताव में ऐसी स्थिति की भी पूर्वकल्पना की गयी है, जिसमें हमें ऊपर से कार्रवाई करने में कामयाबी न हो। हमें अस्थायी क्रांतिकारी सरकार पर नीचे से दबाव तो हर हालत में डालना चाहिए। नीचे से यह दबाव डाल सकने के लिए सर्वहारा वर्ग को सशस्त्र होना चाहिए – क्योंकि क्रांतिकारी घड़ी में घटनाएं बड़ी तेज़ी से विकसित होकर खुले गृहयुद्ध की मंज़िल में पहुंच जाती हैं – और उसका नेतृत्व सामाजिक-जनवादी पार्टी के हाथ में होना चाहिए। उसके सशस्त्र दबाव का लक्ष्य "क्रांति से जो उपलब्धियां हुई हैं, उनकी रक्षा करना, उन्हें सुदृढ़ तथा विस्तृत करना" है, अर्थात उन उपलब्धियों की रक्षा, जिन्हें सर्वहारा

वर्ग के हितों की दृष्टि से हमारे पूरे न्यूनतम कार्यक्रम की तामील में निहित होना चाहिए।

इतना कहकर हम अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के बारे में तीसरी कांग्रेस के प्रस्ताव का अपना संक्षिप्त विश्लेषण समाप्त करते हैं। जैसा कि पाठक देख सकते हैं, प्रस्ताव में समझाया गया है कि इस नयी समस्या का महत्व क्या है, उसके प्रति सर्वहारा वर्ग की पार्टी का रवैया क्या है और अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के भीतर तथा उसके बाहर पार्टी को किस नीति का अनुसरण करना होगा।

आइये, अब इस विषय पर "सम्मेलन" के प्रस्ताव पर विचार करें।

३. "ज़ारशाही पर क्रांति की निर्णायक विजय" क्या है?

"सम्मेलन" का प्रस्ताव इस प्रश्न की बाबत है: "**सत्ता पर अधिकार और अस्थायी सरकार में शिरकत।**"* जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, प्रश्न पेश करने के इस ढंग से ही उलझाव का पता चलता है। एक ओर, प्रश्न को संकुचित ढंग से पेश किया गया है: उसमें केवल अस्थायी सरकार में हमारी शिरकत पर विचार किया गया है, न कि आम तौर पर अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के संबंध में पार्टी के कार्यभारों पर। दूसरी ओर, दो बिलकुल अलग सवालों को एक में उलझा दिया गया है, अर्थात **जनवादी** क्रांति की एक मंज़िल में हमारी शिरकत के प्रश्न को और **समाजवादी** क्रांति के प्रश्न को। सचमुच सामाजिक-जनवादियों द्वारा "सत्ता पर अधिकार" का अर्थ समाजवादी क्रांति है और यदि हम इन शब्दों को उनके प्रत्यक्ष और आम अर्थ में ग्रहण करें, तो इसका कोई दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता। परंतु यदि हम इन शब्दों का यह अर्थ लगायें कि सत्ता पर

---

*इस पुस्तिका के पृष्ठ ४००, ४०३–४०४, ४०७, ४३१ तथा ४३३–४३४ पर दिये गये उद्धरणों को जोड़कर पाठक इस पूरे प्रस्ताव का विवरण प्राप्त कर सकते हैं। (१९०७ के संस्करण में लेखक की टिप्पणी। देखें इस खंड के पृ० ८१, ८८–८९, ९५, १३८, १४२ तथा १४३।–सं०)

अधिकार समाजवादी क्रांति के लिए नहीं, बल्कि जनवादी क्रांति के लिए होगा, तो फिर केवल अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में शिरकत के बारे में ही नहीं, बल्कि **आम तौर पर** "सत्ता पर अधिकार" की बात में क्या तुक है? ज़ाहिर है कि ख़ुद हमारे "सम्मेलनवालों" के दिमाग़ में यह बात साफ़ नहीं थी कि उन्हें किस चीज़ के बारे में बात करनी चाहिए: जनवादी क्रांति के बारे में या समाजवादी क्रांति के बारे में। जिन लोगों ने इस प्रश्न से संबंधित साहित्य पर नज़र रखी हैं, वे जानते हैं कि कामरेड मार्तीनोव ने ही अपनी कुख्यात रचना 'दो अधिनायकत्व' में यह उलझाव आरंभ किया था: नव 'ईस्क्रा'-पंथी इस बात को अनिच्छापूर्वक याद करते हैं कि (९ जनवरी से पहले भी[45]) उस आदर्श पुछल्लावादी रचना में इस प्रश्न को किस ढंग से पेश किया गया था। फिर भी इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता कि सम्मेलन पर इसका वैचारिक प्रभाव पड़ा।

परंतु प्रस्ताव के शीर्षक को छोड़िये। उसके अंतर्य से और भी बेमिसाल गहरी तथा गंभीर ग़लतियों का पता चलता है। प्रस्ताव का पहला भाग इस प्रकार है:

"ज़ारशाही पर क्रांति की निर्णायक विजय या तो इस शक्ल में होगी कि एक एक अस्थायी सरकार की स्थापना हो जाये, जो विजयी जन-विद्रोह में से उत्पन्न होगी, या क्रांतिकारी पहलक़दमी किसी ऐसी प्रतिनिधि संस्था के हाथ में आ जाये, जो जनता के सीधे क्रांतिकारी दबाव में सार्वजनिक संविधान सभा स्थापित करने का फ़ैसला करे।"

इस प्रकार, हमें बताया जाता है कि ज़ारशाही पर क्रांति की निर्णायक विजय या तो इस शक्ल में होगी कि विजयी विद्रोह हो जाये, या... एक प्रतिनिधि संस्था संविधान सभा स्थापित करने का फ़ैसला करे! इसका क्या मतलब है? इसे किस तरह समझें? निर्णायक विजय इस शक्ल में हो सकती है कि संविधान सभा की स्थापना का "फ़ैसला" हो?? और इस प्रकार की "विजय" को ऐसी अस्थायी सरकार की स्थापना की श्रेणी में रखा गया है, जो "विजयी जन-विद्रोह में से उत्पन्न होगी"!! सम्मेलन यह न देख सका कि **विजयी** जन-विद्रोह और अस्थायी सरकार की

स्थापना वास्तव में क्रांति की विजय की द्योतक होंगे, जबकि संविधान सभा की स्थापना का "फ़ैसला" केवल शब्दों में क्रांति की विजय का द्योतक होगा।

नव 'ईस्क्रा'-पंथी मेंशेविकों के सम्मेलन ने वही ग़लती की, जो उदारतावादी, 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी लगातार कर रहे हैं। 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी "संविधान" सभा की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं और इस बात की ओर से झेंपकर आंखें मूंद लेते हैं कि सत्ता और अधिकार अभी तक ज़ार के ही हाथों में हैं, वे इस बात को भूल जाते हैं कि "संविधान सभा स्थापित करने" के लिए इसकी स्थापना करने की शक्ति होनी चाहिए। सम्मेलन इस बात को भी भूल गया कि प्रतिनिधियों द्वारा – वे चाहे कोई भी हों – किये गये "फ़ैसले" और उस फ़ैसले की तामील के बीच बहुत फ़ासला होता है। सम्मेलन इस बात को भी भूल गया कि जब तक सत्ता ज़ार के हाथों में बनी रहेगी, तब तक किन्हीं भी प्रतिनिधियों के फ़ैसले उसी तरह खोखली तथा तुच्छ बकवास रहेंगे, जैसे १८४८ की जर्मन क्रांति के इतिहास में प्रसिद्ध फ़्रैंकफ़ुर्ट संसद[46] के "फ़ैसले" थे। क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि मार्क्स ने अपने 'नये राइन समाचारपत्र'[47] में निमर्म व्यंग के साथ फ़्रैंकफ़ुर्ट के उदारतावादी 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों को ठीक इसीलिए लताड़ा था कि वे बातें बड़ी अच्छी-अच्छी करते थे, दुनिया भर के जनवादी "फ़ैसले" करते थे, तरह-तरह की स्वतंत्रताओं को "स्थापित करते" थे, जबकि उन्होंने वास्तव में सत्ता राजा के हाथों में छोड़ रखी थी और राजा के पास जो सैनिक शक्ति थी, उसके ख़िलाफ़ सशस्त्र संघर्ष संगठित करने में असफल रहे। और जबकि फ़्रैंकफ़ुर्ट के 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी महज़ बड़ी-बड़ी बातें कर रहे थे, राजा ने उचित अवसर की प्रतीक्षा की, अपनी सैनिक शक्ति को सुदृढ़ किया और प्रतिक्रांति ने असली ताक़त का सहारा लेकर जनवादियों को उनके तमाम बढ़िया-बढ़िया "फ़ैसलों" के साथ बिलकुल परास्त कर दिया।

सम्मेलन ने ठीक उसी चीज़ को निर्णायक विजय की श्रेणी में रख दिया है, जिसमें विजय की निर्णायक शर्त का अभाव होता है। उन सामाजिक-जनवादियों से, जो हमारी पार्टी के जनतांत्रिक कार्यक्रम को स्वीकार करते हैं, इस प्रकार की ग़लती कैसे संभव हुई? इस विचित्र घटना को

समझने के लिए हमें पार्टी से अलग हुए हिस्से के बारे में तीसरी कांग्रेस के प्रस्ताव* की ओर ध्यान देना चाहिए। इस प्रस्ताव में इस बात का उल्लेख किया गया है कि हमारी पार्टी में "अर्थवाद से मिलती-

*हम यह पूरा प्रस्ताव उद्धृत करते हैं: "कांग्रेस इस बात की तसदीक़ करती है कि अर्थवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई के ज़माने से रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी में कुछ ऐसी धाराएं बाक़ी रह गयी हैं, जो अलग-अलग हद तक और अलग-अलग मामलों में अर्थवाद से मिलती-जुलती हैं और जिन सबमें सर्वहारा संघर्ष में वर्ग चेतना के तत्वों के महत्व को गिराने और उन्हें स्वतःस्फूर्ति के तत्वों के अधीन कर देने की प्रवृत्ति समान रूप से पायी जाती है। संगठन की समस्या पर इन धाराओं के प्रतिनिधि सिद्धांत में संगठन-प्रक्रियावाला उसूल पेश करते हैं, जो पार्टी के योजनाबद्ध निर्धारित काम से मेल नहीं खाता और व्यवहार में वे ढेरों मामलों में पार्टी अनुशासन से विचलन की पद्धति चलाते हैं और कई दूसरे मामलों में पार्टी के सबसे कम चेतन हिस्सों में रूस की वस्तुपरक परिस्थितियों को ध्यान में रखे बिना ही निर्वाचन के उसूल को व्यापक रूप से लागू करने के विचार का प्रचार करते हैं और इस प्रकार वर्तमान समय में एकमात्र संभव पार्टी संबंधों का आधार नष्ट करने की कोशिश करते हैं। कार्यनीतिक प्रश्नों में इन धाराओं के प्रतिनिधि अपनी अभिव्यक्ति इस में करते हैं कि वे पार्टी काम के क्षेत्र को संकुचित कर देने की कोशिश करते हैं, वे इस बात का विरोध करते हैं कि पार्टी उदारतावादी-बुर्जुआ पार्टियों के संबंध में पूर्णतः स्वतंत्र कार्यनीति अपनाये, वे इस बात से इनकार करते हैं कि हमारी पार्टी के लिए जनता के विद्रोह के संगठनकर्त्ता की भूमिका ग्रहण करना संभव तथा वांछनीय है और इस बात का विरोध करते हैं कि पार्टी किन्हीं परिस्थितियों में भी अस्थायी जनवादी-क्रांतिकारी सरकार में भाग ले।

"कांग्रेस पार्टी के सभी सदस्यों को आदेश देती है कि वे हर जगह क्रांतिकारी सामाजिक-जनवाद के उसूलों से इन आंशिक विचलनों के ख़िलाफ़ डटकर वैचारिक संघर्ष करें, परंतु उसके साथ ही उसका यह मत है कि जो लोग किसी भी हद तक इस प्रकार के विचार रखते हैं, वे इस लाज़िमी शर्त पर पार्टी के किसी संगठन में शामिल हो सकते हैं कि वे पार्टी कांग्रेसों तथा पार्टी नियमावली को मानें और पूरी तरह पार्टी अनुशासन के अधीन रहें।" (१९०७ के संस्करण में लेखक की टिप्पणी। –सं०)

जुलती" कई धाराएं बाक़ी रह गयी हैं। हमारे सम्मेलनवाले (यह बात अकारण नहीं है कि उनका वैचारिक मार्गदर्शन मार्तीनोव करते हैं) क्रांति की बात बिलकुल उस ढंग से करते हैं, जैसे अर्थवादी राजनीतिक संघर्ष की या आठ घंटे के कार्य-दिवस की बातें करते थे। अर्थवादी फ़ौरन "मंज़िलों के सिद्धांत" को चालू कर देते थे: १) अधिकारों के लिए संघर्ष; २) राजनीतिक आंदोलन; ३) राजनीतिक संघर्ष; या १) दस घंटे का कार्य-दिवस; २) नौ घंटे का कार्य-दिवस; ३) आठ घंटे का कार्य-दिवस। इस "कार्यनीति-प्रक्रिया" के परिणामों से सभी लोग काफ़ी अच्छी तरह परिचित हैं। अब हमें राय दी जा रही है कि हम क्रांति को भी पहले से निम्नलिखित मंज़िलों में अच्छी तरह बांट दें: १) ज़ार प्रतिनिधि संस्था का आयोजन करता है; २) यह प्रतिनिधि संस्था "जनता" के दबाव में आकर संविधान सभा की स्थापना का "फ़ैसला" करती है; ३) ... मेंशेविक अभी तक आपस में तीसरी मंज़िल के बारे में सहमत नहीं हैं; वे इस बात को भूल गये हैं कि जनता के क्रांतिकारी दबाव का मुक़ाबला ज़ारशाही के क्रांति विरोधी दबाव से किया जायेगा और इसलिए "फ़ैसले" की या तो तामील नहीं होगी या आख़िरकार सवाल जन-विद्रोह को विजय या पराजय द्वारा तय होगा। सम्मेलन का प्रस्ताव अर्थवादियों की निम्नलिखित तर्क-शैली की हूबहू नक़ल है: मज़दूरों की निर्णायक विजय या तो इस शक्ल में होगी कि क्रांतिकारी ढंग से आठ घंटे का कार्य-दिवस हासिल कर लिया जाये या दस घंटे का कार्य-दिवस भेंट किया जाये और उसे नौ घंटे के कार्य-दिवस में परिवर्तित कर देने का "फ़ैसला" कर लिया जाये... हूबहू वही बात है।

शायद यह आपत्ति की जा सकती है कि प्रस्ताव तैयार करनेवालों को यह अभीष्ट नहीं था कि वे विद्रोह की विजय को ज़ार द्वारा बुलायी गयी प्रतिनिधि संस्था के "फ़ैसले" **श्रेणी में रखें**, कि वे केवल दोनों ही सूरतों के लिए पार्टी कार्यनीति को निर्धारित कर देना चाहते थे। इस पर हमारा उत्तर यह होगा: १) प्रस्ताव की इबारत में प्रतिनिधि संस्था के **फ़ैसले** को साफ़-साफ़ तथा असंदिग्ध रूप से "ज़ारशाही पर क्रांति की निर्णायक विजय" कहा गया। शायद यह शब्दों को ध्यानपूर्वक न चुनने का परिणाम है, शायद कार्यविवरणी देखने के बाद उसे सही किया जा सकता है, परंतु

जब तक उसे सही नहीं किया जाता, तब तक प्रस्ताव के वर्तमान शब्दों का केवल एक ही अर्थ हो सकता है और वह अर्थ **'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों की** तर्क-शैली से पूरी तरह मेल खाता है। २) 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों की तर्क-शैली, जिसमें इस प्रस्ताव को तैयार करनेवाले भटककर पहुंच गये हैं, नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की अन्य साहित्यिक रचनाओं में कहीं ज़्यादा उभरकर सामने आती है। उदाहरण के लिए, तिफ़लिस समिति के मुखपत्र 'सोत्सिआल-देमोक्रात'[48] ने (जार्जियाई भाषा में प्रकाशित; 'ईस्क्रा' के १०० वें अंक में प्रशंसित) 'ज़ेम्स्की सोबोर* तथा हमारी कार्यनीति' शीर्षक लेख में यहां तक कहा है कि वह "कार्यनीति", "जिसने ज़ेम्स्की सोबोर को" (हम यह भी कह दें कि जिसके आयोजन के बारे में अभी तक निश्चित रूप से कुछ भी मालूम नहीं है!) "हमारी सरगर्मियों का केंद्र चुना है", सशस्त्र विद्रोह तथा अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की स्थापना की "कार्यनीति" की अपेक्षा "**हमारे लिए अधिक हितकर है**"। हम आगे चलकर इस लेख का फिर उल्लेख करेंगे। ३) इस बात पर प्राथमिक बहस करने पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती कि क्रांति की विजय और पराजय, विद्रोह की सफलता और असफलता, जब वह विकसित होकर एक जबर्दस्त शक्ति न बन पाये, दोनों ही सूरतों में पार्टी को क्या कार्यनीति अपनानी चाहिए। हो सकता है कि ज़ारशाही सरकार उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग से समझौता कर लेने के लिए एक प्रतिनिधि सभा का आयोजन करने में सफल हो जाये – इस बात को पूर्वकल्पना करते हुए तीसरी कांग्रेस के प्रस्ताव में "मक्कारी भरी नीति", "छद्म जनवाद", "तथाकथित ज़ेम्स्की सोबोर जैसे जन-प्रतिनिधित्व के स्वांग" की बाबत साफ़-साफ़ शब्दों में कहा गया है**। परंतु असलियत तो यह है कि अस्थायी क्रांतिकारी सरकार से संबंधित प्रस्ताव में यह बात नहीं कही गयी है,

---

*ज़ेम्स्की सोबोर (रूसी शब्द "ज़ेम्ल्या" – देश अथवा राज्य – और "सोबोर" – सभा – से) – यहां आशय जन-प्रतिनिधियों की अखिल रूसी सभा से है। **– सं०**

**क्रांति के ठीक पहले सरकारी कार्यनीति के प्रति रवैये के बारे में पूरा प्रस्ताव इस प्रकार है:

क्योंकि इसका अस्थायी क्रांतिकारी सरकार से कोई संबंध नहीं है। यह परिस्थिति विद्रोह की और अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की स्थापना की

"इस बात को ध्यान में रखते हुए कि वर्तमान क्रांतिकारी दौर में सरकार आत्म-परिरक्षण के प्रयोजन से मुख्यतः सर्वहारा के वर्ग-चेतन तत्वों के ख़िलाफ़ दमन की आम कार्रवाइयों को और तेज़ कर देने के साथ ही (१) रिआयतें देकर तथा सुधार के वायदे करके मज़दूर वर्ग को राजनीतिक रूप से भ्रष्ट करने की और इस प्रकार उसे क्रांतिकारी संघर्ष के पथ से हटा देने की कोशिश करती है; (२) उसी उद्देश्य से रिआयतों की अपनी मक्कारीभरी नीति को मज़दूरों को आयोगों तथा सम्मेलनों के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने के निमंत्रण से लेकर तथाकथित ज़ेम्स्की सोबोर जैसे जन-प्रतिनिधित्व के स्वांग तक के छद्म जनवादी रूपों का जामा पहनाती है; (३) तथाकथित यमदूत सभा[49] को संगठित करती है और क्रांति के ख़िलाफ़ जनता के उन सभी अंशकों को उकसाती है, जो प्रतिक्रियावादी हैं, या जाहिल हैं या नसली अथवा धार्मिक घृणा के कारण अंधे हो गये हैं, –

"रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस पार्टी के सभी संगठनों का इस बात के लिए आह्वान करने का फ़ैसला करती है कि:

"(क) वे सरकार की रिआयतों के प्रतिक्रियावादी प्रयोजनों की क़लई खोलते हुए अपने प्रचार तथा आंदोलन में एक ओर, इस बात पर ज़ोर दें कि ये रिआयतें मजबूर होकर दी गयी हैं और दूसरी ओर, यह कि एकतंत्र के लिए ऐसे सुधार करना बिलकुल नामुमकिन है, जो सर्वहारा वर्ग के लिए संतोषजनक हों;

"(ख) चुनाव की मुहिम का फ़ायदा उठाकर वे मज़दूरों को सरकार द्वारा उठाये गये इन क़दमों का वास्तविक अर्थ समझायें और यह बतायें कि सर्वहारा वर्ग के लिए यह आवश्यक है कि यह सार्विक, समान तथा प्रत्यक्ष मताधिकार और गुप्त मतदान के आधार पर क्रांतिकारी ढंग से संविधान सभा का आयोजन करे;

"(ग) वे आठ घंटे के कार्य-दिवस की मांग को और मज़दूर वर्ग की अन्य तात्कालिक मांगों को फ़ौरन क्रांतिकारी ढंग से पूरा कराने के लिए सर्वहारा वर्ग को संगठित करें;

"(घ) वे यमदूत सभावालों की हरकतों के ख़िलाफ़ और सरकार के नेतृत्व में काम करनेवाले आम तौर पर सभी प्रतिक्रियावादी तत्वों की हरकतों के ख़िलाफ़ सशस्त्र प्रतिरोध संगठित करें।" (१६०७ के संस्करण में लेखक की टिप्पणी। **–सं०**)

समस्या को टाल देती है, उसे बदल देती है, आदि। अब बात यह नहीं है कि हर तरह के संयोग संभव हैं, कि विजय और पराजय, दोनों ही संभव हैं, कि सीधे रास्ते भी हो सकते हैं और चक्करदार भी; बात यह है कि सामाजिक-जनवादी के लिए सच्चे क्रांतिकारी पथ के बारे में मज़दूरों के दिमाग़ में उलझाव पैदा करना अनुचित है, कि 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों के ढंग से उस चीज़ को निर्णायक विजय कहना अनुचित है, जिसमें विजय की **मुख्य** शर्त भी ग़ायब है। हो सकता है कि हमारी आठ घंटे के कार्य-दिवस की मांग भी फ़ौरन ही नहीं, बल्कि बहुत ही लंबे तथा चक्करदार रास्ते से पूरी हो, पर आप उस आदमी के बारे में क्या कहेंगे, जो सर्वहारा वर्ग की ऐसी दुर्बलता को, ऐसी कमज़ोरी को मज़दूरों की विजय कहे, जो टाल-मटोल, विलंब, सौदेबाज़ी, विश्वासघात और प्रतिक्रियावाद का विरोध करने की **क्षमता** उससे छीन लेती हो? संभव है कि रूसी क्रांति की परिणति "सांविधानिक गर्भपात" में हो, जैसा कि एक बार 'व्पेर्योद'* में कहा गया था, परंतु क्या इस बात से उस सामाजिक-जनवादी की हरकत को उचित ठहराया जा सकता है, जो एक निर्णायक संघर्ष की पूर्ववेला में इस विफलता को "ज़ारशाही पर निर्णायक विजय" कहे? संभव है कि बुरी हालत में केवल यही न हो कि हम जनतंत्र न प्राप्त कर सकें, बल्कि संविधान भी एक छलावा हो, "शीपोव मार्का"[50] हो, परंतु क्या किसी सामाजिक-जनवादी के लिए हमारे जनतंत्र के नारे पर पर्दा डालना क्षम्य होगा?

ज़ाहिर है कि नव 'ईस्क्रा'-पंथी इस हद तक नहीं गये हैं कि वे उस

---

*'व्पेर्योद' अख़बार, जो जेनेवा से प्रकाशित होता था, पार्टी के बोल्शेविक हिस्से के मुखपत्र के रूप में जनवरी, १९०५ से निकलना शुरू हुआ। जनवरी से मई तक उसके अठारह अंक प्रकाशित हुए। मई के बाद रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के फ़ैसले के अनुसार रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के मुखपत्र के रूप में 'व्पेर्योद' के स्थान पर 'प्रोलेतारी' निकलने लगा (यह कांग्रेस मई में लंदन में हुई थी; मेंशेविक वहां नहीं गये, उन्होंने जेनेवा में अपना अलग "सम्मेलन" संगठित किया)। (१९०७ के संस्करण में लेखक की टिप्पणी। – सं०)

पर पर्दा डालें। परंतु उनमें से क्रांतिकारी भावना का जिस हद तक लोप हो चुका है, निष्प्राण तार्किकता ने तात्कालिक संघर्षमय कार्यभारों को उनकी नज़रों से जिस हद तक ओझल कर दिया है, यह सबसे स्पष्ट रूप से इस बात में व्यक्त होता है कि वे अपने प्रस्ताव में और तो और जनतंत्र तक के बारे में कोई बात कहना भूल गये! यह अविश्वसनीय है, फिर भी सही है। सम्मेलन के विभिन्न प्रस्तावों में सामाजिक-जनवाद के सभी नारों की पुष्टि की गयी, उन्हें दोहराया गया, समझाया गया तथा विस्तारपूर्वक पेश किया गया – यहां तक कि मज़दूरों द्वारा मेटों तथा प्रतिनिधियों के चुनाव की बात को भी नहीं भुलाया गया, पर अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की बाबत प्रस्ताव में उन्हें जनतंत्र का ज़िक्र तक करने का मौक़ा नहीं मिला। जनता के विद्रोह की "विजय" की, अस्थायी सरकार की स्थापना की बात करना और यह न बताना कि जनतंत्र हासिल करने के साथ इन "क़दमों" और कामों का क्या संबंध है – इसका मतलब है सर्वहारा संघर्ष के पथप्रदर्शन के लिए नहीं, बल्कि सर्वहारा आंदोलन की दुम में बंधकर घिसटते चलने के लिए प्रस्ताव लिखना।

सारांश यह कि प्रस्ताव के पहले भाग में (१) जनतंत्र के लिए संघर्ष के दृष्टिकोण से और सचमुच राष्ट्रव्यापी तथा सचमुच संविधान सभा हासिल करने के दृष्टिकोण से अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के महत्व को ज़रा भी नहीं समझाया गया; (२) ज़ारशाही पर क्रांति की निर्णायक विजय की श्रेणी में एक ऐसी परिस्थिति को रखकर, जिसमें से असली विजय की मुख्य शर्त ही ग़ायब थी, सर्वहारा वर्ग की जनवादी चेतना को उलझाव में डाल दिया गया।

४. राजतांत्रिक व्यवस्था का उन्मूलन और जनतंत्र

अब प्रस्ताव के दूसरे भाग पर विचार करें:

"...दोनों ही सूरतों में इस प्रकार की विजय क्रांतिकारी युग की एक नयी अवस्था का उद्घाटन करेगी।

"इस नयी ग्रवस्था में सामाजिक विकास की वस्तुपरक परिस्थितियों के कारण जो काम ग्रपने ग्राप सामने ग्रा गया है, वह है राजनीतिक मामले में मुक्त बुर्जुग्रा समाज के तत्वों के बीच ग्रपने सामाजिक हितों की तुष्टि के लिए ग्रौर सीधे-सीधे सत्ता प्राप्त करने के लिए होनेवाले ग्राप-सी संघर्ष की प्रक्रिया में समस्त सामंती श्रेणी-विभाजन ग्रौर राजतांत्रिक शासन-व्यवस्था का ग्रंतिम रूप से उन्मूलन।

"इसलिए जो ग्रस्थायी सरकार इस क्रांति के, ग्रपने ऐतिहासिक चरित्र में बुर्जुग्रा क्रांति के कार्यभारों को पूरा करने का काम ज़िम्मा लेगी, उसे मुक्त होते हुए राष्ट्र के विरोधी वर्गों के पारस्परिक संघर्ष का नियमन करते समय न केवल क्रांतिकारी विकास को ग्रौर ग्रागे बढ़ाना होगा, बल्कि उसके उन कारकों के ख़िलाफ़ लड़ना भी होगा, जिनसे पूंजीवादी व्यवस्था की नींव के लिए ख़तरा पैदा होता है।"

ग्राइये, इस भाग पर विचार करें, जो प्रस्ताव का एक स्वतंत्र हिस्सा है। उपरोक्त तर्कों का जो ग्राधारभूत विचार है, वह कांग्रेस के प्रस्ताव की तीसरी धारा में व्यक्त किये गये विचार के ग्रनुरूप है। परंतु दोनों प्रस्तावों के इन भागों की तुलना करते समय निम्नलिखित बुनियादी ग्रंतर फ़ौरन स्पष्ट हो जाता है। कांग्रेस का प्रस्ताव क्रांति के सामाजिक तथा ग्रार्थिक ग्राधार का संक्षिप्त वर्णन करके पूरा ध्यान निश्चित लाभों के लिए वर्गों के सुस्पष्ट रूप से निश्चित संघर्ष पर केंद्रित करता है ग्रौर सर्वहारा वर्ग के जुझारू कार्यभारों को सबसे ग्रागे रखता है। सम्मेलन के प्रस्ताव में क्रांति के सामाजिक तथा ग्रार्थिक ग्राधार के बहुत ही लंबे, धुंधले-धुंधले तथा उलझे हुए विवरण में निश्चित लाभों के लिए संघर्ष की बात बहुत ही गोल-मोल ढंग से की गयी है ग्रौर सर्वहारा वर्ग के जुझारू कार्यभारों को तो बिलकुल ही ग्रंधकार में रहने दिया गया है। सम्मेलन के प्रस्ताव में समाज के विभिन्न तत्वों के बीच पारस्परिक संघर्ष के दौरान पुरानी व्यवस्था के उन्मूलन की बात कही गयी है। कांग्रेस के प्रस्ताव में कहा गया है कि उन्मूलन का यह काम हमें, ग्रर्थात सर्वहारा वर्ग की पार्टी को करना चाहिए, कि पुरानी व्यवस्था का वास्तविक उन्मूलन जनवादी जनतंत्र की स्थापना ही है, कि हमें इस प्रकार का जनतंत्र संघर्ष द्वारा हासिल करना चाहिए, कि उसके लिए तथा पूर्ण स्वतंत्रता के लिए हम न केवल एकतंत्र के ख़िलाफ़, बल्कि बुर्जुग्रा वर्ग के ख़िलाफ़ भी लड़ेंगे, जब वह

हमारी उपलब्धियों को हमसे छीन लेने की कोशिश करेगा (और वह इसकी कोशिश ज़रूर करेगा)। कांग्रेस के प्रस्ताव में एक बिलकुल सही-सही निर्धारित तात्कालिक लक्ष्य के लिए लड़ने के निमित्त एक निश्चित वर्ग का आह्वान किया गया है। सम्मेलन के प्रस्ताव में भिन्न-भिन्न शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष की बात कही गयी है। एक प्रस्ताव सक्रिय संघर्ष की मनोवृत्ति को व्यक्त करता है, दूसरा निष्क्रिय दर्शक की मनोवृत्ति को; एक में सप्राण क्रियाशीलता के लिए आह्वान की गूंज है, दूसरा निष्प्राण तार्किकता से ओत-प्रोत है। दोनों ही प्रस्तावों में कहा गया है कि वर्तमान क्रांति हमारा केवल पहला क़दम है, जिसके बाद एक दूसरा क़दम उठाया जायेगा, परंतु इससे एक प्रस्ताव में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि हमें और भी शीघ्रता के साथ यह पहला क़दम उठाना चाहिए, और भी शीघ्रता के साथ उसे पूरा कर देना चाहिए, जनतंत्र हासिल करना चाहिए, प्रतिक्रांति को निर्ममतापूर्वक कुचल देना चाहिए और दूसरे क़दम के लिए ज़मीन तैयार करनी चाहिए। परंतु दूसरा प्रस्ताव, कहना चाहिए, इस पहले क़दम के लंबे-चौड़े वर्णनों से लबालब भरा हुआ है और (भोंडे शब्दों के लिए माफ़ कीजियेगा) उसमें उन्हीं की जुगाली की गयी है। कांग्रेस के प्रस्ताव में मार्क्सवाद के पुराने और चिर-नूतन (जनवादी क्रांति के बुर्जुआ चरित्र से संबंधित) विचारों को भूमिका या प्रथम मान्यता के रूप में लेकर उनसे उस अग्रगामी वर्ग के प्रगतिशील कार्यभारों के बारे में निष्कर्ष निकाले गये हैं, जो जनवादी क्रांति और समाजवादी क्रांति, दोनों के लिए लड़ रहा है। सम्मेलन का प्रस्ताव इस भूमिका से आगे नहीं बढ़ता, वह बार-बार उसी का चर्वण करता है और उसके बारे में अपनी चतुराई दिखाने की कोशिश करता है।

यही वह अंतर है, जिसने बहुत समय से रूसी मार्क्सवादियों को दो पक्षों में बांट रखा है: क़ानूनी मार्क्सवाद[51] के पुराने दिनों के तार्किक तथा जुझारू पक्ष और नवजात जन-आंदोलन के काल के आर्थिक तथा राजनीतिक पक्ष। आम तौर पर हर वर्ग संघर्ष की और ख़ास तौर पर राजनीतिक संघर्ष की गहरी आर्थिक जड़ों के संबंध में मार्क्सवाद की सही मान्यता से अर्थवादियों ने यह अनोखा निष्कर्ष निकाला कि हमें राजनीतिक संघर्ष की ओर से मुंह फेर लेना चाहिए और उसके विकास की गति को धीमा कर

देना चाहिए, उसके क्षेत्र को संकुचित कर देना चाहिए और उसके लक्ष्यों को घटा देना चाहिए। इसके विपरीत राजनीतिक पक्ष ने इन्हीं मान्यताओं से दूसरा ही निष्कर्ष निकाला, अर्थात यह कि इस समय हमारे संघर्ष की जड़ें जितनी ही गहरी हों, उतने ही अधिक व्यापक रूप से तथा उतने ही अधिक साहस के साथ, उतनी ही अधिक दृढ़ता के साथ और उतनी ही अधिक पहलक़दमी का परिचय देते हुए हमें इस संघर्ष को चलाना चाहिए। इस समय भी हमारे सामने बिलकुल वही बहस है, अंतर केवल यह है कि वह भिन्न परिस्थितियों तथा भिन्न रूप में है। इन मान्यताओं से कि जनवादी क्रांति समाजवादी क्रांति कदापि नहीं है, कि संपत्तिहीन लोग ही एकमात्र ऐसे लोग नहीं होते, जिन्हें उसमें "दिलचस्पी" होती है, कि उसकी गहनतम जड़ें **पूरे** बुर्जुआ समाज की अनिवार्य ज़रूरतों तथा आवश्यकताओं में जमी होती हैं – इन मान्यताओं से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि अग्रगामी वर्ग को अपने जनवादी कार्यभारों का निर्धारण और भी अधिक साहस के साथ करना चाहिए, उन्हें और तीखे ढंग से तथा पूर्ण रूप में व्यक्त करना चाहिए, जनतंत्र का सीधा नारा सामने रखना चाहिए, अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की और प्रतिक्रांति को निर्ममतापूर्वक कुचल देने की आवश्यकता के विचार का प्रचार करना चाहिए। परंतु हमारे विरोधी, नव 'ईस्क्रा'-पंथी इन्हीं मान्यताओं से यह नतीजा निकालते हैं कि जनवादी निष्कर्षों को पूर्णतः व्यक्त नहीं किया जाना चाहिए, कि जनतंत्र के नारे को व्यावहारिक नारों में पेश न करना संभव है, कि अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की ज़रूरत के विचार का प्रचार न करना संभव है, कि संविधान सभा बुलाने के फ़ैसले मात्र को निर्णायक विजय कहा जा सकता है, कि प्रतिक्रांति के ख़िलाफ़ लड़ने के काम को हमारे सक्रिय लक्ष्य के रूप में पेश न करना संभव है, बल्कि उसे "आपसी संघर्ष की प्रक्रिया" के धुंधले-से (और, जैसा कि हम अभी देखेंगे, ग़लत ढंग से प्रतिपादित) संकेत में विलीन करना संभव है। यह राजनीतिक नेताओं की नहीं, बल्कि पुरालेखागार के दक़ियानूसी अधिकारियों की भाषा है!

नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के प्रस्ताव की अलग-अलग प्रस्थापनाओं को आप जितनी ही अधिक गहराई से जांचें, उसकी उपरोक्त बुनियादी विशिष्टताएं आपको उतनी ही स्पष्ट हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, हमसे "राजनी-

तिक मामले में मुक्त बुर्जुआ समाज के तत्वों के बीच होनेवाले आपसी संघर्ष की प्रक्रिया" की बात कही जाती है। प्रस्ताव में जिस विषय (अस्थायी क्रांतिकारी सरकार) पर लिखा गया है, उसे याद करते हुए हम आश्चर्य से पूछते हैं: यदि आप आपसी संघर्ष की प्रक्रिया की बात कर रहे हैं, तो फिर आप उन तत्वों के बारे में ख़ामोश कैसे रह सकते हैं, जो बुर्जुआ समाज को राजनीतिक मामले में **गुलाम बना रहे हैं**? क्या सम्मेलनवाले सचमुच यह समझते हैं कि चूंकि उन्होंने यह मान लिया है कि क्रांति विजयी होगी, इसलिए इन तत्वों का लोप हो चुका है? इस प्रकार का विचार आम तौर पर बिलकुल बेतुका होगा और ख़ास तौर पर वह अत्यधिक राजनीतिक भोलेपन तथा राजनीतिक अदूरदर्शिता की अभिव्यक्ति होगा। प्रतिक्रांति पर क्रांति की विजय के बाद प्रतिक्रांति का लोप नहीं हो जायेगा, उलटे, वह अनिवार्य रूप से एक नया तथा और भी भीषण संघर्ष छेड़ देगी। चूंकि हमारे प्रस्ताव का लक्ष्य उन कार्यभारों का विश्लेषण करना है, जो क्रांति के विजयी हो जाने पर हमारे सामने आयेंगे, इसलिए हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम क्रांति विरोधी आक्रमणों को विफल करने के कार्यभारों की ओर बहुत अधिक ध्यान दें (जैसा कि कांग्रेस के प्रस्ताव में किया गया है), न कि एक जुझारू पार्टी के इन तात्कालिक, ज़रूरी तथा बुनियादी राजनीतिक कार्यभारों को इस प्रकार की आम बहसों में डुबा दें कि वर्तमान क्रांतिकारी काल **के बाद** क्या होगा, कि जब एक "राजनीतिक मामले में **मुक्त** समाज" अस्तित्व में आ चुका होगा, तब क्या होगा। जिस प्रकार अर्थवादी इस आम सत्य के हवालों द्वारा कि राजनीति आर्थिक व्यवस्था के नियमों के अधीन होती है, राजनीतिक कार्यभारों को समझने में अपनी असफलता तो छिपाते थे, उसी प्रकार नव 'ईस्क्रा'-पंथी इस आम सत्य के अपने हवालों द्वारा कि राजनीतिक मामले में **मुक्त** समाज में संघर्ष होगा, उस समाज की राजनीतिक **मुक्ति** के ज़रूरी क्रांतिकारी कार्यभारों को समझने में अपनी असफलता को छिपाते हैं।

इन शब्दों को ले लीजिये: "समस्त सामंती श्रेणी-विभाजन और राजतांत्रिक शासन-व्यवस्था का अंतिम रूप से उन्मूलन।" सीधे-सादे शब्दों में राजतांत्रिक व्यवस्था के अंतिम रूप से उन्मूलन का अर्थ होता है जनवादी

जनतंत्र की स्थापना। परंतु हमारे नेकदिल मार्तीनोव तथा उनके प्रशंसक यह सोचते हैं कि ये शब्द ज़रूरत से ज़्यादा सीधे-सादे तथा स्पष्ट हैं। वे उन्हें "और भी गूढ़" बना देने का, और भी "चतुराई से" कहने का आग्रह करते हैं। परिणामस्वरूप, एक ओर तो हमें गूढ़ प्रतीत होने के हास्यास्पद प्रयास दिखाई देते हैं और, दूसरी ओर, एक नारे के बजाय एक वृत्तांत मिलता है, आगे बढ़ने की जोशीली अपील के बजाय उदास भाव से अतीत की ओर देखने की प्रवृत्ति मिलती है। मानो हमारे सामने जीवित लोग नहीं हैं, जो तत्काल एक जनतंत्र के लिए लड़ने को उत्सुक हों, बल्कि कोई जड़ीभूत ममियां हैं, जो sub specie aeternitatis* प्रश्न पर plusquamperfectum** के दृष्टिकोण से विचार करती हैं।

आइये, आगे बढ़ें: "...अस्थायी सरकार... इस... बुर्जुआ क्रांति के कार्यभारों को पूरा करने का जिम्मा लेगी।" यहां हम फ़ौरन इस बात का परिणाम देखते हैं कि हमारे सम्मेलनवालों ने एक ऐसे ठोस प्रश्न को नज़रअंदाज़ किया है, जो सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक नेताओं के सामने खड़ा हुआ है। भविष्य में आनेवाली उन सरकारों की पूरी शृंखला के प्रश्न के कारण, जो आम तौर पर बुर्जुआ क्रांति के लक्ष्यों की सिद्धि करेंगी, अस्थायी क्रांतिकारी सरकार का ठोस प्रश्न उनकी दृष्टि से ओझल हो गया। यदि आप इस प्रश्न पर "ऐतिहासिक दृष्टि से" विचार करना चाहते हैं, तो किसी भी यूरोपीय देश के उदाहरण से आपको पता चल जायेगा कि ठीक ऐसी सरकारों की एक पूरी शृंखला ने ही, जो किसी भी प्रकार "अस्थायी" नहीं थीं, बुर्जुआ क्रांति के ऐतिहासिक लक्ष्यों की सिद्धि की, कि क्रांति को पराजित करनेवाली सरकारों तक को बहर-हाल उसी पराजित क्रांति के ऐतिहासिक लक्ष्यों की सिद्धि करने पर मजबूर होना पड़ा। परंतु जिसका आप ज़िक्र कर रहे हैं, उसे "अस्थायी क्रांतिकारी सरकार" नहीं कहा जाता: यह नाम एक क्रांतिकारी युग की उस सरकार को दिया जाता है, जो सीधे-सीधे उस सरकार के स्थान पर स्थापित

*—अनंतकाल के दृष्टिकोण से।—सं०
**—सुदूर अतीत।—सं०

होती है, जिसका तख़्ता उलट दिया गया होता है और जिसका आधार जनता के बीच से निकलनेवाली किसी प्रकार की प्रतिनिधि-संस्थाएं नहीं, बल्कि जनता का विद्रोह होता है। अस्थायी क्रांतिकारी सरकार क्रांति की तात्कालिक विजय के लिए, क्रांति विरोधी कोशिशों को तत्काल विफल करने के लिए संघर्ष का उपकरण होती है, वह किसी भी प्रकार आम तौर पर बुर्जुआ क्रांति के ऐतिहासिक लक्ष्यों की सिद्धि का उपकरण नहीं होती। सज्जनो, इस बात को तय करने का काम हम किसी भावी 'रूस्स्काया स्तारिना'[52] के किसी भावी इतिहासकार पर छोड़ दें कि बुर्जुआ क्रांति के किन-किन लक्ष्यों की हमने, या इस या उस सरकार ने सिद्धि की होती – अब से तीस वर्ष बाद इस काम के लिए काफ़ी समय होगा; इस समय हमें जनतंत्र के निमित्त संघर्ष के वास्ते और उस संघर्ष में सर्वहारा वर्ग के सर्वाधिक सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए नारे और व्यावहारिक निर्देश देने चाहिए।

उक्त कारणों से प्रस्ताव के ऊपर उद्धृत भाग में दी गयी अंतिम प्रस्थापनाएं भी असंतोषजनक हैं। यह कथन कि अस्थायी सरकार को विरोधी वर्गों के पारस्परिक संघर्ष का "नियमन" करना होगा, बहुत ही अनुपयुक्त है, या कम से कम बहुत ही भोंडे तरीक़े से प्रस्तुत किया गया है: मार्क्सवादियों को ऐसी उदारतावादी, 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी प्रस्थापना का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए, जो इस तरह सोचने का कारण प्रस्तुत करती है कि ऐसी सरकारें भी हो सकती हैं, जो वर्ग संघर्ष के उपकरणों के रूप में नहीं, बल्कि उसके "नियामकों" के रूप में काम करती हैं... सरकार को "न केवल क्रांतिकारी विकास को और आगे बढ़ाना होगा, बल्कि उसके उन कारकों के ख़िलाफ़ लड़ना भी होगा, जिनसे पूंजीवादी व्यवस्था की नींव के लिए ख़तरा पैदा होता है।" परंतु यह "कारक" तो स्वयं वही सर्वहारा वर्ग है, जिसकी ओर से प्रस्ताव बात करता है! यह बताने के बजाय कि इस समय सर्वहारा वर्ग को किस प्रकार "क्रांतिकारी विकास को और आगे बढ़ाना" चाहिए ('उससे भी आगे बढ़ाना, जहां तक संविधानवादी बुर्जुआ लोग जाने को तैयार होंगे), यह सलाह देने के बजाय कि जब बुर्जुआ वर्ग क्रांति की विजयों के ख़िलाफ़ हो जाये, तो उससे निश्चित तरीक़े से लड़ने की तैयारी किस तरह की जाये, हमें प्रक्रिया का

ग्राम विवरण दिया जाता है, जिसमें **हमारी** सरगर्मी के ठोस लक्ष्यों के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा गया है। अपने विचारों की अभिव्यक्ति का नव 'ईस्क्रा'-पंथियों का तरीक़ा द्वंद्ववाद के विचार से रहित, पुराने भौतिकवाद के बारे में मार्क्स के मत की (फ़ायरबाख़ पर उनके प्रख्यात "निबंध" में[53]) याद ताज़ा कर देता है। मार्क्स ने कहा था कि दार्शनिकों ने केवल विभिन्न तरीक़ों से विश्व की **व्याख्या की है**, परंतु असल सवाल उसे **बदलने** का है। उसी प्रकार नव 'ईस्क्रा'-पंथी अपनी आंखों के सामने होनेवाले संघर्ष की प्रक्रिया का कुछ हद तक संतोषजनक वर्णन तथा उसकी व्याख्या तो कर सकते हैं, पर वे उस संघर्ष के लिए एक सही नारा देने की क्षमता बिलकुल नहीं रखते। क़वायद में सरगर्म, पर नेतृत्व में बुरे ये लोग उस सक्रिय, नेतृत्वकारी तथा पथप्रदर्शक भूमिका की ओर, जिसे क्रांति की भौतिक शर्तों को समझनेवाली और अग्रगामी वर्गों के नेतृत्व-पद पर आसीन पार्टियां इतिहास में अदा कर सकती हैं और जो उन्हें अदा करनी चाहिए, ध्यान न देकर इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा के महत्व को घटाते हैं।

५. किस प्रकार "क्रांति को और आगे बढ़ाना" चाहिए?

अब हम प्रस्ताव का अगला हिस्सा उद्धृत करते हैं:

"ऐसी परिस्थितियों में सामाजिक-जनवाद को क्रांति के पूरे अर्से में ऐसी स्थिति बनाये रखने की कोशिश करनी चाहिए, जो उसके लिए क्रांति को और आगे बढ़ाने की संभावना सबसे अच्छे ढंग से सुनिश्चित कर दे, बुर्जुआ पार्टियों की असंगत तथा स्वार्थी नीति के ख़िलाफ़ संघर्ष में उसके हाथ न बांध दे और उसे बुर्जुआ जनवाद में विलीन हो जाने से बचाये रखे।

"इसलिए सामाजिक-जनवाद को अस्थायी सरकार में सत्ता ग्रहण करने या उसमें हिस्सा बंटाने का लक्ष्य अपने सामने नहीं रखना चाहिए, बल्कि उसे चरम क्रांतिकारी विरोध-पक्ष की पार्टी बने रहना चाहिए।"

ऐसी स्थिति ग्रहण करने की सलाह, जिससे क्रांति को और आगे

बढ़ाने की संभावना सबसे अच्छे ढंग से सुनिश्चित हो सके, हमें बहुत-बहुत पसंद आयी। हम केवल यह चाहते थे कि इस नेक सलाह के अलावा हमें कुछ इस बात का प्रत्यक्ष संकेत भी दिया गया होता कि इस समय, वर्तमान राजनीतिक स्थिति में, अफ़वाहों, अटकलबाज़ियों, वार्ताओं तथा जनता के प्रतिनिधियों को बुलाने की योजनाओं के युग में सामाजिक-जनवाद को क्रांति को किस प्रकार और आगे बढ़ाना चाहिए। जो कोई जनता तथा ज़ार के बीच "समझौते" के 'ओस्वोबोज्देनिये' वाले सिद्धांत के ख़तरे को समझने में असमर्थ हो, जो कोई संविधान सभा बुलाने के "फ़ैसले" मात्र को विजय कहता हो, जो कोई अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की आवश्यकता के विचार के सक्रिय प्रचार का कार्यभार अपने सामने निर्धारित न करता हो, या जो कोई जनवादी जनतंत्र के नारे को अंधकार में छोड़ देता हो, क्या ऐसा आदमी इस समय क्रांति को और आगे बढ़ा सकता है? इस प्रकार के लोग वास्तव में **क्रांति को पीछे ढकेलते हैं**, क्योंकि जहां तक **व्यावहारिक राजनीति** का सवाल है, वे **'ओस्वोबोज्देनिये' वाले** स्तर पर पहुंचकर रुक गये हैं। उनके द्वारा एकतंत्र के स्थान पर जनतंत्र की स्थापना की मांग करनेवाला कार्यक्रम स्वीकार किये जाने से क्या फ़ायदा है, जबकि कार्यनीतिक प्रस्ताव में, जिसमें क्रांति के दौर में पार्टी के वर्तमान तथा तात्कालिक काम बताये गये हों, जनतंत्र के लिए संघर्ष का नारा शामिल न किया जाये? वास्तव में इस 'ओस्वोबोज्देनिये' वाले रुख़ की, संविधानवादी बुर्जुआ वर्ग के रुख़ की विशिष्टता अब इस बात में है कि राष्ट्रव्यापी संविधान सभा बुलाने के फ़ैसले को निर्णायक विजय समझा जाता है, जबकि अस्थायी क्रांतिकारी सरकार तथा जनतंत्र के विषय पर बहुत सोच-समझकर चुप्पी साध ली जाती है! क्रांति को **और आगे** बढ़ाने के लिए, अर्थात उस सीमा से आगे बढ़ाने के लिए, जहां तक कि राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग उसे बढ़ाकर ले जा रहा है, यह आवश्यक है कि ऐसे नारे सक्रिय रूप से दिये जायें, उन पर ज़ोर दिया जाये तथा उनको सबसे प्रमुख स्थान दिया जाये, जिनमें बुर्जुआ जनवाद की "असंगतियों" के लिए **कोई गुंजाइश न हो**। इस समय इस प्रकार के **केवल दो ही** नारे हैं: **(१)** अस्थायी क्रांतिकारी सरकार और (२) जनतंत्र, क्योंकि राष्ट्रव्यापी **संविधान** सभा का नारा राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग ने **स्वीकार कर लिया** है

('ओस्वोबोज्देनिये लीग' का कार्यक्रम देखिये) और इसी उद्देश्य से स्वीकार कर लिया है कि क्रांति को निर्जीव किया जाये, कि क्रांति की पूर्ण विजय न होने दी जाये, कि बड़े बुर्जुआ वर्ग को ज़ारशाही के साथ सौदेबाज़ी करने का मौक़ा दिया जाये। अब हम देखते हैं कि उन दो नारों में से, एकमात्र जो क्रांति को और आगे बढ़ा सकते हैं, जनतंत्रवाले नारे को सम्मेलन बिलकुल भूल गया है और अस्थायी क्रांतिकारी सरकारवाले नारे को उसने 'ओस्वोबोज्देनिये' के राष्ट्रव्यापी संविधान सभा के नारे की श्रेणी में स्पष्ट रूप से रखा है और दोनों को "क्रांति की निर्णायक विजय" कहा है!!

हां, यह एक असंदिग्ध तथ्य है और हमें विश्वास है कि वह रूसी सामाजिक-जनवाद के भावी इतिहासकार के लिए एक सीमा-रेखा का काम करेगा। मई, १९०५ में हुए सामाजिक-जनवादियों के सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें जनवादी क्रांति को और आगे बढ़ाने के बारे में बहुत अच्छी-अच्छी बातें कही गयी हैं, पर जो वास्तव में उसे पीछे ढकेलता है और जो वास्तव में राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग के जनवादी नारों से रत्ती भर भी आगे नहीं जाता।

नव 'ईस्क्रा'-पंथी हमारे ऊपर यह आरोप लगाना पसंद करते हैं कि हम बुर्जुआ जनवाद में सर्वहारा वर्ग के विलीन हो जाने के ख़तरे की ओर ध्यान नहीं देते। हम ऐसे व्यक्ति से मिलना चाहेंगे, जो रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस द्वारा स्वीकार किये गये प्रस्तावों की इबारतों के आधार पर इस आरोप को सिद्ध करने का ज़िम्मा ले। हम अपने विरोधियों को यह जवाब देते हैं: बुर्जुआ समाज में काम करनेवाला सामाजिक-जनवाद किसी न किसी मामले में बुर्जुआ जनवाद **के साथ-साथ** चले बिना राजनीति में हिस्सा नहीं ले सकता। इस मामले में हमारे बीच अंतर केवल इतना है कि हम क्रांतिकारी तथा जनतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग में बिना विलीन हुए, उसके साथ-साथ चलते हैं, और आप **उदारतावादी तथा राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग** के साथ-साथ चलते हैं, जिसमें आप भी विलीन नहीं होते। **इस समय परिस्थिति यही है।**

आपने सम्मेलन के नाम से जो कार्यनीतिक नारे प्रतिपादित किये हैं, वे "सांविधानिक-जनवादी" पार्टी के, अर्थात **राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग**

की पार्टी के नारों से **हूबहू मिलते** हैं। आपने इस एकरूपता को न तो देखा और न महसूस किया और इस प्रकार आप वास्तव में '**ओस्वोबोज्दे-निये'-पंथियों के पीछे-पीछे** चलते रहे।

रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के नाम से हमने जो नारे प्रतिपादित किये हैं, वे जनवादी-क्रांतिकारी तथा जनतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग के नारों से हूबहू मिलते हैं। रूस में इस बुर्जुआ वर्ग तथा टुट-पुंजिया वर्ग ने अभी तक अपने आपको जनता की एक बड़ी पार्टी के रूप में संगठित नहीं किया है*। परंतु जो कोई इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ है कि इस समय रूस में क्या हो रहा है, केवल वही इस प्रकार की पार्टी के तत्वों के अस्तित्व में संदेह कर सकता है। हम सामाजिक-जनवादी पार्टी द्वारा संगठित सर्वहारा वर्ग का ही नहीं, बल्कि (महान रूसी क्रांति की सफल प्रगति की सूरत में) इस टुटपुंजिया वर्ग का भी नेतृत्व करने का इरादा रखते हैं, जो हमारे साथ क़दम से क़दम मिलाकर चलने की क्षमता रखता है।

सम्मेलन अपने प्रस्ताव में अचेतन रूप से उदारतावादी तथा राजतंत्र-वादी बुर्जुआ वर्ग के स्तर पर **उतर आता है**। पार्टी कांग्रेस अपने प्रस्ताव में सचेतन रूप से क्रांतिकारी जनवाद के उन तत्वों को **उठाकर** अपने स्तर तक ले आती है, जो दलाली की नहीं, बल्कि संघर्ष करने की क्षमता रखते हैं।

इस प्रकार के तत्व अधिकतर किसानों के बीच पाये जाते हैं। समाज के बड़े-बड़े समूहों का उनकी राजनीतिक प्रवृत्तियों के अनुसार वर्गीकरण करते समय हम कोई गंभीर ग़लती करने का ख़तरा मोल लिये बिना यह कह सकते हैं कि क्रांतिकारी तथा जनतंत्रवादी जनवाद और किसान अवाम एक ही चीज़ हैं—स्वभावतः उन्हीं ख़यालों, उन्हीं शर्तों के साथ और उन्हीं अर्थों में, जिनके तहत हम मज़दूर वर्ग और सामाजिक-जनवाद

---

*"समाजवादी-क्रांतिकारी" ऐसी पार्टी का अंकुर न होकर बुद्धिजी-वियों का एक आतंकवादी दल हैं, हालांकि वस्तुपरक दृष्टि से क्रांतिकारी तथा जनतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग के लक्ष्यों की सिद्धि ही इस दल की सरगर्मियों का कुल निचोड़ है।

को एक ही चीज़ कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम अपने निष्कर्षों का सूत्रीकरण इस प्रकार भी कर सकते हैं: एक क्रांतिकारी दौर में सम्मेलन अपने **अखिल राष्ट्रीय* राजनीतिक** नारों के मामले में अचेतन रूप से **ज़मींदारों के समूह के स्तर पर उतर आता है।** पार्टी कांग्रेस अपने अखिल राष्ट्रीय राजनीतिक नारों द्वारा **किसान अवाम को ऊंचा उठाकर क्रांतिकारी स्तर पर पहुंचा देती है।** इस निष्कर्ष के कारण हम पर विरोधाभासी बात में रुचि रखने का आरोप लगानेवाले हर व्यक्ति को हम चुनौती देते हैं कि वह इस प्रस्थापना का खंडन करे कि यदि हममें इतनी काफ़ी शक्ति न हो कि हम क्रांति को सफलता की मंजिल तक पहुंचा सकें, यदि क्रांति 'ओस्वोबोज्देनिये' वाले अर्थ में एक "निर्णायक विजय" में **समाप्त होती** है, अर्थात उसका अंत केवल ज़ार द्वारा आयोजित प्रतिनिधि सभा के रूप में ही होता है, जिसे केवल व्यंगोक्ति में ही संविधान सभा कहा जा सकता है – तो वह ऐसी क्रांति होगी, जिसमें **ज़मींदार तथा बड़े बुर्जुआ** तत्वों की प्रधानता होगी। इसके विपरीत, यदि हमें सचमुच महान क्रांति से होकर गुज़रना है, यदि इतिहास इस बार "गर्भपात" को रोक देता है, यदि हममें इतनी शक्ति है कि हम क्रांति को सफलता की मंज़िल तक, निर्णायक विजय तक पहुंचा सकें, इन शब्दों के 'ओस्वोबोज्देनिये' वाले या नव 'ईस्क्रा' वाले अर्थ में नहीं, तो वह ऐसी क्रांति होगी, जिसमें किसान तथा सर्वहारा तत्वों की प्रधानता होगी।

हो सकता है कि कुछ लोग इस तरह की प्रधानता के विचार को मानने का अर्थ भावी क्रांति के बुर्जुआ स्वरूप को मानने से इनकार समझें? 'ईस्क्रा' में इस अवधारणा के दुरुपयोग को देखते हुए यह बहुत संभव है। इसलिए इस प्रश्न पर विचार करना अनुचित न होगा।

---

*यहां पर हम किसानों से संबंधित उन विशेष नारों का उल्लेख नहीं कर रहे हैं, जिन पर अलग प्रस्तावों में विचार किया गया था।

६. असंगत बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ संघर्ष में सर्वहारा वर्ग के हाथ बंध जाने का ख़तरा किधर से है?

मार्क्सवादियों के दिमाग़ में रूसी क्रांति के बुर्जुआ चरित्र के बारे में किसी प्रकार की शंका नहीं है। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि राजनीतिक व्यवस्था में वे जनवादी सुधार और वे सामाजिक तथा आर्थिक सुधार, जो रूस के लिए आवश्यक हो गये हैं, स्वतः इस बात के द्योतक नहीं हैं कि पूंजीवाद की जड़ खोखली हो जायेगी, बुर्जुआ प्रभुत्व की जड़ खोखली हो जायेगी, उलटे वे पहली बार पूंजीवाद के एशियाई ढंग के नहीं, बल्कि यूरोपीय ढंग के व्यापक तथा तीव्र विकास के लिए सचमुच रास्ता साफ़ कर देंगे; वे पहली बार एक वर्ग के रूप में बुर्जुआ वर्ग के लिए अपना प्रभुत्व स्थापित करना संभव बना देंगे। समाजवादी-क्रांतिकारी इस विचार को नहीं समझ सकते, क्योंकि वे माल तथा पूंजीवादी उत्पादन के विकास के नियमों की बुनियादी बातों से अनभिज्ञ हैं; वे इस बात को नहीं देख पाते कि किसान विद्रोह की पूरी सफलता भी, किसानों के फ़ायदे के लिए और उनकी इच्छाओं के अनुसार सारी ज़मीन का पुनर्वितरण भी ("आम भूमि पुनर्वितरण"[54] या उसी प्रकार की कोई चीज़) पूंजीवाद को ज़रा भी नष्ट नहीं करेगा, बल्कि उलटे वह उसके विकास को प्रोत्साहन देगा और स्वयं किसानों के वर्ग विघटन की रफ़्तार को तेज़ करेगा। इस सचाई को न समझ सकने के कारण समाजवादी-क्रांतिकारी टुटपुंजिया वर्ग के अचेतन विचारधारा-निरूपक बन जाते हैं। इस सचाई पर ज़ोर देना केवल सैद्धांतिक दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक राजनीति के दृष्टिकोण से भी सामाजिक-जनवाद के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसी से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान "आम जनवादी" आंदोलन में सर्वहारा वर्ग की पार्टी की पूर्ण वर्गीय आत्मनिर्भरता अपरिहार्य है।

परंतु इसका यह मतलब हरगिज़ नहीं है कि **जनवादी** क्रांति (अपने सामाजिक तथा आर्थिक अंतर्य में बुर्जुआ) सर्वहारा वर्ग के लिए **अत्यधिक**

दिलचस्पी की चीज़ नहीं है। इसका यह मतलब हरगिज़ नहीं है कि जनवादी क्रांति ऐसे रूप में नहीं हो सकती, जो मुख्यतः बड़े पूंजीपति, वित्तीय धनपति और "प्रबुद्ध" ज़मींदार के लिए लाभदायक हो, या ऐसे रूप में, जो किसान और मज़दूर के लिए लाभदायक हो।

नव 'ईस्क्रा'-पंथी प्रवर्ग के रूप में बुर्जुआ क्रांति के अर्थ तथा महत्व को बिलकुल ग़लत ढंग से समझते हैं। उनकी दलीलों में लगातार यह विचार प्रतिध्वनित होता रहता है कि बुर्जुआ क्रांति एक ऐसी क्रांति होती है, जो केवल बुर्जुआ वर्ग के लिए ही हितकर हो सकती है। फिर भी इस विचार से अधिक ग़लत कोई दूसरी बात नहीं हो सकती। बुर्जुआ क्रांति एक ऐसी क्रांति होती है, जो बुर्जुआ, अर्थात पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की सीमाओं से बाहर नहीं जाती। बुर्जुआ क्रांति पूंजीवाद के विकास की आवश्यकताओं को व्यक्त करती है और पूंजीवाद की बुनियादों को नष्ट करना तो दूर, वह इससे बिलकुल ही उलटी बात करती है, वह उन्हें और चौड़ा तथा गहरा बना देती है। इसलिए यह क्रांति न केवल मज़दूर वर्ग के हितों को, बल्कि पूरे बुर्जुआ वर्ग के हितों को भी व्यक्त करती है। चूंकि पूंजीवाद के अंतर्गत मज़दूर वर्ग पर बुर्जुआ वर्ग का प्रभुत्व अनिवार्य है, इसलिए यह कहना बिलकुल सही है कि बुर्जुआ क्रांति उस हद तक सर्वहारा वर्ग के हितों की अभिव्यक्ति नहीं करती, जिस हद तक कि वह बुर्जुआ वर्ग के हितों की अभिव्यक्ति करती है। परंतु यह सोचना बिलकुल बेतुकी बात है कि बुर्जुआ क्रांति सर्वहारा वर्ग के हितों की अभिव्यक्ति करती ही नहीं। इस बेसिर-पैर के विचार का कुल निचोड़ या तो यह पुराना नरोदवादी सिद्धांत है कि बुर्जुआ क्रांति सर्वहारा वर्ग के हितों के ख़िलाफ़ होती है, कि इसलिए हमें बुर्जुआ राजनीतिक स्वतंत्रता की कोई ज़रूरत नहीं है; या फिर उसका निचोड़ अराजकतावाद है, जो सर्वहारा वर्ग का बुर्जुआ राजनीति में, बुर्जुआ क्रांति में और बुर्जुआ संसद-पद्धति में किसी भी प्रकार भाग लेना अस्वीकार करता है। सिद्धांत के दृष्टिकोण से यह विचार माल उत्पादन के आधार पर पूंजीवाद के विकास की अनिवार्यता की मार्क्सवाद की बुनियादी प्रस्थापनाओं की अवहेलना करता है। मार्क्सवाद सिखाता है कि वह समाज, जो माल उत्पादन पर आधारित है और जिसका सभ्य पूंजीवादी राष्ट्रों के साथ वाणिज्यिक संबंध

ख़ास अर्थ में बुर्जुआ क्रांति बुर्जुआ वर्ग की अपेक्षा सर्वहारा वर्ग के लिए अधिक हितकर होती है। यह प्रस्थापना निम्नलिखित अर्थ में निस्संदिग्ध है: बुर्जुआ वर्ग के लिए यह बात हितकर होती है कि वह सर्वहारा वर्ग के ख़िलाफ़ अतीत के कुछ अवशेषों का सहारा ले, उदाहरण के लिए, राज-तंत्र, स्थायी सेना, आदि का। बुर्जुआ वर्ग के लिए यह हितकर होगा कि बुर्जुआ क्रांति अतीत के सभी अवशेषों का ज़रूरत से ज़्यादा दृढ़ता के साथ सफ़ाया न कर दे, बल्कि कुछ अवशेषों को बना रहने दे, अर्थात वह क्रांति पूरी तरह सुसंगत न हो, पूर्ण न हो, निर्णयात्मक तथा निर्मम न हो। सामाजिक-जनवादी इस विचार को यह कहकर बहुधा कुछ दूसरे ढंग से व्यक्त करते हैं कि बुर्जुआ वर्ग स्वयं अपने साथ विश्वासघात करता है, कि बुर्जुआ वर्ग स्वाधीनता के हेतु के साथ विश्वासघात करता है, कि बुर्जुआ वर्ग में सुसंगत रूप से जनवादी होने की क्षमता ही नहीं होती। यह बुर्जुआ वर्ग के लिए अधिक हितकर होगा कि बुर्जुआ-जनवादी दिशा में आवश्यक परिवर्तन अधिक मंद गति से, अधिक क्रमगत ढंग से, अधिक सतर्कता के साथ, कम दृढ़ता के साथ, क्रांति द्वारा नहीं, बल्कि सुधारों द्वारा हों; कि वे परिवर्तन भूदासता की "सम्मानित" संस्थाओं (जैसे राजतंत्र) के प्रति यथासंभव ज़्यादा से ज़्यादा सावधानी बरतें; कि वे परिवर्तन आम जनता की, अर्थात किसानों की और ख़ास तौर पर मज़दूरों की क्रांतिकारी सक्रियता, पहलक़दमी तथा जोश को यथासंभव कम से कम विकसित करें, नहीं तो मज़दूरों के लिए यह कहीं ज़्यादा आसान हो जायेगा कि वे, जैसा कि फ़्रांसीसी कहते हैं, "बंदूक़ एक कंधे से हटाकर दूसरे कंधे पर रख लें", अर्थात बुर्जुआ क्रांति जो हथियार उनके हाथ में देगी, बुर्जुआ क्रांति के फलस्वरूप जो स्वतंत्रता उन्हें मिलेगी और भूदासता से साफ़ की गयी ज़मीन पर जो जनवादी संस्थाएं जन्म लेंगी, उन सब को वे बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करें।

इसके विपरीत मज़दूर वर्ग के लिए यह ज़्यादा लाभकर होगा कि बुर्जुआ-जनवादी दिशा में आवश्यक परिवर्तन सुधारों के ज़रिये नहीं, बल्कि क्रांति के ज़रिये हों, क्योंकि सुधार का रास्ता विलंब का, टाल-मटोल का, राष्ट्र के शरीर के सड़ते हुए अंगों के बहुत कष्टमय ढंग से धीरे-धीरे विलोप का रास्ता है। सड़ने की इस प्रक्रिया के कारण सबसे पहले और सबसे

अधिक विपदाएं सर्वहारा वर्ग तथा किसानों को सहनी पड़ती हैं। क्रांतिकारी रास्ता सड़े हुए अंगों को जल्दी से काट देने का रास्ता है, जो सर्वहारा वर्ग के लिए सबसे कम कष्टदायक होता है, वह सड़ते हुए भागों को तत्काल काटकर अलग कर देने का रास्ता, राजतंत्र को और उससे संबद्ध घृणास्पद, दूषित, सड़ी हुई तथा विष फैलानेवाली संस्थाओं को कम से कम रिआयतें देने का और उनके साथ कम से कम नरमी बरतने का रास्ता है।

इसीलिए हमारे बर्जुआ-उदारतावादी अख़बार यदि क्रांतिकारी रास्ते की संभावना का रोना रोते हैं, क्रांति से डरते हैं, ज़ार को क्रांति के हौए से डराने की कोशिश करते हैं, क्रांति से बच जाने के लिए चिंतित हैं, सुधारवादी रास्ते के आधार के रूप में तुच्छ सुधारों के लिए गिड़गिड़ाते और नाक रगड़ते हैं, तो उसका कारण केवल सेंसर नहीं है, केवल "यहूदियों का भय" नहीं है। इस दृष्टिकोण के समर्थक केवल 'रूस्सकीये वेदोमोस्ती', 'सिन ओतेचेस्त्वा', 'नाशा जीज़न' तथा 'नाशी द्नी'[55] ही नहीं हैं, बल्कि ग़ैर क़ानूनी, सेंसर की पाबंदी से मुक्त 'ओस्वोबोज्देनिये' भी यही दृष्टिकोण रखता है। पूंजीवादी समाज में एक वर्ग की हैसियत से बुर्जुआ वर्ग की जो स्थिति होती है, उसी के फलस्वरूप जनवादी क्रांति में उसकी असंगति अनिवार्य हो जाती है। एक वर्ग के रूप में सर्वहारा वर्ग की जो स्थिति होती है, वही उसे सुसंगत रूप से जनवादी होने पर मजबूर करती है। बुर्जुआ वर्ग जनवादी प्रगति से डरकर, जिससे सर्वहारा वर्ग के मज़बूत होने का ख़तरा पैदा हो जाता है, पीछे की ओर देखता है। सर्वहारा वर्ग के पास अपनी ज़ंजीरों के अतिरिक्त खोने के लिए और कुछ नहीं है, लेकिन जनवाद की सहायता से जीतने के लिए पूरी दुनिया होती है[56]। यही कारण है कि अपने जनवादी परिवर्तनों के मामले में बुर्जुआ क्रांति जितनी ही सुसंगत होगी, उतनी ही कम हद तक वह अपने आपको उन चीज़ों तक सीमित रखेगी, जो एकमात्र बुर्जुआ वर्ग के लिए ही लाभकर हों। बुर्जुआ क्रांति जितनी ही सुसंगत होगी, उतनी ही अधिक हद तक वह सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के लिए जनवादी क्रांति से होनेवाले लाभों की गारंटी करेगी।

मार्क्सवाद सर्वहारा को सिखाता है कि वह बुर्जुआ क्रांति से अलग न

रहे, उसके प्रति उदासीन न रहे, क्रांति का नेतृत्व बुर्जुआ वर्ग के हाथ में न जाने दे, बल्कि इसके विपरीत, अत्यंत उत्साह के साथ उसमें भाग ले, सुसंगत सर्वहारा जनवाद के लिए, क्रांति को उसके अंत तक ले जाने के लिए पूरी दृढ़ता के साथ लड़े। हम रूसी क्रांति की बुर्जुआ-जनवादी सीमाओं से बाहर तो नहीं जा सकते, पर हम उन सीमाओं को काफ़ी बड़े पैमाने पर विस्तृत कर सकते हैं और उन सीमाओं के भीतर सर्वहारा वर्ग के हितों के लिए, उसकी तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए और उन परिस्थितियों के लिए लड़ सकते हैं और हमें लड़ना चाहिए, जिनके द्वारा यह संभव होगा कि सर्वहारा वर्ग भविष्य में पूर्ण विजय के लिए अपनी शक्तियों को तैयार कर सके। बुर्जुआ जनवाद दो प्रकार का होता है। ज़ेम्स्त्वो का वह राजतंत्रवादी कार्यकर्त्ता भी बुर्जुआ जनवादी है, जो संसद में ऊपरी सदन के पक्ष में होता है और जो सार्विक मताधिकार "मांगता" है, पर आंख बचाकर चुपके-चुपके ज़ारशाही के साथ एक सीमित संविधान की बाबत सौदेबाज़ी भी करता रहता है। और वह किसान भी बुर्जुआ जन-वादी है, जो हाथ में हथियार लेकर ज़मींदारों तथा नौकरशाहों के ख़िलाफ़ लड़ रहा है और जो बहुत ही "भोली जनतंत्रवादी भावना" के साथ "ज़ार को निकाल बाहर करने"* का सुझाव पेश करता है। बुर्जुआ-जन-वादी व्यवस्था वैसी भी होती है, जैसी जर्मनी में है, और वैसी भी है, जैसी इंगलैंड में; वैसी भी होती है, जैसी आस्ट्रिया में और वैसी भी, जैसी अमरीका तथा स्विट्ज़रलैंड में है। वह सचमुच ही कमाल का मार्क्स-वादी होगा, जो जनवादी क्रांति के ज़माने में जनवादिता के विभिन्न स्तरों के अंतर को, उसके विभिन्न रूपों के चरित्र में अंतर को न देख सके और अपने आपको केवल इस आशय के "चतुराईभरे" कथन तक ही सीमित रखे कि बहर-हाल यह "एक बुर्जुआ क्रांति" है, एक "बुर्जुआ क्रांति" का फल है।

हमारे नव 'ईस्क्रा'-पंथी ऐसे ही चतुर लोग हैं, जो अपनी अदूरदर्शिता पर इतराते फिरते हैं। ठीक जब और जहां असंगत बुर्जुआ जनवादिता और सुसंगत सर्वहारा जनवादिता के अंतर की तो बात ही क्या, जनतंत्रवादी-क्रांतिकारी और राजतंत्रवादी-उदारतावादी बुर्जुआ जनवाद के

---

*देखें 'ओस्वोबोज्देनिये', अंक ७१, पृ० ३३७, टिप्पणी २।

बीच भी अंतर कर सकने की आवश्यकता होती है, वे अपने को क्रांति के बुर्जुआ चरित्र की बाबत बहसों में सीमित कर लेते हैं। ऐसे समय पर, जबकि सवाल वर्तमान क्रांति में **जनवादी नेतृत्व** प्रदान करने का है, जबकि सवाल श्री स्त्रूवे और उनकी मंडली के विश्वासघातपूर्ण नारों के बरख़िलाफ़ **प्रगतिशील जनवादी** नारों पर ज़ोर देने का है, जबकि सवाल ज़मींदारों तथा कारख़ानेदारों की उदारतावादी सौदेबाज़ी के बरख़िलाफ़ सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के वस्तुतः क्रांतिकारी संघर्ष के तात्कालिक कार्यभारों को बेधड़क साफ़-साफ़ शब्दों में बता देने का है, वे "विरोधी वर्गों के पारस्परिक संघर्ष की प्रक्रिया" के बारे में बड़े उदास भाव से बातें करके अपने आपको संतोष दिलाते हैं—मानो वे सचमुच "मफ़लरधारी आदमी"[57] बन गये हों। तो, सज्जनो, ऐसा है समस्या का सारतत्व, जिसे देखने में आप चूक गये हैं, वह इस समय इस प्रकार है: क्या हमारी क्रांति की परिणति सचमुच बहुत बड़ी विजय में होगी या उसका अंत केवल एक तुच्छ सौदेबाज़ी के रूप में होगा, क्या वह सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व की मंज़िल तक पहुंचेगी या शीपोव मार्का उदारतावादी संविधान में "फिसफिसाकर ख़त्म हो जायेगी"!

पहली नज़र में ऐसा प्रतीत हो सकता है कि यह प्रश्न उठाकर हम अपने विषय से बिलकुल भटक गये हैं। परंतु ऐसा केवल पहली नज़र में ही प्रतीत हो सकता है। सच तो यह है कि रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस की सामाजिक-जनवादी कार्यनीति और नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के सम्मेलन द्वारा प्रवर्तित कार्यनीति के बीच जो उसूली अंतर अब इतना उभरकर सामने आ गया है; उसकी बुनियाद में ठीक यही प्रश्न है। क्रांति के समय पार्टी की कार्यनीति के जो प्रश्न मज़दूरों की पार्टी के लिए कहीं अधिक जटिल, कहीं अधिक महत्वपूर्ण और कहीं अधिक बुनियादी होते हैं, उन्हें हल करने में अर्थवाद की पुरानी ग़लतियों को दोहराकर नव 'ईस्क्रा'-पंथी दो नहीं, बल्कि तीन क़दम पीछे चले गये हैं। यही कारण है कि जो प्रश्न हमने उठाया है, उसका विश्लेषण हमें यथोचित ध्यान के साथ करना चाहिए।

नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के प्रस्ताव के जिस भाग को हमने ऊपर उद्धत किया है, उसमें इस ख़तरे की ओर संकेत किया गया है कि बुर्ज़ुआ वर्ग

की असंगत नीति के ख़िलाफ़ संघर्ष में सामाजिक-जनवाद कहीं अपने हाथ न बांध ले, कहीं वह बुर्जुआ जनवाद में विलीन न हो जाये। नव 'ईस्क्रा' के ढंग के सारे साहित्य में इस ख़तरे का विचार समान रूप से पाया जाता है, यह विचार हमारी पार्टी की फूट में अंतर्निहित सैद्धांतिक रुख़ का असली आधार है (जब से कि इस फूट में तू-तू मैं-मैं के तत्व अर्थवाद की दिशा में मोड़ के तत्वों के सामने बिलकुल मंद पड़ गये)। बिना किसी अगर-मगर के हम स्वीकार करते हैं कि यह ख़तरा सचमुच मौजूद है और ठीक इसी समय, जबकि रूसी क्रांति अपने शिखर पर है, यह ख़तरा विशेष रूप से गंभीर हो गया है। सामाजिक-जनवाद के हम सभी सिद्धांतकारों का, या – जैसा कि मैं अपने बारे में कहना अधिक पसंद करूंगा – सामाजिक-जनवाद के पत्रकारों का तात्कालिक तथा अत्यंत उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्य यह मालूम करना है कि इस बात का ख़तरा सचमुच **किस दिशा से** है। कारण कि हमारे मतभेद का स्रोत इस बात पर किसी विवाद में निहित नहीं कि इस प्रकार का ख़तरा है या नहीं, बल्कि उसका स्रोत तो यह विवाद है कि क्या यह ख़तरा "अल्पसंख्या" के तथाकथित पुछल्लावाद से उत्पन्न होता है या "बहुसंख्या" के तथाकथित क्रांतिकारीपन से।

तमाम ग़लत व्याख्याओं और ग़लतफ़हमियों को दूर करने के लिए सबसे पहले तो हम इस बात को ध्यान में रखें कि जिस ख़तरे की ओर हम संकेत कर रहे हैं, वह समस्या के आत्मपरक पक्ष में नहीं, बल्कि वस्तुपरक पक्ष में निहित है, वह इस बात में निहित नहीं है कि सामाजिक-जनवाद संघर्ष में क्या औपचारिक रुख़ अपनायेगा, बल्कि इस बात में निहित है कि पूरे वर्तमान क्रांतिकारी संघर्ष का ठोस परिणाम क्या निकलेगा। सवाल यह नहीं है कि ये या वे सामाजिक-जनवादी दल बुर्जुआ जनवाद में विलीन हो जाना चाहेंगे या नहीं, अथवा उन्हें इस बात की चेतना है या नहीं कि वे विलीन होते जा रहे हैं। यह कोई नहीं कहता। हमें किसी भी सामाजिक-जनवादी के बारे में इस प्रकार की शंका नहीं है कि वह अपने मन में इस प्रकार की चाह रखता है। यह इच्छाओं का सवाल है भी नहीं। न ही इस बात का सवाल है कि ये या वे सामाजिक-जनवादी दल क्रांति के पूरे अर्से में बुर्जुआ जनवाद **से** अपनी औपचारिक स्वतंत्रता, पार्थक्य और स्वाधीनता को सुरक्षित रखेगा कि नहीं। संभव है कि वे इस

प्रकार की "स्वाधीनता" की केवल घोषणा ही न करें, बल्कि उसे औपचारिक रूप से सुरक्षित भी रखें और फिर भी **यही प्रकट हो सकता है** कि बुर्जुआ वर्ग की असंगति के ख़िलाफ़ संघर्ष में उनके हाथ बंधे ही रहेंगे। क्रांति का अंतिम राजनीतिक परिणाम यह हो सकता है कि सामाजिक-जनवाद की औपचारिक "स्वतंत्रता" के बावजूद, पार्टी की हैसियत से उसके पूर्ण संगठनात्मक पार्थक्य के बावजूद वह वास्तव में स्वतंत्र नहीं होगा, वह घटनाक्रम पर अपनी सर्वहारा स्वतंत्रता की छाप नहीं डाल सकेगा, वह इतना कमज़ोर साबित होगा कि कुल मिलाकर और अंतिम विश्लेषण में उसका बुर्जुआ जनवाद में "विलीन हो जाना" एक ऐतिहासिक तथ्य बन जायेगा।

असली ख़तरा इसी बात में है। अब यह देखें कि यह ख़तरा किस दिशा से है: क्या सामाजिक-जनवाद के दक्षिणपंथी भटकाव से, जिसका प्रतिनिधित्व नव 'ईस्क्रा' करता है, जैसा कि हमारा ख़याल है; या सामाजिक-जनवाद के वामपंथी भटकाव से, जिसका प्रतिनिधित्व "बहुसंख्या", 'व्पेर्योद'[58], आदि करते हैं, जैसा कि नव 'ईस्क्रा'-पंथियों का ख़याल है।

जैसा कि हम बता चुके हैं, इस प्रश्न का हल विभिन्न सामाजिक शक्तियों की संक्रियाओं के वस्तुपरक संयोग द्वारा निर्धारित होता है। रूसी जीवन के मार्क्सवादी विश्लेषण द्वारा इन शक्तियों का चरित्र सैद्धांतिक दृष्टि से निर्धारित हो चुका है और इस समय वह क्रांति के दौरान विभिन्न दलों तथा वर्गों की खुली कार्रवाई द्वारा व्यवहार में निर्धारित किया जा रहा है। हम इस समय जिस दौर से गुज़र रहे हैं, उससे बहुत पहले ही मार्क्सवादियों द्वारा किये गये पूरे सैद्धांतिक विश्लेषण से और क्रांतिकारी घटनाओं के विकास पर सभी व्यावहारिक पर्यवेक्षणों से भी यह मालूम हो जाता है कि वस्तुपरक परिस्थितियों की दृष्टि से रूस में क्रांति के दो रास्ते और दो परिणाम संभव हैं। रूस की आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था में बुर्जुआ-जनवादी ढर्रे पर परिवर्तन होना अनिवार्य तथा अपरिहार्य है। संसार की कोई भी शक्ति इस परिवर्तन को रोक नहीं सकती। परंतु जो वर्तमान शक्तियां यह परिवर्तन ला रही हैं, उनकी संयुक्त संक्रियाओं से इस परिवर्तन के दो प्रकार के परिणाम अथवा दो प्रकार के रूप हो सकते हैं। या तो (१) परिणाम यह होगा कि "ज़ारशाही पर क्रांति की

निर्णायक विजय" होगी, या (२) ये शक्तियां निर्णायक विजय के लिए अपर्याप्त होंगी और सारा मामला ज़ारशाही और बुर्जुआ वर्ग के सबसे अधिक "असंगत" तथा सबसे अधिक "स्वार्थी" तत्वों के बीच कोई सौदा होकर ख़त्म हो जायेगा। ब्योरों और संयोजनों की सारी विविधता, जिसे पहले से कोई नहीं देख सकता, कुल मिलाकर इन दो परिणामों में से एक बनकर रह जाती है।

अब इन दोनों परिणामों पर, पहले, उनके सामाजिक महत्व की दृष्टि से और, दूसरे, दोनों में से किसी भी सूरत में सामाजिक-जनवाद की स्थिति (उसके "विलीन हो जाने" या "उसके हाथ बंध जाने") की दृष्टि से विचार करें।

"ज़ारशाही पर क्रांति की निर्णायक विजय" क्या है? हम देख चुके हैं कि जब नव 'ईस्क्रा'-पंथी इन शब्दों का उपयोग करते हैं, तो वे उनके तात्कालिक राजनीतिक अर्थ को भी नहीं समझते। इस अवधारणा के वर्गीय अंतर्य को तो वे और भी कम समझते हैं। बेशक हमें, मार्क्सवादियों को "क्रांति" या "महान रूसी क्रांति" जैसे **शब्दों** के धोखे में हरगिज़ नहीं आना चाहिए, जिस तरह (गपोन जैसे) बहुत-से क्रांतिकारी जनवादी आ जाते हैं। हमारे दिमाग़ में यह बात बिलकुल साफ़ होनी चाहिए कि कौन-सी वास्तविक सामाजिक शक्तियां "ज़ारशाही" (यह एक ऐसी वास्तविक शक्ति है, जो सब के लिए सर्वथा बोधगम्य है) के ख़िलाफ़ हैं और उस पर "निर्णायक विजय" प्राप्त करने की क्षमता रखती हैं। बड़े बुर्जुआ लोग, ज़मींदार, कारख़ानेदार, 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों की अगुआई में चलनेवाला "समाज" इस प्रकार की शक्ति नहीं हो सकते। हम देखते हैं कि वे निर्णायक विजय चाहते भी नहीं। हम जानते हैं कि अपनी वर्ग स्थिति के कारण वे ज़ारशाही के ख़िलाफ़ निर्णायक संघर्ष करने की क्षमता नहीं रखते: उनके पैरों में निजी संपत्ति, पूंजी तथा ज़मीन की इतनी भारी बेड़ियां पड़ी हुई हैं कि वे निर्णायक संघर्ष के क्षेत्र में क़दम भी नहीं रख सकते। सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल के लिए उन्हें पुलिस-शाही-नौकरशाही तथा सैनिक शक्तियों समेत ज़ारशाही की इतनी अधिक आवश्यकता है कि वे उसके विनाश की कामना भी नहीं कर सकते। नहीं, "ज़ारशाही पर निर्णायक विजय" प्राप्त करने की क्षमता रखनेवाली एक-

मात्र शक्ति **जनता** ही हो सकती है, अर्थात सर्वहारा वर्ग तथा किसान, यदि बुनियादी, बड़ी शक्तियों को लें और गांवों तथा शहरों के टुटपुंजिया वर्ग को (ये भी "जनता" हैं) इन दोनों के बीच बांट दें। "ज़ारशाही पर क्रांति की निर्णायक विजय" **सर्वहारा वर्ग तथा किसानों का क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व** है। हमारे नव 'ईस्क्रा'-पंथी इस निष्कर्ष से बच नहीं सकते, जिसकी ओर 'व्पेर्योद' ने बहुत पहले संकेत किया था। ज़ार-शाही पर निर्णायक विजय प्राप्त करने की क्षमता और कोई नहीं रखता।

इस प्रकार की विजय अधिनायकत्व ही होगी, अर्थात उसे अनिवार्य रूप से सैनिक शक्ति पर, हथियारबंद अवाम पर, विद्रोह पर, न कि "क़ानूनी" या "शांतिपूर्ण ढंग से" स्थापित की गयी इन या उन संस्थाओं पर भरोसा करना पड़ेगा। यह अधिनायकत्व ही हो सकता है, क्योंकि सर्वहारा वर्ग और किसानों के लिए जो परिवर्तन तत्काल तथा नितांत अपरिहार्य हैं, उनका कार्यान्वयन ज़मींदारों, बड़े बुर्जुआ लोगों तथा ज़ार-शाही की ओर से भयंकर विरोध को जन्म देगा। अधिनायकत्व के बिना इस विरोध को चकनाचूर करना और प्रतिक्रांतिकारी कोशिशों को विफल बनाना असंभव है। परंतु वह बेशक समाजवादी अधिनायकत्व नहीं, बल्कि जनवादी अधिनायकत्व होगा। वह (क्रांतिकारी विकास की अंतर्वर्ती अव-स्थाओं की एक पूरी श्रृंखला के बिना) पूंजीवाद की नींव को टस से मस नहीं कर सकेगा। हद से हद वह यह कर सकता है कि किसानों के फ़ायदे में भूसंपत्ति का आमूल पुनर्वितरण कर दे, जनतंत्र के निर्माण समेत सुसंगत तथा पूर्ण जनवाद की स्थापना कर दे, केवल गांवों के ही नहीं, बल्कि फ़ैक्टरियों के जीवन में भी सभी एशियाई उत्पीड़नकारी लक्षणों को समूल नष्ट कर दे, मज़दूरों की हालत में महत्वपूर्ण सुधार तथा उनके रहन-सहन के स्तर को ऊंचा कर देने की शुरूआत कर दे और अंत में – last but not least* – क्रांति की ज्वाला को यूरोप में पहुंचा दे। परंतु इस प्रकार की विजय हमारी बुर्जुआ क्रांति को कदापि समाजवादी क्रांति में नहीं बदलेगी; जनवादी क्रांति बुर्जुआ सामाजिक तथा आर्थिक संबंधों

---

* – आख़िरी, पर कम महत्वपूर्ण नहीं।

की सीमाओं का सीधे उल्लंघन नहीं करेगी; फिर भी इस प्रकार की विजय का रूस के और पूरी दुनिया के भावी विकास के लिए अत्यधिक महत्व होगा। कोई दूसरी चीज़ विश्व के सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी उत्साह को उतना नहीं बढ़ायेगी, कोई भी दूसरी चीज़ उसकी पूर्ण विजय की मंज़िल तक ले जानेवाले मार्ग को उतना छोटा नहीं बनायेगी, जितना कि रूस में आरंभ हुई क्रांति की यह निर्णायक विजय।

यह दूसरा सवाल है कि ऐसी विजय कहां तक संभव है। इस विषय में हममें नामुनासिब आशावादी होने का रुझान बिलकुल नहीं है, हम इस कार्यभार की घोर कठिनाई को हरगिज़ नहीं भूलते, परंतु चूंकि हमने लड़ने के लिए कमर कस ली है, इसलिए हमें विजय की इच्छा रखनी चाहिए और उसका सही रास्ता बताने में समर्थ होना चाहिए। इस विजय का मार्ग प्रशस्त करनेवाली प्रवृत्तियां निर्विवाद रूप से मौजूद हैं। यह सच है कि सर्वहारा अवाम पर हमारा सामाजिक-जनवादी प्रभाव अभी तक बहुत अपर्याप्त है; किसान अवाम पर क्रांतिकारी प्रभाव बिलकुल नगण्य है; सर्वहारा वर्ग और विशेष रूप से किसान समुदाय अभी तक हद से ज़्यादा बिखरे हुए, पिछड़े हुए तथा अज्ञानग्रस्त हैं। परंतु क्रांति बहुत जल्दी एकताबद्ध करती है, बहुत जल्दी प्रबुद्ध बनाती है। उसकी प्रगति का हर क़दम अवाम को जगाता रहता है और अदम्य शक्ति से उन्हें क्रांतिकारी कार्यक्रम की ओर आकर्षित करता है, जो उनके वास्तविक तथा बुनियादी हितों की पूरी तरह तथा सुसंगत रूप से अभिव्यक्ति करनेवाला एकमात्र कार्यक्रम होता है।

यांत्रिकी के नियम के अनुसार क्रिया प्रतिक्रिया के बराबर ही होती है। इतिहास में भी क्रांति की विनाशकारी शक्ति काफ़ी हद तक इस बात पर निर्भर होती है कि मुक्ति की चेष्टा को कितनी सख़्ती के साथ और कितने लंबे समय तक दबाकर रखा गया है और बाबा आदम के ज़माने के "ऊपरी ढांचे" और वर्तमान युग की सप्राण शक्तियों की पारस्परिक विसंगति कितनी गहरी है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति भी कई मामलों में ऐसा रूप धारण कर रही है, जो रूसी क्रांति के लिए अत्यंत लाभदायक है। मज़दूरों तथा किसानों का विद्रोह आरंभ हो चुका है, वह अभी छिट-फुट, स्वतःस्फूर्त तथा कमज़ोर है, पर उससे असंदिग्ध तथा अकाट्य रूप से ऐसी

शक्तियों का अस्तित्व सिद्ध होता है, जो निर्णायक संघर्ष चलाने की क्षमता रखती हैं और निर्णायक विजय की ओर बढ़ती हैं।

यदि ये शक्तियां अपर्याप्त सिद्ध हुईं, तो ज़ारशाही को उस सौदे को पक्का कर लेने का मौक़ा मिल जायेगा, जिसकी इस समय दो तरफ़ से तैयारी की जा रही है, एक तरफ़, बुलीगिन जैसे लोगों द्वारा और, दूसरी तरफ़, स्त्रूवे जैसे लोगों द्वारा। तब यह सारा मामला एक दुमकटे संविधान के रूप में, या यदि बदतरीन बात हुई, तो संविधान की पैरोडी के रूप में समाप्त हो जायेगा। वह भी "बुर्जुआ क्रांति" होगी, पर गर्भच्युत, अकाल प्रसवित दोग़ली होगी। सामाजिक-जनवाद को इस विषय में कोई भ्रम नहीं है, वह बुर्जुआ वर्ग के विश्वासघातक स्वरूप को जानता है, वह बुर्जुआ-सांविधानिक "शीपोव मार्का" परमानंद के अत्यंत नीरस तथा वैविध्य हीन दिनों में भी उत्साहशून्य नहीं होगा और न सर्वहारा वर्ग को दृढ़-तापूर्वक, धैर्यपूर्वक तथा जमकर वर्ग प्रशिक्षण देने का अपना काम ही त्यागेगा। इस प्रकार का परिणाम १९वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में होनेवाली लगभग सभी जनवादी क्रांतियों के परिणाम के कमोबेश समान ही होगा और तब हमारी पार्टी का विकास कठिन, दुर्गम, लंबे, मगर जाने और आज़माये हुए रास्ते से होगा।

अब सवाल यह है कि इन दो संभव परिणामों में से किसमें सामाजिक-जनवाद असंगत तथा स्वार्थी बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ लड़ाई में अपने हाथ वास्तव में बंधे हुए पायेगा, अपने आपको बुर्जुआ जनवाद में सचमुच "विलीन" या लगभग विलीन पायेगा?

इस प्रश्न को यदि स्पष्ट रूप से पेश ही कर दिया जाये, तो उसका उत्तर पाने में एक क्षण के लिए भी कठिनाई नहीं होगी।

यदि बुर्जुआ वर्ग ज़ारशाही के साथ समझौता करके रूसी क्रांति को विफल करने में कामयाब हो जाता है, तो सामाजिक-जनवाद असंगत बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ लड़ाई में अपने हाथ वास्तव में बंधे हुए पायेगा, सामाजिक-जनवाद अपने आपको इस अर्थ में बुर्जुआ जनवाद में "विलीन" पायेगा कि सर्वहारा वर्ग क्रांति पर अपनी स्पष्ट छाप डालने में सफल नहीं हो पायेगा, वह सर्वहारा ढंग से या, जैसा कि मार्क्स ने कभी कहा था, "निम्न-जनीय ढंग से" ज़ारशाही से छुटकारा पाने में सफल नहीं होगा।

यदि क्रांति को निर्णायक विजय प्राप्त होती है, तो हम जैकोबिनी ढंग से, या यदि आप कहना चाहें, तो निम्नजनीय ढंग से, ज़ारशाही के साथ हिसाब चुकता कर सकेंगे। मार्क्स ने १८४८ में प्रख्यात 'नया राइन समाचारपत्र' में लिखा था: "फ्रांस का सारा आतंकवाद बुर्जुआ वर्ग के शत्रुओं के साथ, निरंकुशता, सामंतशाही तथा दक़ियानूसी के साथ हिसाब चुकता करने के निम्नजनीय तरीक़े के अतिरिक्त और कुछ नहीं था" (देखें Marx, *Nachlass*, मेहरिंग संस्करण, खंड ३, पृ० २११)[59]। जो लोग जनवादी क्रांति के ज़माने में रूस के सामाजिक-जनवादी मज़दूरों को "जैकोबिनवाद" के हौए से डराने की कोशिश करते हैं, क्या उन्होंने मार्क्स के इन शब्दों के अर्थ पर कभी विचार किया है?

आधुनिक रूसी सामाजिक-जनवाद का जिरौंद दल[60], अर्थात नव 'ईस्क्रा'-पंथी 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों में विलीन तो नहीं होते, पर वास्तव में वे अपने नारों के चरित्र के कारण उनके पीछे-पीछे चलते हैं। और 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी, अर्थात उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधि, एकतंत्र के साथ नरमी से, सुधारवादी ढंग से, झुककर हिसाब चुकता करना चाहते हैं, ताकि रईसों की, दरबारियों की, राजदरबार की भावनाओं को ठेस न पहुंचे – बड़ी सावधानी से, बिना किसी चीज़ को तोड़े – मृदुतापूर्वक तथा सफ़ेद दस्ताने (वैसे ही, जैसे ख़ूनी निकोलाई द्वारा "जनता के प्रतिनिधियों" (?) के सम्मान में दिये गये भोज[61] के अवसर पर पहनने के लिए श्री पेत्रुन्केविच ने एक बाशीबुज़ूक[62] से मांग लिये थे। देखें 'प्रोलेतारी', अंक ५*) पहने हुए श्रीमंतों के अंदाज़ में।

आधुनिक सामाजिक-जनवाद के जैकोबिन – बोल्शेविक, 'व्पेर्योद'-पंथी, कांग्रेसवाले या 'प्रोलेतारी'-पंथी – [63] मुझे पता नहीं उन्हें क्या नाम दूं – अपने नारों द्वारा क्रांतिकारी तथा जनतंत्रवादी टुटपुंजिया वर्ग और विशेष रूप से किसानों को ऊंचा उठाकर सर्वहारा वर्ग की सुसंगत जनवादिता के स्तर तक पहुंचा देना चाहते हैं, जो एक वर्ग की हैसियत से अपने निजी पार्थक्य को पूरी तरह सुरक्षित रखता है। वे चाहते हैं कि जनता, अर्थात सर्वहारा वर्ग तथा किसान राजतंत्र और अभिजातों के साथ "निम्न-

*व्ला० ई० लेनिन, 'सफ़ेद दस्ताने पहने "क्रांतिकारी"'। – सं०

जनीय ढंग से" हिसाब चुकता कर लें, ग्राज़ादी के शत्रुग्रों को निर्ममतापूर्वक नष्ट कर दें, उनके प्रतिरोध को बलपूर्वक कुचल दें, भूदासता की, एशियाई बर्बरता की तथा मानव के ऊपर ग्रत्याचार की लानतभरी विरासत को कोई भी रिग्रायत न दें।

इसका यह मतलब बेशक नहीं है कि हम १७९३ के जैकोबिनों की नक़ल करने का ज़रूर इरादा रखते हैं, उनके विचारों को, उनके कार्यक्रम को, उनके नारों को तथा उनकी कार्य-पद्धति को ग्रपनाना चाहते हैं। ऐसी कोई बात नहीं है। हमारा कार्यक्रम पुराना नहीं, बल्कि नया है— वह रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का न्यूनतम कार्यक्रम है। हमारा नया नारा है: सर्वहारा वर्ग तथा किसानों का क्रांतिकारी जनवादी ग्रधिनायकत्व। यदि हम क्रांति की वास्तविक विजय तक जीवित रह गये, तो पूर्ण समाजवादी क्रांति के लिए प्रयत्नशील मज़दूर वर्ग की पार्टी के चरित्र तथा उद्देश्यों के ग्रनुकूल हमारे पास नयी कार्य-पद्धतियां भी होंगी। ग्रपनी इस तुलना द्वारा हम केवल यह समझाना चाहते हैं कि २०वीं शताब्दी के ग्रग्रगामी वर्ग के प्रतिनिधि, सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि, ग्रर्थात सामाजिक-जनवादी उसी प्रकार के दो पक्षों में विभाजित हैं (ग्रवसरवादी तथा क्रांतिकारी), जिस प्रकार के दो पक्षों में १८वीं शताब्दी के ग्रग्रगामी वर्ग, बुर्जुग्रा वर्ग के प्रतिनिधि विभाजित थे, ग्रर्थात जिरौंद दल ग्रौर जैकोबिन।

केवल जनवादी क्रांति की पूर्ण विजय की दशा में ही ग्रसंगत बुर्जुग्रा वर्ग के विरुद्ध संघर्ष में सर्वहारा वर्ग के हाथ बंधे नहीं रहेंगे, केवल उसी दशा में वह बुर्जुग्रा जनवाद में "विलीन" नहीं होगा, बल्कि पूरी क्रांति पर ग्रपनी सर्वहाराई, कहना चाहिए, सर्वहारा-किसानी वर्गीय छाप डालेगा।

सारांश यह कि यदि सर्वहारा वर्ग चाहता है कि ग्रसंगत बुर्जुग्रा जनवाद के विरुद्ध संघर्ष में उसके हाथ बंधे न रहें, तो उसमें पर्याप्त वर्ग चेतना होनी चाहिए ग्रौर उसे इतनी शक्तिशाली होना चाहिए कि वह किसानों में क्रांतिकारी ग्रात्मचेतना को ग्रौर ऊपर उठा सके, उनके ग्राक्रमण का निर्देशन कर सके ग्रौर इस प्रकार स्वतंत्र रूप से सुसंगत सर्वहारा जनवादिता पर ग्रमल कर सके।

तो यह रहा ग्रसंगत बुर्जुग्रा वर्ग के ख़िलाफ़ संघर्ष में हमारे हाथ बंध

जाने के ख़तरे का सवाल, जिसे नव 'ईस्क्रा'-पंथियों ने इतने बुरे ढंग से हल किया है। बुर्जुआ वर्ग हमेशा असंगत रहेगा। इससे बढ़कर भोलेपनभरी और बेकार चीज़ कोई दूसरी नहीं हो सकती कि ऐसी शर्तें और बातें पेश करने की कोशिशें की जायें*, जिनकी पूर्ति से हम यह समझने लगें कि बुर्जुआ जनवाद जनता का सच्चा मित्र होता है। केवल सर्वहारा वर्ग ही जनवादिता के लिए सुसंगत रूप से लड़ सकता है। और जनवादिता के लिए लड़ने में वह विजयी तभी हो सकता है, जब किसान समुदाय उसके क्रांतिकारी संघर्ष में शामिल हो जाये। यदि सर्वहारा वर्ग में इसके लिए काफ़ी शक्ति नहीं होगी, तो बुर्जुआ वर्ग जनवादी क्रांति का अगुआ बन जायेगा और उसे असंगत तथा स्वार्थी स्वरूप प्रदान कर देगा। सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व के सिवा और कोई चीज़ इस बात को रोक नहीं सकती।

इस प्रकार, हम इस असंदिग्ध नतीजे पर पहुंचते हैं कि नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की कार्यनीति ही अपने वस्तुपरक महत्व के कारण **बुर्जुआ जनवादियों के हाथों में खेल रही है**। जनमत-संग्रहों की हद तक, समझौता-परस्ती की हद तक, पार्टी से पार्टी साहित्य की विच्छिन्नता की हद तक संगठनात्मक धुंधलेपन का प्रचार, सशस्त्र विद्रोह के कार्यभार की उपेक्षा, राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग के नारों के साथ क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग के लोकप्रिय राजनीतिक नारों का घाल-मेल, "ज़ारशाही पर क्रांति की निर्णायक विजय" की शर्तों की विकृति – ये सारी बातें मिलकर क्रांतिकारी काल में दुमछल्लेपन की वही नीति प्रस्तुत करती हैं, जो विजय का एकमात्र रास्ता बताने के बजाय और जनता के सभी क्रांतिकारी तथा जनतंत्रवादी तत्वों को सर्वहारा वर्ग के नारे के गिर्द एकत्रित करने के बजाय सर्वहारा वर्ग को हक्का-बक्का कर देती है, असंगठित कर देती है, उसकी समझ में उलझाव पैदा कर देती है और सामाजिक-जनवाद की कार्यनीति के महत्व को घटा देती है।

---

* जिसकी कोशिश स्तारोवेर ने अपने प्रस्ताव में की थी, जिसे तीसरी कांग्रेस ने रद्द कर दिया था[64], और जिसकी कोशिश उतनी ही बुरे प्रस्ताव में सम्मेलन ने की है।

प्रस्ताव के विश्लेषण द्वारा हम यहां जिस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं, उसकी पुष्टि करने के लिए इस प्रश्न पर दूसरे पहलुओं से विचार करें। आइये, पहले, यह देखें कि एक सीधे-सादे और स्पष्टवादी मेंशेविक जार्जियाई 'सोत्सिआल-देमोक्रात' में नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की कार्यनीति को किस तरह ठोस उदाहरणों से समझाते हैं। दूसरे, इस बात को देखें कि वर्तमान राजनीतिक स्थिति में नव 'ईस्क्रा' के नारों का उपयोग वास्तव में कौन कर रहा है।

७. "रूढ़िवादियों को सरकार से अलग करने" की कार्यनीति

तिफ़लिस की मेंशेविक "समिति" के मुखपत्र ('सोत्सिआल-देमोक्रात', अंक १) के जिस लेख का हमने अभी ऊपर ज़िक्र किया, उसका शीर्षक है 'ज़ेम्स्की सोबोर तथा हमारी कार्यनीति'। इसके लेखक अभी तक हमारे कार्यक्रम को पूरी तरह नहीं भूले हैं। वह जनतंत्र का नारा पेश करते हैं, पर कार्यनीति पर वह इस ढंग से तर्क करते हैं:

"इस लक्ष्य को (जनतंत्र को) हासिल करने के दो रास्ते बताये जा सकते हैं: या तो सरकार द्वारा बुलाये जानेवाले ज़ेम्स्की सोबोर की ओर हम बिलकुल ध्यान ही न दें और शस्त्रों के बल पर सरकार को हरा दें, क्रांतिकारी सरकार बना लें और संविधान सभा बुलायें। या ज़ेम्स्की सोबोर को हम अपनी सरगर्मी का केंद्र घोषित करें, शस्त्रों के बल पर उसके गठन और सरगर्मियों पर प्रभाव डालें और उसे बलपूर्वक इस बात के लिए मजबूर कर दें कि वह अपने को संविधान सभा घोषित कर दे या उसके ज़रिये संविधान सभा बुलाये। ये दो कार्यनीतियां एक-दूसरी से बहुत भिन्न हैं। आइये, देखें कि इन दोनों में से कौन हमारे लिए अधिक लाभकर है।"

हमने जिस प्रस्ताव का विश्लेषण किया है, उसमें शामिल कर लिये गये विचारों को रूस के नव 'ईस्क्रा'-पंथी इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं।

ध्यान रहे कि यह बात त्सुसीमा की लड़ाई[65] से पहले लिखी गयी थी, जब अभी बुलीगिन "योजना"[66] प्रकाश में नहीं आयी थी। उदारतावादियों तक का धीरज टूटने लगा था और वे क़ानूनी अख़बारों के पृष्ठों में अपना अविश्वास प्रकट करने लगे थे, परंतु एक नव 'ईस्क्रा'-पंथी सामाजिक-जनवादी उदारतावादियों से अधिक विश्वासी साबित हुए। वह घोषणा करते हैं कि ज़ेम्स्की सोबोर "बुलाया जा रहा है" और उन्हें ज़ार पर इतना विश्वास है कि वह इस अविद्यमान ज़ेम्स्की सोबोर (या संभवतः "राज्य दूमा"[67], या "परामर्शदात्री सोबोर"?) को हमारी सरगर्मियों का केंद्र घोषित कर देने का सुझाव रखते हैं। सम्मेलन में स्वीकार किये गये प्रस्ताव को तैयार करनेवालों की अपेक्षा अधिक स्पष्टवादी और निष्कपट होने के कारण हमारे तिफ़लिसवासी उन दो "कार्यनीतियों" को (जिनका निरूपण वह बेमिसाल भोलेपन के साथ करते हैं) बराबरी पर नहीं रखते और घोषणा कर देते हैं कि दूसरी अधिक "लाभकर" है। ज़रा सुनिये :

"पहली कार्यनीति। जैसा कि आप जानते हैं, आगामी क्रांति एक बुर्जुआ क्रांति है, अर्थात उसका प्रयोजन वर्तमान व्यवस्था में ऐसे परिवर्तन करना है, जिनमें केवल सर्वहारा वर्ग की ही नहीं, बल्कि पूरे बुर्जुआ समाज की दिलचस्पी है। सभी वर्ग, स्वयं पूंजीपति भी सरकार के ख़िलाफ़ हैं। जुझारू सर्वहारा वर्ग और जुझारू बुर्जुआ वर्ग कुछ अर्थों में क़दम से क़दम मिलाकर चल रहे हैं और अलग-अलग दिशाओं से एकतंत्र पर मिलकर प्रहार कर रहे हैं। सरकार बिलकुल अकेली पड़ गयी है और उसे समाज की सहानुभूति प्राप्त नहीं। इसलिए उसे नष्ट करना बहुत आसान है। रूसी सर्वहारा वर्ग समग्रतः अभी तक इतना काफ़ी वर्ग-चेतन और संगठित नहीं है कि वह अकेले ही क्रांति कर सके। और यदि वह कर भी सकता, तो वह बुर्जुआ क्रांति नहीं, बल्कि सर्वहारा (समाजवादी) क्रांति करता। इसलिए यह बात हमारे हित में है कि सरकार का कोई मित्र न रहे, कि वह विरोध-पक्ष की एकता को भंग करने में असमर्थ रहे, कि वह बुर्जुआ वर्ग को अपनी तरफ़ मिलाकर सर्वहारा वर्ग को बिलकुल अकेला कर देने में सफल न होने पाये ..."

इस प्रकार, यह बात सर्वहारा वर्ग के हित में है कि ज़ारशाही सरकार बुर्जुआ वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग को एक-दूसरे से अलग न करने पाये!

कहीं इस जार्जियाई मुखपत्र का नाम 'ओस्वोबोज्देनिये' के बजाय 'सोत्सि-आल-देमोक्रात' ग़लती से तो नहीं रख दिया गया है? ज़रा जनवादी क्रांति के बारे में उसके अनुपम दार्शनिक विचारों पर ध्यान दीजिये! क्या स्पष्ट नहीं है कि यह बेचारे तिफ़लिसवासी "बुर्जुआ क्रांति" की अवधारणा की तार्किक पुछल्लावादी व्याख्या के कारण बुरी तरह उलझ गये हैं? वह जनवादी क्रांति में सर्वहारा वर्ग के अलग पड़ जाने की संभावना के सवाल पर तो बहस करते हैं, पर एक छोटी-सी बात के बारे में... किसानों के बारे में... **भूल जाते हैं**! सर्वहारा वर्ग के संभव मित्रों में वह ज़ेम्स्त्वोवाले ज़मींदारों को तो जानते हैं और उनके पक्ष में हैं, पर किसानों के बारे में नहीं जानते। और सो भी काकेशिया में! फिर क्या हमने सही नहीं कहा था कि तर्क करने के अपने तरीक़े के कारण नव 'ईस्क्रा' क्रांतिकारी किसानों को ऊंचा उठाकर अपने मित्र के स्तर पर ले आने के बजाय ख़ुद गिरकर राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग के स्तर पर पहुंचता जा रहा है?

"...अन्यथा सर्वहारा वर्ग की पराजय और सरकार की विजय अवश्यंभावी हैं। एकतंत्र शासन इसी बात की कोशिश कर रहा है। वह अपने ज़ेम्स्की सोबोर में निःसंदेह अभिजात वर्ग, ज़ेम्स्त्वो, नगर-पालिकाओं, विश्वविद्यालयों तथा इसी प्रकार की अन्य बुर्जुआ संस्थाओं के प्रतिनिधियों को अपनी ओर आकर्षित करेगा। वह छोटी-छोटी रिआयतें देकर उन्हें संतुष्ट करने और इस तरह अपने साथ मेल-मिलाप कर लेने की कोशिश करेगा। इस प्रकार शक्तिशाली होकर वह अकेली रह जानेवाली मज़दूर जनता को अपने सारे प्रहारों का लक्ष्य बनायेगा। ऐसे दुर्भाग्यपूर्ण नतीजे को रोकना हमारा कर्त्तव्य है। लेकिन क्या इस काम को पहले तरीक़े से किया जा सकता है? मान लीजिये कि हम ज़ेम्स्की सोबोर की ओर कोई ध्यान नहीं देते, बल्कि स्वयं विद्रोह की तैयारियां आरंभ कर देते हैं और एक दिन इस लड़ाई के लिए सशस्त्र होकर सड़कों पर निकल आते हैं। नतीजा यह होगा कि हमारा मुक़ाबला एक नहीं, बल्कि दो शत्रुओं से होगा : सरकार से और ज़ेम्स्की सोबोर से। जब तक हम तैयारियां करते रहेंगे, तब तक वे सौदा तय कर चुके होंगे, आपस में समझौता कर चुके होंगे, अपने लिए सुविधाजनक संविधान तैयार कर चुके होंगे और सत्ता आपस में बांट चुके होंगे। यह कार्यनीति सीधे-सीधे सरकार के हित में है और हमें उसे पूरे ज़ोर के साथ ठुकरा देना चाहिए..."

यहां बिलकुल साफ़ ढंग से बात कही गयी है! हमें विद्रोह की तैयारी करने की "कार्यनीति" को दृढ़तापूर्वक ठुकरा देना चाहिए, क्योंकि "जब तक हम तैयारियां करते रहेंगे", तब तक सरकार बुर्जुआ वर्ग के साथ समझौता कर लेगी! क्या घोरतम कट्टर अर्थवाद के पुराने साहित्य तक में कोई ऐसी चीज़ मिल सकती है, जो क्रांतिकारी सामाजिक-जनवाद के इस कलंक के निकट भी पहुंचती हो? यह सच है कि कभी यहां और कभी वहां मज़दूरों तथा किसानों के विद्रोह और विस्फोट हो रहे हैं। ज़ेम्स्की सोबोर महज़ बुलीगिन का वायदा है। और तिफ़लिस नगर का 'सोत्सिआल-देमोक्रात' फ़ैसला करता है: विद्रोह की तैयारी करने की कार्यनीति को ठुकरा दिया जाये और एक "प्रभाव-केंद्र" की, ज़ेम्स्की सोबोर की प्रतीक्षा की जाये...

"...इसके विपरीत दूसरी कार्यनीति यह है कि ज़ेम्स्की सोबोर को हमारे नियंत्रण में रख दिया जाये, उसे अपनी इच्छा के अनुसार काम करने और सरकार के साथ समझौता करने का मौक़ा न दिया जाये*।

"हम ज़ेम्स्की सोबोर का उसी हद तक समर्थन करते हैं, जहां तक वह एकतंत्र शासन के ख़िलाफ़ लड़ता है, और जब वह एकतंत्र के साथ मेल कर लेता है, तब हम उसके ख़िलाफ़ लड़ते हैं। ज़ोरदार हस्तक्षेप करके और बल का प्रयोग करके हम प्रतिनिधियों में फूट डाल देंगे**, आमूलवादियों को अपनी तरफ़ मिला लेंगे, रूढ़िवादियों को सरकार से अलग करेंगे और इस प्रकार पूरे ज़ेम्स्की सोबोर को क्रांति के पथ पर लगा देंगे। ऐसी कार्यनीति की बदौलत सरकार हमेशा अलगाव में रहेगी,

---

*किन साधनों से ज़ेम्स्त्वोवालों को उनकी इच्छा-शक्ति से वंचित किया जा सकता है? शायद कोई ख़ास क़िस्म का लिटमस काग़ज़ इस्तेमाल करके?

**हे भगवान! यह तो कार्यनीति को सचमुच ही "गूढ़" बना देना है! सड़कों पर लड़ने के लिए तो शक्तियां उपलब्ध नहीं हैं, पर "बल का प्रयोग करके" "प्रतिनिधियों में फूट डाल देना" संभव है। तिफ़लिसी कामरेड, सुनिये, बेशक यदि आपको झूठ ही बोलना है, तो ज़रूर झूठ बोलिये, पर उसकी भी एक सीमा होनी चाहिए...

विरोध-पक्ष मज़बूत रहेगा ग्रौर इस तरह जनवादी व्यवस्था की स्थापना में सुविधा हो जायेगी।"

जी हां! जी हां! ग्रब यदि कोई चाहे, तो उसे कहने दीजिये कि हम यह कहकर ग्रतिशयोक्ति से काम लेते हैं कि नव 'ईस्क्रा'-पंथी बहुत भोंडी क़िस्म के ग्रर्थवाद की दिशा में मुड़ गये हैं। यह तो सीधे-सीधे उस प्रख्यात मक्खीमार पाउडर जैसी बात है : मक्खी को पकड़ो, उस पर पाउडर छिड़क दो ग्रौर मक्खी मर जायेगी। **बल का प्रयोग करके** ज़ेम्स्की सोबोर के प्रतिनिधियों में फूट डाल दो, "रूढ़िवादियों को सरकार से ग्रलग करो" ग्रौर **पूरा** ज़ेम्स्की सोबोर **क्रांति के पथ पर** ग्रा जायेगा... किसी भी "जैकोबिनी" सशस्त्र विद्रोह के बिना, बल्कि यों ही, बहुत ही शरीफ़ाना, लगभग संसदीय ढंग से, **ज़ेम्स्की सोबोर के सदस्यों को** "प्रभावित करके"।

बेचारा रूस! उसके बारे में कहा गया है कि वह हमेशा यूरोप द्वारा त्याग दी गयी पुरानी चाल की टोपियां पहनता है। हमारे यहां ग्रभी तक संसद नहीं है, बुलीगिन तक ने ग्रभी उसका वायदा नहीं किया है, परंतु हमारे यहां संसदीय जड़वामनता[68] की कोई कमी नहीं है।

"...यह हस्तक्षेप किस प्रकार किया जाये? सबसे पहले तो हम यह मांग करेंगे कि ज़ेम्स्की सोबोर को सार्विक, समान तथा प्रत्यक्ष मताधिकार ग्रौर गुप्त मतदान के ग्राधार पर बुलाया जाये। चुनाव की इस क्रियाविधि की घोषणा* के साथ ही साथ यह क़ानून बना दिया जाये** कि चुनावपूर्व प्रचार की पूरी ग्राज़ादी हो, ग्रर्थात सभाएं करने की, भाषण देने की ग्रौर ग्रख़बारों की ग्राजादी हो, मतदाताग्रों तथा उम्मीदवारों को क़ानूनी संरक्षण दिया जाये ग्रौर सारे राजनीतिक क़ैदी रिहा कर दिये जायें। चुनाव की तारीख़ यथासंभव ग्रागे बढ़ाकर रखी जाये, ताकि |हमें जनता| को सूचना देने तथा उसे तैयार करने का काफ़ी समय मिल जाये। ग्रौर चूंकि सोबोर को बुलाने के नियमों को तैयार करने का काम गृहमंत्री बुलीगिन के नेतृत्व

---

*'ईस्क्रा' में?

** निकोलाई द्वारा?

में एक ग्रायोग को सौंप दिया गया है, इसलिए हमें इस ग्रायोग पर तथा उसके सदस्यों पर प्रभाव भी डालना चाहिए*। यदि बुलीगिन ग्रायोग हमारी मांगों को पूरा करने से इनकार करता है** ग्रौर केवल मिल्कियत-वालों को मताधिकार देता है, तो हमें इन चुनावों में हस्तक्षेप करना चाहिए ग्रौर क्रांतिकारी ढंग से मतदाताग्रों को प्रगतिशील उम्मीदवार चुनने पर मजबूर कर देना चाहिए ग्रौर ज़ेम्स्की सोबोर में संविधान सभा की मांग उठानी चाहिए। ग्रंतिम बात यह कि हमें हर संभव उपाय से – प्रदर्शनों, हड़तालों ग्रौर यदि ग्रावश्यक हो, तो विद्रोह द्वारा – ज़ेम्स्की सोबोर को मजबूर कर देना चाहिए कि वह संविधान सभा बुलाये या स्वयं ग्रपने को संविधान सभा घोषित कर दे। सशस्त्र सर्वहारा वर्ग को संविधान सभा का रक्षक होना चाहिए ग्रौर फिर दोनों एक साथ*** जनवादी जनतंत्र की ग्रोर ग्रागे बढ़ेंगे।

"यह है सामाजिक-जनवादी कार्यनीति ग्रौर केवल इसी से हमें विजय प्राप्त हो सकती है।"

पाठक यह न समझें कि यह ग्रविश्वसनीय बकवास किसी ग़ैर ज़िम्मेदार, बेग्रसर नव 'ईस्क्रा'-पंथी का दुधमुंहा लेखन-प्रयास मात्र है। नहीं, यह बात नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की एक पूरी समिति के, तिफ़लिस समिति के **मुखपत्र** में कही गयी है। इतना ही नहीं, इस बकवास का **'ईस्क्रा' ने खुले तौर से ग्रनुमोदन किया है**, जिसके १०० वें ग्रंक में हम 'सोत्सिग्राल-देमोक्रात' के उक्त ग्रंक के बारे में निम्नलिखित बात पढ़ते हैं।

"पहले ग्रंक का संपादन सप्राण तथा प्रतिभाशाली ढंग से किया गया है। इसमें एक योग्य संपादक तथा लेखक का ग्रनुभवी हाथ स्पष्ट

---

*तो "रूढ़िवादियों को सरकार से ग्रलग करने" की कार्यनीति का यह मतलब है!

**लेकिन यदि हम इस सही ग्रौर गूढ़ कार्यनीति का ग्रनुसरण करें, तो ऐसा हो ही कैसे सकता है!

***सशस्त्र सर्वहारा वर्ग ग्रौर "सरकार से ग्रलग कर दिये गये" रूढ़िवादी, दोनों?

दिखाई देता है... यह बात पूरे विश्वास के साथ कही जा सकती है कि इस अख़बार ने अपने सामने जो कार्यभार रखा है, उसे वह शानदार ढंग से पूरा करेगा।"

जी हां, यदि वह कार्यभार सभी को और हर किसी को नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के घोर वैचारिक क्षय को स्पष्ट रूप से दिखाना हो, तब तो उसे सचमुच "शानदार ढंग से" पूरा कर लिया गया है। नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की उदारतावादी-बुर्जुआ अवसरवाद के स्तर पर गिरावट को कोई भी इतने "सप्राण, प्रतिभाशाली तथा योग्य" ढंग से व्यक्त नहीं कर सकता था।

८. 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथ और नव 'ईस्क्रा'-पंथ

आइये, अब नव 'ईस्क्रा'-पंथ के राजनीतिक महत्व की एक दूसरी ज्वलंत पुष्टि की ओर ध्यान दें।

एक बहुत ही बढ़िया, उल्लेखनीय तथा शिक्षाप्रद लेख में, जिसका शीर्षक है 'अपने आपको कैसे ढूंढ़ा जाये' ('ओस्वोबोज्देनिये', अंक ७१), श्री स्त्रूवे ने हमारी अतिवादी पार्टियों की "कार्यक्रम संबंधी क्रांतिकारिता" के ख़िलाफ़ युद्ध छेड़ दिया है। श्री स्त्रूवे मुझ से हीं विशेष रूप से नाराज़ हैं*। जहां तक मेरा संबंध है, मैं श्री स्त्रूवे से जितना ख़ुश हूं, इससे ज़्यादा ख़ुश होना असंभव है: नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के फिर से उभरते हुए अर्थवाद और "समाजवादी-क्रांतिकारियों" द्वारा प्रदर्शित घोर बेउसूली के ख़िलाफ़ लड़ाई में मैं किसी बेहतर संगी-साथी की इच्छा नहीं कर सकता

---

*"श्री लेनिन और उनके साथियों की क्रांतिकारिता की तुलना में बेबेल और यहां तक कि काउत्स्की के पश्चिम यूरोपीय सामाजिक-जनवाद की क्रांतिकारिता अवसरवाद है, परंतु इस अभी ही नरम हो चुकी क्रांतिकारिता की भी बुनियादें इतिहास की धारा में ध्वस्त हो चुकी और बह चुकी हैं।'" बहुत ही क्रोधपूर्ण प्रहार। लेकिन श्री स्त्रूवे का यह सोचना ग़लत है कि वह मेरे ऊपर जो भी चीज़ चाहें, लाद सकते हैं, जैसे मैं मर गया हूं। मेरे लिए बस इतना ही काफ़ी है कि मैं श्री स्त्रूवे को एक

था। किसी दूसरे मौक़े पर हम बतायेंगे कि श्री स्त्रूवे और 'ओस्वोबोज्देनिये' ने व्यवहार में यह कैसे सिद्ध कर दिया है कि समाजवादी-क्रांतिकारियों के प्रस्तावित कार्यक्रम में मार्क्सवाद में जो "संशोधन" किये गये हैं, वे कितने घोर प्रतिक्रियावादी हैं। हम कई बार कह चुके हैं और एक बार फिर कहेंगे कि श्री स्त्रूवे ने जब भी नव 'ईस्क्रा'-पंथियों का **उसूली तौर से** अनुमोदन किया है, तब उन्होंने ईमानदारी तथा वफ़ादारी के साथ मेरी सच्ची सेवा की है*।

चुनौती दे दूं, जिसे वह कभी स्वीकार नहीं कर सकेंगे। मैंने "बेबेल और काउत्स्की की क्रांतिकारिता" को कब और कहां अवसरवाद कहा है? मैंने इस बात का दावा कब और कहां किया है कि मैंने अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद में किसी ऐसी विशेष धारा को जन्म दिया है, जो बेबेल तथा काउत्स्की की धारा के **समरूप नहीं** है? बेबेल तथा काउत्स्की के साथ कब और कहां मेरे मतभेद सामने आये हैं – ऐसे मतभेद, जो गंभीरता में, उदाहरण के लिए, उन मतभेदों के कहीं निकट भी पहुंचते हों, जो ब्रेसलाऊ में कृषि समस्या के बारे में बेबेल और काउत्स्की के बीच पैदा हो गये थे[69]? श्री स्त्रूवे इन तीन प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश करें।

अपने पाठकों से हम कहते हैं: उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग **हर जगह** और **हमेशा** इस तरीक़े का सहारा लेता है कि वह किसी ख़ास देश में अपने हमख़यालों को विश्वास दिलाता है कि उस देश के सामाजिक-जनवादी बहुत नासमझ हैं, लेकिन पड़ोसी राज्य में उनके साथी "अच्छे बच्चे" हैं। जर्मन बुर्जुआ वर्ग ने **सैकड़ों बार** बेबेल तथा काउत्स्की जैसे लोगों के सामने फ़्रांसीसी समाजवादियों को "अच्छे बच्चों" के रूप में पेश किया है। फ़्रांसीसी बुर्जुआ वर्ग ने अभी हाल में ही "अच्छे बच्चे" बेबेल को फ़्रांसीसी समाजवादियों के सामने आदर्श बनाकर पेश किया था। स्त्रूवे महोदय, यह बहुत पुराना हथकंडा है! आप देखेंगे कि केवल बच्चे और बिलकुल नादान लोग ही इस चरके में आयेंगे। कार्यक्रम तथा कार्यनीति के सभी मुख्य-मुख्य प्रश्नों पर अंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी सामाजिक-जनवाद का पूर्ण मतैक्य एक सर्वथा अकाट्य तथ्य है।

*हम पाठकों को याद दिलायें कि 'ओस्वोबोज्देनिये' ने 'क्या नहीं किया जाना चाहिए' शीर्षक लेख ('ईस्क्रा', अंक ५२) का अवसरवादियों के साथ रिआयत की दिशा में एक "उल्लेखनीय मोड़" के रूप में बहुत

श्री स्त्रूवे के लेख में कई बहुत ही दिलचस्प बातें हैं, जिनका हम यहां केवल सरसरी तौर से ही उल्लेख कर सकते हैं। वह "वर्ग संघर्ष का नहीं, बल्कि वर्ग सहयोग का सहारा लेकर रूसी जनवाद की रचना करने" का इरादा रखते हैं, और इस दशा में "सामाजिक दृष्टि से विशेषाधिकार-प्राप्त बुद्धिजीवी वर्ग" ("सुसंस्कृत अभिजात वर्ग" जैसा, जिसके आगे श्री स्त्रूवे असली उच्च कोटि के... चाकर की नफ़ासत के साथ शीश नवाते हैं) इस "ग़ैर वर्गीय" पार्टी को "अपनी सामाजिक स्थिति का बल" (अपनी थैली का बल) प्रदान करेगा। श्री स्त्रूवे नवयुवकों को "इस घिसे-पिटे आमूलवादी मत" के निकम्मेपन से परिचित कराने की आकांक्षा प्रकट करते हैं कि "बुर्जुआ वर्ग भयभीत हो गया है और उसने सर्वहारा वर्ग तथा आज़ादी के ध्येय के साथ विश्वासघात किया है" (हम इस आकांक्षा का हार्दिक स्वागत करते हैं। कोई दूसरी चीज़ इस "घिसे-पिटे" मार्क्सवादी "मत" के औचित्य की इतने अच्छे ढंग से पुष्टि नहीं कर सकती, जितनी कि यह बात कि श्री स्त्रूवे उसके ख़िलाफ़ युद्ध छेड़ दें। श्री स्त्रूवे, कृपया अपनी इस शानदार योजना को स्थगित न कीजिये!)।

हमारे विषय के लिए यह ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि रूसी बुर्जुआ

ज़ोर-शोर से अभिवादन किया था। 'ओस्वोबोज्देनिये' ने रूसी सामाजिक-जनवादियों की फूट के बारे में एक लेख में नव 'ईस्क्रा'-पंथ की उसूली प्रवृत्तियों को विशेष रूप से सराहा था। त्रोत्स्की की 'हमारे राजनीतिक कार्यभार' नामक पुस्तिका पर टीका करते हुए 'ओस्वोबोज्देनिये' ने इस लेखक के विचारों और 'राबोचेये देलो'-पंथियों, क्रिचेव्स्की, मार्तीनोव, अकीमोव द्वारा एक ज़माने में लिखी तथा कही गयी बातों में समानता की ओर इशारा किया था (देखें 'व्पेर्योद' द्वारा प्रकाशित परचा 'एक अनुग्रहशील उदारतावादी')। 'ओस्वोबोज्देनिये' ने दो अधिनायकत्वों के बारे में मार्तीनोव की पुस्तिका का स्वागत किया ('व्पेर्योद' के ६ वें अंक में लेख देखिये)। अंत में 'ओस्वोबोज्देनिये' ने पुराने 'ईस्क्रा' के इस पुराने नारे के बारे में कि "पहले अंतर बतानेवाली रेखा खींचो और फिर एकता स्थापित करो" स्तारोवेर की देर से की गयी शिकायतों के प्रति विशेष सहानुभूति दिखायी।

वर्ग के राजनीतिक दृष्टि से इतने संवेदनशील, मौसम में ज़रा भी परिवर्तन से प्रभावित होनेवाले इस प्रतिनिधि ने कैसे **व्यावहारिक** नारों के ख़िलाफ़ इस समय लड़ाई छेड़ रखी है। सबसे पहले तो वह जनतंत्रवाद के नारे के ख़िलाफ़ लड़ रहे हैं। श्री स्त्रूवे का यह पक्का विश्वास है कि यह नारा "ग्राम जनता के लिए ग्रबोधगम्य ग्रौर बेगाना है" (वह इतना ग्रौर कहना भूल गये हैं कि वह बोधगम्य तो है, पर बुर्जुग्रा वर्ग के लिए लाभकर नहीं है!)। हम देखना चाहेंगे कि श्री स्त्रूवे को हमारी मंडलियों ग्रौर हमारी ग्राम सभाग्रों में मज़दूरों की तरफ़ से क्या जवाब मिलेगा! या मज़दूर शायद जनता नहीं हैं? ग्रौर किसान? श्री स्त्रूवे के कथनानुसार उनके यहां "भोला जनतंत्रवाद" ("ज़ार को निकाल बाहर करना") होता है, परंतु उदारतावादी बुर्जुग्रा वर्ग का यह विश्वास है कि भोले जनतंत्रवाद का स्थान प्रबुद्ध जनतंत्रवाद नहीं, बल्कि प्रबुद्ध राजतंत्रवाद लेगा! स्त्रूवे महोदय, ça dépend – यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यह न तो ज़ारशाही के लिए ग्रौर न बुर्जुग्रा वर्ग के लिए ही मुमकिन है कि वे बड़ी-बड़ी जागीरों की बलि देकर किसानों की दशा में बुनियादी सुधार का विरोध न करें ग्रौर मज़दूर वर्ग के लिए यह मुमकिन नहीं है कि वह इस मामले में किसानों की सहायता न करे।

दूसरे, श्री स्त्रूवे हमें विश्वास दिलाते हैं कि "गृहयुद्ध में जो पक्ष ग्राक्रमण करता है, वह हमेशा ग़लती पर होता है।" यह विचार नव 'ईस्क्रा'-पंथ की उपरोक्त प्रवृत्तियों की सीमा तक पहुंच जाता है। हम बेशक यह नहीं कहेंगे कि गृहयुद्ध में ग्राक्रमण करना **हमेशा** लाभदायक होता है; नहीं, कभी-कभी **कुछ समय के लिए** प्रतिरक्षात्मक कार्यनीति ग्रपनाना ग्रनिवार्य हो जाता है। परंतु श्री स्त्रूवे ने जैसी प्रस्थापना पेश की है, उसे १९०५ के रूस पर लागू करने का मतलब उसी "घिसे-पिटे ग्रामूलवादी मत" के एक ग्रंश को ("बुर्जुग्रा वर्ग भयभीत हो जाता है ग्रौर ग्राज़ादी के हेतु के साथ विश्वासघात करता है") प्रकट करना है। जो भी इस समय एकतंत्र ग्रौर प्रतिक्रियावाद पर ग्राक्रमण करने से इनकार करता है, जो भी इस प्रकार के ग्राक्रमण के लिए तैयारियां नहीं कर रहा है, जो भी उसका प्रचार नहीं कर रहा है, वह क्रांति के समर्थक का नाम व्यर्थ ही धारण करता है।

श्री स्त्रूवे "गोपनीयता" श्रौर "उपद्रव" (याने "छोटा-मोटा विद्रोह") के नारों की निंदा करते हैं। श्री स्त्रूवे दोनों ही की उपेक्षा करते हैं—"श्रवाम तक पहुंच" के दृष्टिकोण से! हम श्री स्त्रूवे से पूछना चाहेंगे कि क्या वह, उदाहरण के लिए, 'क्या करें?' में—जो उनके दृष्टिकोण से एक घोर क्रांतिकारी की रचना है—एक भी ऐसा टुकड़ा बता सकते हैं, जिसमें उपद्रव का प्रचार किया गया हो? जहां तक "गोपनीयता" का सवाल है, क्या उस पर, मिसाल के लिए, हममें श्रौर श्री स्त्रूवे में बहुत श्रंतर है? क्या हम दोनों ही ऐसे "ग़ैर क़ानूनी" श्रख़बारों में नहीं काम कर रहे हैं, जो "गोपनीय रूप से" रूस में पहुंचाये जा रहे हैं श्रौर जो या तो 'श्रोस्वोबोज्देनिये लीग' के, या रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के "गुप्त" दलों के काम श्राते हैं? हमारी मज़दूरों की श्राम सभाएं बहुधा "गोपनीय" होती हैं—यह गुनाह तो है। परंतु 'श्रोस्वोबोज्देनिये'-पंथी महोदयों की सभाश्रों के बारे में श्रापका क्या ख़याल है? स्त्रूवे महोदय, क्या श्रापके पास घृणित गोपनीयता के घृणित पक्षधरों के सामने डींग मारने का कोई कारण है?

सच है कि मज़दूरों को हथियार पहुंचाने के लिए ख़ास तौर से गोपनीयता की ज़रूरत होती है। इस सवाल पर श्री स्त्रूवे ने ज़्यादा सफ़ाई के साथ बात कही है। ज़रा सुनिये: "जहां तक तकनीकी श्रर्थ में सशस्त्र विद्रोह का, या क्रांति का सवाल है, केवल जनवादी कार्यक्रम का जनव्यापी प्रचार ही श्राम सशस्त्र विद्रोह के लिए सामाजिक-मानसिक परिस्थितियां उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार, सशस्त्र विद्रोह को वर्तमान मुक्ति संघर्ष की **श्रनिवार्य** परिणति माननेवाले दृष्टिकोण से भी—जिससे मैं सहमत नहीं हूं—श्रवाम को जनवादी सुधार के विचारों से श्रोत-प्रोत कर देना एक श्रत्यंत बुनियादी तथा श्रत्यंत श्रावश्यक कार्यभार है।"

श्री स्त्रूवे इस सवाल से कतराना चाहते हैं। वह क्रांति की विजय के लिए विद्रोह की श्रावश्यकता की बात करने के बजाय विद्रोह की श्रनिवार्यता की बात करते हैं। विद्रोह बिना किसी तैयारी के, स्वतःस्फूर्त ढंग से, छिट-फुट तौर से श्रारंभ हो चुका है। कोई भी क़सम खाकर यह नहीं कह सकता कि वह विकसित होकर जनता के पूर्ण तथा श्रखंड सशस्त्र

विद्रोह का रूप धारण कर लेगा, क्योंकि यह बात तो क्रांतिकारी शक्तियों की दशा पर (जिनका पता पूरी तरह संघर्ष के दौरान ही लगाया जा सकता है), सरकार और बुर्जुआ वर्ग के आचरण पर और अनेक दूसरी परिस्थितियों पर निर्भर करती है, जिनका सही-सही अनुमान लगाना असंभव है। किसी ठोस घटना के बिलकुल यक़ीनी होने के अर्थ में अनिवार्यता की बाबत श्री स्त्रूवे की तरह बात करने में कोई तुक नहीं है। यदि आप क्रांति के पक्षधर होना चाहते हैं, तो आपको जिस बात के बारे में बताना चाहिए, वह यह है कि क्या विद्रोह क्रांति की **विजय के लिए आवश्यक है**, क्या उसकी सक्रिय ढंग से उद्घोषणा करना, उसका प्रचार करना और उसके लिए फ़ौरन तथा ज़ोरदार ढंग से तैयारियां करना आवश्यक है। यह नामुमकिन है कि श्री स्त्रूवे इस अंतर को नहीं समझ सकते: उदाहरण के लिए, वह सार्विक मताधिकार की आवश्यकता के सवाल पर—जो किसी भी जनवादी के लिए निर्विवाद है—यह सवाल उठाकर पर्दा नहीं डालते कि वर्तमान क्रांति के दौरान उसकी प्राप्ति अनिवार्य है कि नहीं—जो एक विवादास्पद प्रश्न है और राजनीतिक कार्यकर्त्ता के लिए कोई तात्कालिक महत्व नहीं रखता। विद्रोह की आवश्यकता के प्रश्न से कतराकर श्री स्त्रूवे उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग की राजनीतिक स्थिति के गूढ़तम सारतत्व को व्यक्त कर देते हैं। पहली बात तो यह कि बुर्जुआ वर्ग एकतंत्र शासन को कुचलने के बजाय उसके साथ समझौता कर लेना कहीं ज़्यादा पसंद करता है; दूसरे, बुर्जुआ वर्ग सशस्त्र संघर्ष का काम हर हालत में मज़दूरों पर डाल देता है। श्री स्त्रूवे के कतराने का **असली** मतलब यही है। यही कारण है कि वह विद्रोह की आवश्यकता के प्रश्न से मुंह फेरकर उसकी "सामाजिक-मानसिक" परिस्थितियों के प्रश्न की ओर, प्राथमिक "प्रचार" के प्रश्न की ओर **रुख़ करते हैं**। ठीक उसी प्रकार, जैसे १८४८ की फ़्रैंकफ़ुर्ट संसद में कोरी बातें बघारनेवाले बुर्जुआ ऐसे समय प्रस्ताव, घोषणाएं और फ़ैसले लिखने में, "जनव्यापी प्रचार" में और "सामाजिक-मानसिक परिस्थितियां" तैयार करने में व्यस्त थे, जब सरकार की सशस्त्र सेनाओं को पीछे ढकेलने का सवाल था, जब आंदोलन सशस्त्र संघर्ष की "आवश्यकता पर पहुंच गया था", जब केवल ज़बानी समझाना-बुझाना (जो तैयारी के ज़माने में सौगुना आवश्यक होता

है) तुच्छ बुर्जुआ निष्क्रियता और कायरता बन गया था, ठीक उसी प्रकार श्री स्त्रूवे भी कुछ **फ़िक़रों** की आड़ लेकर विद्रोह के सवाल से कतराते हैं। श्री स्त्रूवे हमारे सामने बहुत स्पष्ट रूप से उस चीज़ को व्यक्त कर देते हैं, जिसे बहुत-से सामाजिक-जनवादी आग्रहपूर्वक नहीं देखते, अर्थात यह कि क्रांति का काल इतिहास के मामूली, रोज़मर्रा के, तैयारी के कालों से इस बात में भिन्न होता है कि अवाम के तेवर, उनकी उद्विग्नता और उनके दृढ़ विश्वास का **कार्रवाई** में प्रकट होना लाज़िमी होता है और वे प्रकट होते हैं।

बाज़ारू क्रांतिकारिता इस बात को नहीं समझती कि कथनी भी करनी होती है; इस प्रस्थापना को यदि **आम तौर से** पूरे इतिहास पर अथवा इतिहास के उन कालों पर भी लागू किया जाता है, जब अवाम की कोई खुली राजनीतिक हलचल नहीं होती और जब किसी भी प्रकार का उत्प्लव न तो उस हलचल का स्थान ले सकता है और न ही उसे कृत्रिम रूप से उकसा सकता है, तो वह अकाट्य सिद्ध होगी। पुछल्लावादी क्रांतिकारी इस बात को नहीं समझ पाते कि जब क्रांतिकारी काल आरंभ हो गया हो, जबकि पुराना "ऊपरी ढांचा" ऊपर से नीचे तक चिटक गया हो, जब अपने लिए नया ऊपरी ढांचा तैयार करने में संलग्न वर्गों तथा अवाम की खुली राजनीतिक हलचल एक वास्तविकता बन गयी हो, जब गृहयुद्ध छिड़ गया हो – तब अपने आपको **पुराने ज़माने की तरह** "कथनी" तक ही सीमित रखना और "करनी" के क्षेत्र में प्रवेश करने का **सीधा नारा** न देना, तब "मानसिक परिस्थितियों" और "प्रचार" की आम आवश्यकता का राग अलापते रहकर करनी से बचने की कोशिश करते रहना निर्जीवता, मृतावस्था है, दर्शन झाड़ना है या फिर क्रांति के साथ विश्वासघात और ग़द्दारी है। जनवादी बुर्जुआ वर्ग के फ़्रैंकफ़ुर्टवाले बातूनी ठीक इसी प्रकार के विश्वासघात, या इसी प्रकार की दर्शन झाड़नेवाली मूर्खता के स्मरणीय ऐतिहासिक उदाहरण हैं।

क्या आप रूस के सामाजिक-जनवादी आंदोलन के इतिहास के आधार पर बाज़ारू क्रांतिकारिता और क्रांतिकारियों के पुछल्लावाद के इस अंतर का स्पष्टीकरण चाहते हैं? हम आपके लिए इस प्रकार का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करेंगे। १६०१ तथा १६०२ के वर्षों को याद कीजिये, जिन्हें बीते

ग्रभी बहुत समय नहीं हुग्रा, पर जो हमें ग्राज प्राचीन इतिहास के वर्ष प्रतीत होने लगे हैं। प्रदर्शन शुरू हो चुके थे। बाज़ारू क्रांतिकारिता के समर्थकों ने "धावे" का शोर मचाया ('राबोचेये देलो'), "ख़ूनी परचे" जारी किये गये (बर्लिन से, यदि मेरी स्मरण-शक्ति मुझे धोखा नहीं दे रही है), समाचारपत्र के ज़रिये ग्रखिल रूसी ग्रांदोलन के विचार के "साहित्यपन" ग्रौर कुरसी-तोड़ स्वरूप की निंदा की गयी (नदेज्दिन)[70]। उलटे क्रांतिकारियों का पुछल्लावाद उस समय इस प्रचार में प्रकट हुग्रा कि "ग्रार्थिक संघर्ष राजनीतिक ग्रांदोलन चलाने का **सबसे ग्रच्छा** साधन है।" क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों का क्या रवैया था? उन्होंने इन दोनों प्रवृत्तियों पर प्रहार किया। उन्होंने ग्रातिशबाज़ी ग्रौर धावे के गर्जन-तर्जन की निंदा की, क्योंकि यह बात सभी के लिए स्पष्ट थी, या स्पष्ट होनी चाहिए थी कि ग्रवाम की खुली कार्रवाई ग्रानेवाले कल की बात थी। उन्होंने पुछल्लेवाद की निंदा की ग्रौर खुले शब्दों में जनव्यापी सशस्त्र विद्रोह **तक** का नारा दिया, प्रत्यक्ष ग्रपील के ग्रर्थ में नहीं (हमारे उस ज़माने के कथनों में श्री स्त्रूवे "उपद्रवों" के लिए कोई ग्रपील नहीं पायेंगे), बल्कि **ग्रनिवार्य** निष्कर्ष के ग्रर्थ में, "प्रचार" के ग्रर्थ में (जिसकी याद श्री स्त्रूवे को सिर्फ़ ग्रब ग्रायी है—हमारे माननीय श्री स्त्रूवे हमेशा कुछ वर्ष पिछड़े रहते हैं), उन्हीं "सामाजिक-मानसिक परिस्थितियों को" तैयार करने के ग्रर्थ में, जिनके बारे में घबराये हुए, सौदेबाज़ बुर्जुग्रा वर्ग के प्रतिनिधि ग्रब "उदास ग्रौर बेतुके ढंग से" शब्दों का तूमार बांध रहे हैं। **उस समय** प्रचार तथा ग्रांदोलन, ग्रांदोलन तथा प्रचार को वस्तुगत परिस्थितियों ने सचमुच सबसे ग्रागे लाकर रख दिया था। **उस समय** ग्रखिल रूसी राजनीतिक ग्रख़बार प्रकाशित करने के काम को, जिसका साप्ताहिक प्रकाशन ग्रादर्श प्रतीत होता था, विद्रोह की तैयारी करने के काम की कसौटी के रूप में प्रस्तावित किया जा सकता था (ग्रौर 'क्या करें?' में यह सुझाव रखा भी गया था)। **उस समय** सीधे-सीधे सशस्त्र कार्रवाई के बजाय जनव्यापी ग्रांदोलन का नारा, ग्रातिशबाज़ी **के बजाय** विद्रोह के लिए सामाजिक-मानसिक परिस्थितियां तैयार करने का नारा ही क्रांतिकारी सामाजिक-जनवाद के लिए एकमात्र सही नारे थे। **इस समय** घटनाग्रों ने इन नारों को पीछे छोड़ दिया है, ग्रांदो-

लन उनसे ग्रागे निकल गया है, वे रद्दी, चीथड़े बन गये हैं, जो केवल 'ग्रोस्वोबोज्देनिये'-पंथी मक्कारी ग्रौर नव 'ईस्क्रा'-पंथी पुछल्लेवाद को छिपाने के लिए ही उपयुक्त हैं!

या शायद मैं ग़लती कर रहा हूं? शायद क्रांति ग्रभी ग्रारंभ नहीं हुई है? शायद ग्रभी वर्गों द्वारा खुली राजनीतिक कार्रवाई का समय नहीं ग्राया है? शायद ग्रभी कोई गृहयुद्ध नहीं हो रहा है ग्रौर ग्रस्त्रों द्वारा ग्रालोचना को ग्रभी ग्रालोचना के ग्रस्त्र का **ग्रनिवार्य** ग्रौर लाज़िमी उत्तराधिकारी, वारिस, ट्रस्टी तथा निष्पादक नहीं बनना चाहिए?

ग्रपने चारों ग्रोर नज़र दौड़ाइये, ग्रध्ययन-कक्ष से निकलकर सड़क पर ग्राइये, ताकि इन प्रश्नों का उत्तर दे सकें। क्या शांतिपूर्ण तथा निहत्थे नागरिकों को हर जगह बहुत बड़ी संख्या में गोलियों का निशाना बनाकर स्वयं सरकार ने गृहयुद्ध ग्रारंभ नहीं कर दिया है? क्या हथियारबंद यमदूत सभा एकतंत्र के "तर्क" के रूप में सामने नहीं ग्रा रही है? क्या बुर्जुग्रा वर्ग ने – बुर्जुग्रा वर्ग तक ने – नागरिकों की मिलिशिया की ग्रावश्यकता महसूस नहीं की है? क्या वही श्री स्त्रूवे, ग्रादर्श रूप से एहतियातपसंद ग्रौर चुस्त-दुरुस्त श्री स्त्रूवे स्वयं यह नहीं कहते हैं (ग्रफ़सोस, वह केवल समस्या से कतराने के लिए ऐसा कहते हैं!) कि "क्रांतिकारी कार्रवाइयों का खुला चरित्र" (ग्राज हम लोग ऐसे कहते हैं!) "ग्रब ग्राम जनता पर प्रशिक्षणात्मक ग्रसर डालने की एक सबसे महत्वपूर्ण शर्त है?"

जिन लोगों के पास देखने को ग्रांखें हैं, उन्हें इस बारे में कोई भी संदेह नहीं हो सकता कि इस समय क्रांति के पक्षधरों को सशस्त्र विद्रोह का प्रश्न किस ढंग से पेश करना चाहिए। यह प्रश्न जिन **तीन** तरीक़ों से उन स्वतंत्र ग्रख़बारों में पेश किया गया है, जो **ग्रवाम** पर प्रभाव डालने की ज़रा भी क्षमता रखते हैं, उन पर एक नज़र डालिये।

प्रश्न को पेश करने का पहला तरीक़ा। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस का प्रस्ताव*। यह बात खुलेग्राम स्वीकृत

---

*प्रस्ताव का पूरा पाठ इस प्रकार है:

"यह बात ध्यान में रखते हुए:

तथा घोषित है कि ग्राम जनवादी क्रांतिकारी ग्रांदोलन की वजह से सशस्त्र विद्रोह की ग्रावश्यकता उत्पन्न हो चुकी है। पार्टी के सारभूत, मुख्य तथा

"(१) कि सर्वहारा वर्ग ग्रपनी स्थिति की बदौलत सबसे ग्रग्रगामी तथा एकमात्र सुसंगत क्रांतिकारी वर्ग होने के कारण रूस के ग्राम जनवादी क्रांतिकारी ग्रांदोलन में नेतृत्वकारी भूमिका ग्रदा करने के लिए कर्त्तव्य-बद्ध है;

"(२) कि इस समय इस ग्रांदोलन के कारण सशस्त्र विद्रोह की ग्रावश्यकता उत्पन्न हो चुकी है;

"(३) कि सर्वहारा वर्ग ग्रनिवार्य रूप से इस विद्रोह में बहुत सक्रिय हिस्सा लेगा, जिससे रूस में क्रांति की नियति का फ़ैसला होगा;

"(४) कि सर्वहारा वर्ग इस क्रांति में नेतृत्वकारी भूमिका तब ग्रदा कर सकता है, जब वह उस सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के झंडे के नीचे संयुक्त तथा स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति के रूप में एकबद्ध होगा, जो न केवल वैचारिक, बल्कि व्यावहारिक दृष्टि से भी उसके संघर्ष का संचालन करेगी;

"(५) कि केवल यही भूमिका ग्रदा करके सर्वहारा वर्ग बुर्जुग्रा-जनवादी रूस के संपत्तिवान वर्गों के ख़िलाफ़ समाजवाद के लिए संघर्ष के वास्ते सबसे ग्रनुकूल परिस्थितियों की ज़मानत कर सकता है,

"रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस इस बात को स्वीकार करती है कि एकतंत्र के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह द्वारा सीधे संघर्ष के लिए सर्वहारा वर्ग को संगठित करने का काम वर्तमान क्रांतिकारी काल में पार्टी का एक सबसे मुख्य तथा तात्कालिक काम है।

"इसलिए कांग्रेस पार्टी के सभी संगठनों को ग्रादेश देती है:

"(क) कि वे ग्रांदोलन तथा प्रचार द्वारा सर्वहारा वर्ग को भावी सशस्त्र विद्रोह का राजनीतिक महत्व ही नहीं, बल्कि उसका व्यावहारिक-संगठनात्मक पहलू भी समझायें;

"(ख) कि उस ग्रांदोलन तथा प्रचार के दौरान वे जनव्यापी राजनीतिक हड़तालों की भूमिका समझायें, जो विद्रोह के शुरू में ग्रौर उसके दौरान भी बहुत महत्वपूर्ण हो सकती हैं;

"(ग) कि वे सर्वहारा वर्ग को सशस्त्र करने तथा सशस्त्र विद्रोह ग्रौर उसके प्रत्यक्ष नेतृत्व की योजना भी तैयार करने के लिए ग्रधिक से ग्रधिक ज़ोरदार कार्रवाई करें ग्रौर इस उद्देश्य से ग्रावश्यकतानुसार पार्टी के कार्यकर्त्ताग्रों के विशेष दलों की स्थापना करें।" (१९०७ के संस्करण में लेखक की टिप्पणी।—सं०)

अपरिहार्य काम के रूप में विद्रोह के लिए सर्वहारा वर्ग का संगठन आज की विषय-सूची में रखा जा चुका है। सर्वहारा वर्ग को सशस्त्र करने और विद्रोह के प्रत्यक्ष नेतृत्व की संभावना को सुनिश्चित बनाने के लिए **अधिक से अधिक ज़ोरदार** कार्रवाइयों के लिए आदेश जारी किया जा चुका है।

प्रश्न को पेश करने का दूसरा तरीक़ा। 'ओस्वोबोज्देनिये' में "रूसी संविधानवादियों के नेता" (यूरोपीय बुर्जुआ वर्ग के 'फ़्रैंकफ़ुर्ट समाचार-पत्र'[71] जैसे प्रभावशाली मुखपत्र ने हाल में श्री स्त्रूवे का वर्णन इन्हीं शब्दों में किया था) या रूस के प्रगतिशील बुर्जुआ वर्ग के नेता का उसूली लेख। वह इस मत से सहमत नहीं हैं कि विद्रोह अनिवार्य है। गोपनीयता और उपद्रव विवेकहीन क्रांतिकारिता के विशिष्ट तरीक़े हैं। जनतंत्रवाद स्तंभित कर देने का तरीक़ा है। सशस्त्र विद्रोह वास्तव में केवल एक तकनीकी प्रश्न है, जबकि "सबसे बुनियादी और सबसे ज़रूरी काम" जनव्यापी पैमाने पर प्रचार करना और सामाजिक-मानसिक परिस्थितियां तैयार करना है।

प्रश्न को पेश करने का तीसरा तरीक़ा। नव 'ईस्क्रा'-पंथी सम्मेलन का प्रस्ताव। हमारा कार्यभार विद्रोह की तैयारी करना है। योजनाबद्ध विद्रोह की संभावना का कोई सवाल नहीं है। विद्रोह के लिए अनुकूल परिस्थितियां सरकार के विघटन से, हमारे आंदोलन से और हमारे संगठन से उत्पन्न होती हैं। तभी जाकर "तकनीकी-सैनिक तैयारियां कमोबेश गंभीर महत्व प्राप्त कर सकती हैं।"

बस इतना ही? हां, बस इतना ही। सर्वहारा वर्ग के नव 'ईस्क्रा'-पंथी नेता अभी तक नहीं जानते कि विद्रोह आवश्यक हो गया है कि नहीं। उनके लिए अभी यह साफ़ नहीं है कि सीधी लड़ाई के लिए सर्वहारा वर्ग को संगठित करने का कार्यभार तात्कालिक है कि नहीं। अधिक से अधिक ज़ोरदार कार्रवाइयों की अपील करना आवश्यक नहीं है, आम तौर से यह समझाना कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण है (१६०२ में नहीं, बल्कि १६०५ में) कि किन परिस्थितियों में ये कार्रवाइयां "कमोबेश गंभीर" महत्व प्राप्त कर "सकती हैं"...

नव 'ईस्क्रा'-पंथी साथियो, अब आपने देखा कि मार्तीनोवपंथ की ओर आपका मुड़ना आपको कहां ले आया है? क्या आप इस बात को

समझते हैं कि आपका राजनीतिक दर्शन 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों के दर्शन का ही नया रूप सिद्ध हुआ है, कि (आपकी इच्छा के विरुद्ध और आप-को पता चले बिना ही) आप राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग के पीछे-पीछे चल रहे हैं? अब क्या आपको स्पष्ट है कि रटी-रटायी बातों को दोहराते हुए और दर्शन झाड़ने में पूर्ण निपुणता प्राप्त करके आपने इस बात को अपनी आंखों से ओझल कर दिया है कि – प्योत्र स्त्रूवे के स्मरणीय लेख के स्मरणीय शब्दों में – "क्रांतिकारी **कार्रवाइयों** का खुला चरित्र अब आम जनता पर प्रशिक्षणात्मक असर डालने की एक सबसे महत्वपूर्ण शर्त है"?

९. क्रांति के समय चरम विरोध-पक्ष की पार्टी होने का क्या मतलब होता है?

आइये, अब फिर अस्थायी सरकारवाले प्रस्ताव पर वापस लौटें। हम दिखा चुके हैं कि नव 'ईस्क्रा'-पंथी कार्यनीति क्रांति को आगे नहीं बढ़ाती – जिसकी संभावना वे अपने प्रस्ताव द्वारा सुनिश्चित बनाना चाहते हों – बल्कि पीछे ढकेलती है। हम दिखा चुके हैं कि ठीक यही कार्यनीति असंगत बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध संघर्ष में सामाजिक-जनवाद के **हाथ बांध देती है** और बुर्जुआ जनवाद में उसके विलीन हो जाने को रोकती नहीं है। स्वा-भाविक रूप से प्रस्ताव की ग़लत प्रस्थापनाओं से यह ग़लत निष्कर्ष नि-कलता है: "इसलिए सामाजिक-जनवाद को अस्थायी सरकार में सत्ता ग्रहण करने या उसमें हिस्सा बंटाने का लक्ष्य अपने सामने नहीं रखना चाहिए, बल्कि उसे चरम क्रांतिकारी विरोध-पक्ष की पार्टी बने रहना चा-हिए।" इस निष्कर्ष के पूर्वार्द्ध पर ज़रा विचार तो कीजिये, जिसका संबंध लक्ष्यों के निरूपण से है। क्या नव 'ईस्क्रा'-पंथी ज़ारशाही पर क्रांति की निर्णायक विजय को सामाजिक-जनवादी सरगर्मियों का लक्ष्य निर्दिष्ट करते हैं? हां, वे करते हैं। वे निर्णायक विजय की शर्तों का सही-सही सूत्री-करण तो नहीं कर पाते और 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी सूत्रीकरण में भटक जाते हैं, परंतु उपरोक्त लक्ष्य वे अपने सामने रखते ज़रूर हैं। और भी: क्या वे अस्थायी सरकार को विद्रोह के साथ जोड़ते हैं? हां, यह कहकर कि अस्थायी सरकार "विजयी जन-विद्रोह में से उत्पन्न होगी," वे सीधे

ऐसा करते हैं। अंतिम बात यह कि क्या वे विद्रोह का नेतृत्व करने का लक्ष्य अपने सामने रखते हैं? हां, श्री स्त्रूवे की तरह वे भी इस बात को स्वीकार नहीं करते कि विद्रोह एक तात्कालिक आवश्यकता है, पर इसके साथ ही श्री स्त्रूवे के प्रतिकूल वे कहते हैं कि "सामाजिक-जनवाद उसे (विद्रोह को) अपने प्रभाव तथा **नेतृत्व के अधीन ले आने** और उसे मज़दूर वर्ग के हित में इस्तेमाल करने की चेष्टा करता है।"

कैसी सुंदर लड़ी पिरोयी है, है न? हम सर्वहारा और **ग़ैर सर्वहारा** अवाम, दोनों ही के विद्रोह को अपने प्रभाव तथा अपने नेतृत्व के अधीन ले आने और उसे अपने हित में इस्तेमाल करने का **लक्ष्य** अपने सामने रखते हैं। इसलिए हम अपने सामने विद्रोह में सर्वहारा वर्ग और क्रांतिकारी बुर्जुआ वर्ग तथा टुटपुंजिया वर्ग ("ग़ैर सर्वहारा समूह"), तीनों ही का नेतृत्व करने, अर्थात सामाजिक-जनवाद और क्रांतिकारी बुर्जुआ वर्ग के बीच विद्रोह का नेतृत्व "**बंटाने**" का लक्ष्य रखते हैं। हम अपने सामने विद्रोह को **विजयी** बनाने का लक्ष्य रखते हैं, जिसके फलस्वरूप अस्थायी सरकार की स्थापना होगी ("जो विजयी जन-विद्रोह में से उत्पन्न होगी")। **इसलिए**... इसलिए हमें अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में सत्ता ग्रहण करने या उसमें हिस्सा बंटाने का लक्ष्य अपने सामने नहीं रखना चाहिए!!

हमारे मित्र चूल के साथ चूल नहीं बैठा पाते। वे विद्रोह के सवाल से कतरानेवाले श्री स्त्रूवे के दृष्टिकोण और इस तात्कालिक कार्यभार को हाथ में लेने के लिए आह्वान करनेवाले क्रांतिकारी सामाजिक-जनवाद के दृष्टिकोण के बीच ढुलमुल होते रहते हैं। वे अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में हर प्रकार की शिरकत को सर्वहारा वर्ग के साथ ग़द्दारी ठहराकर उसूली तौर पर उसकी निंदा करनेवाले अराजकतावाद और विद्रोह में सामाजिक-जनवाद के नेतृत्वकारी प्रभाव की शर्त पर उसमें शिरकत की मांग करनेवाले मार्क्सवाद के बीच ढुलमुल होते रहते हैं*। उनका अपना कोई स्वतंत्र दृष्टिकोण नहीं है: न श्री स्त्रूवेवाला दृष्टिकोण, जो ज़ारशाही के साथ

---

*देखें 'प्रोलेतारी', अंक ३, 'अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की बाबत', दूसरा लेख।

समझौता कर लेना चाहते हैं और इसलिए विद्रोह के सवाल पर कतराने और बहानेबाज़ियों का सहारा लेने के लिए विवश होते हैं; न अराजकतावादियोंवाला दृष्टिकोण, जो "ऊपर से" होनेवाली हर कार्रवाई की और बुर्जुआ क्रांति में हर प्रकार की शिरकत की निंदा करते हैं। नव 'ईस्क्रा'-पंथी ज़ारशाही के साथ सौदे और ज़ारशाही पर विजय को एक ही चीज़ समझते हैं। वे बुर्जुआ क्रांति में हिस्सा लेना चाहते हैं। वे मार्तीनोव के 'दो अधिनायकत्व' से भी कुछ आगे चले गये हैं। वे जनता के विद्रोह का नेतृत्व करने पर भी राज़ी हैं – इसलिए कि विजय प्राप्त हो जाने के फ़ौरन बाद (या शायद विजय से फ़ौरन पहले?) उस नेतृत्व का परित्याग कर दें, अर्थात इसलिए कि **वे स्वयं विजय के फलों का उपभोग न करें**, बल्कि सारे फल पूरी तरह बुर्जुआ वर्ग के हवाले कर दें। इसी को वे "मज़दूर वर्ग के हित में विद्रोह का इस्तेमाल" कहते हैं...

इस गोरखधंधे पर और अधिक विचार करने की कोई ज़रूरत नहीं है। उस सूत्र में इस गोरखधंधे की **उत्पत्ति** पर ग़ौर करना अधिक उपयोगी होगा, जिसके शब्द हैं: "चरम क्रांतिकारी विरोध-पक्ष की पार्टी बने रहना।"

यह अंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी सामाजिक-जनवाद की एक सुपरिचित प्रस्थापना है। यह बिलकुल सही प्रस्थापना है। संसदीय पद्धतिवाले देशों में संशोधनवाद या अवसरवाद के सभी विरोधियों के लिए यह आम बात बन गयी है। यह प्रस्थापना "संसदीय जड़वामनता" को, मिलेरांवाद, बर्नस्टीनवाद और तुराती की भावना में इतालवी सुधारवाद को न्यायोचित तथा आवश्यक मुंहतोड़ जवाब के रूप में सामान्य रूप से मान्य बन गयी है। हमारे नेक नव 'ईस्क्रा'-पंथियों ने इस बहुत ही बढ़िया प्रस्थापना को कंठस्थ कर लिया है और वे उसे बड़े उत्साह के साथ लागू कर रहे हैं... **बिलकुल बेतुके ढंग से।** संसदीय संघर्ष के प्रवर्ग उन परिस्थितियों के लिए लिखे गये प्रस्तावों में शामिल किये जाते हैं, जिनमें संसद का अस्तित्व ही नहीं है। "विरोध-पक्ष" की अवधारणा को, जो ऐसी राजनीतिक स्थिति का प्रतिबिंब तथा अभिव्यक्ति बन गयी है, जिसमें कोई भी गंभीरतापूर्वक **विद्रोह** की बात नहीं करता, बिना सोचे-समझे एक ऐसी परिस्थिति पर लागू किया जाता है, जिसमें विद्रोह **आरंभ हो चुका है**

और जिसमें क्रांति के सभी समर्थक उसके नेतृत्व के बारे में सोच रहे हैं तथा बातें कर रहे हैं। पुराने तरीक़े से, अर्थात केवल "नीचे से" कार्रवाई के तरीक़े से "**बने रहने**" की इच्छा बड़ी धूमधाम से **ठीक ऐसे समय** व्यक्त की जा रही है, जब क्रांति ने विद्रोह के विजयी हो जाने की दशा में **ऊपर से** कार्रवाई की आवश्यकता का प्रश्न हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है।

नहीं, हमारे नव 'ईस्क्रा'-पंथियों का निश्चय ही भाग्य ख़राब है! उस सूरत में भी जब वे किसी सही सामाजिक-जनवादी प्रस्थापना का निरूपण कर देते हैं, वे यह नहीं समझ पाते कि उसे सही तरीक़े से लागू कैसे किया जाये। उन्होंने यह नहीं सोचा कि जब क्रांति आरंभ हो गयी हो, जब कोई संसद न हो, जब गृहयुद्ध हो रहा हो, जब विद्रोहात्मक विस्फोट हो रहे हों, तब संसदीय संघर्ष की अवधारणाएं और परिभाषाएं बदल जाती हैं और उनका अर्थ बिलकुल उलटा हो जाता है। उन्होंने यह नहीं सोचा कि उल्लिखित परिस्थितियों में संशोधन सड़कों पर होनेवाले प्रदर्शनों द्वारा किये जाते हैं, संसदीय प्रश्न सशस्त्र नागरिकों की आक्रामक कार्रवाई द्वारा किये जाते हैं, सरकार का विरोध सरकार का तख़्ता बलपूर्वक उलटकर पूरा किया जाता है।

हमारे लोककथा के उस सुविख्यात नायक की तरह, जो ग़लत मौक़े पर अच्छी सलाहों की पुनरावृत्ति करता रहता था, मार्तीनोव के प्रशंसक भी शांतिमय संसदीयता के सबक़ ठीक ऐसे समय पर दोहराते रहते हैं, जबकि वे स्वयं कहते हैं कि प्रत्यक्ष जंगी कार्रवाइयां आरंभ हो गयी हैं। एक ऐसे प्रस्ताव में, जो "क्रांति की निर्णायक विजय" और "जन-विद्रोह" के उल्लेख से आरंभ होता है, बड़ी धूमधाम से "चरम विरोध-पक्ष" का नारा पेश करने से अधिक हास्यास्पद कोई दूसरी बात नहीं हो सकती! महोदयो, ज़रा ग़ौर कीजिये कि विद्रोह के काल में "चरम विरोध-पक्ष" होने का क्या अर्थ होता है? इसका अर्थ सरकार की क़लई खोलना होता है या उसे शासन से हटाना होता है? इसका अर्थ सरकार के ख़िलाफ़ वोट देना होता है या खुली लड़ाई में उसकी सेना को हराना होता है? इसका अर्थ सरकार को अपना राजकोष भरने की अनुमति न देना होता है या इसका अर्थ यह होता है कि क्रांतिकारी ढंग से राज-

कोष पर अधिकार कर लिया जाये, ताकि उसे विद्रोह की आवश्यकताओं के लिए, मज़दूरों तथा किसानों को हथियारबंद करने के लिए और संविधान सभा बुलाने के लिए इस्तेमाल किया जा सके? महोदयो, क्या आप समझने नहीं लगे हैं कि "चरम विरोध-पक्ष" की अवधारणा केवल नकारात्मक कार्रवाइयों की अभिव्यक्ति करती है – क़लई खोलना, ख़िलाफ़ वोट देना, अनुमति न देना? ऐसा क्यों है? इसलिए कि यह अवधारणा केवल संसदीय संघर्ष पर लागू होती है और सो भी ऐसे काल में, जब कोई भी "निर्णायक विजय" को संघर्ष का तात्कालिक लक्ष्य नहीं बनाता। क्या आप समझने नहीं लगे हैं कि जब राजनीतिक रूप से उत्पीड़ित जनता विजय के लिए सब कुछ दांव पर लगाकर संघर्ष करते हुए पूरे मोर्चे पर दृढ़संकल्प होकर आक्रमण शुरू करती है, उस क्षण से इस मामले में परिस्थिति बुनियादी तौर से बदल जाती है?

मज़दूर हमसे पूछते हैं: क्या विद्रोह के तात्कालिक काम को उत्साहपूर्वक शुरू कर देना आवश्यक है? उदीयमान विद्रोह को विजयी बनाने के लिए क्या किया जाना चाहिए? विजय का क्या उपयोग किया जाना चाहिए? उस समय कौन-सा कार्यक्रम कार्यान्वित किया जा सकता है और किया जाना चाहिए? मार्क्सवाद को गूढ़ बनानेवाले नव 'ईस्क्रा'-पंथी उत्तर देते हैं: हमें चरम क्रांतिकारी विरोध-पक्ष की पार्टी बने रहना चाहिए... तो हम ठीक कहते थे न कि ये सूरमा दक़ियानूसी उस्ताद हैं?

१०. "क्रांतिकारी कम्यून" और सर्वहारा वर्ग तथा किसानों का क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व

नव 'ईस्क्रा' जिस अराजकतावादी स्थिति की बात करने की हद तक पहुंच चुका था ("नीचे से और ऊपर से" नहीं, केवल "नीचे से" कार्रवाई), उस पर नव 'ईस्क्रा'-पंथियों का सम्मेलन टिका नहीं रह सका। विद्रोह की संभावना को स्वीकार करने और विजय की तथा अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में शिरकत की संभावना को न स्वीकार करने का

बेतुकापन प्रत्यक्ष था। इसलिए प्रस्ताव ने प्रश्न के मार्तीनोव तथा मार्तोव के हल में कुछ शर्तें ग्रौर कुछ प्रतिबंध शामिल कर दिये। ग्राइये, इन शर्तों पर विचार करें, जिनका उल्लेख प्रस्ताव के निम्नलिखित हिस्से में इस प्रकार किया गया है:

"यह कार्यनीति ('चरम क्रांतिकारी विरोध-पक्ष की पार्टी बने रहना') विद्रोह को फैलाने में सहायता देने ग्रौर सरकार को विशृंखलित करने के एकमात्र उद्देश्य के लिए सत्ता पर ग्रांशिक तथा प्रासंगिक रूप से ग्रधिकार करने या किसी शहर ग्रथवा किसी ज़िले में क्रांतिकारी कम्यूनों की स्थापना के ग्रौचित्य को बेशक किसी भी तरह ग्रमान्य नहीं करती।"

ग्रगर बात ऐसी है, तो इसका मतलब केवल नीचे से ही नहीं, बल्कि ऊपर से भी कार्रवाई की संभावना को उसूली तौर से स्वीकार करना है। इसका मतलब यह है कि 'ईस्क्रा' (ग्रंक ९३) में प्रकाशित लेव मार्तोव के प्रख्यात व्यंगवृत्त में दी गयी प्रस्थापना को रद्द कर दिया गया है ग्रौर 'व्पेर्योद' ग्रख़बार की कार्यनीति को, ग्रर्थात केवल "नीचे से" ही नहीं, बल्कि "ऊपर से" भी कार्रवाई की कार्यनीति को सही मान लिया गया है।

ग्रागे, सत्ता पर ग्रधिकार (चाहे वह ग्रांशिक, प्रासंगिक, ग्रादि ही क्यों न हो) स्पष्टतः इस बात का पूर्वानुमान करता है कि उसमें केवल सामाजिक-जनवाद ही ग्रौर केवल सर्वहारा वर्ग ही भाग नहीं लेगा। यह नतीजा इस बात से निकलता है कि जनवादी क्रांति में केवल सर्वहारा वर्ग की ही दिलचस्पी नहीं होती ग्रौर केवल वही उसमें सक्रिय रूप से भाग नहीं लेता। यह नतीजा इस बात से निकलता है कि विद्रोह एक "जन"-विद्रोह है, जैसा कि विचाराधीन प्रस्ताव के ग्रारंभ में ही कहा गया है, कि "ग़ैर सर्वहारा समूह" (विद्रोह के बारे में सम्मेलन के प्रस्ताव में प्रयुक्त शब्द) भी, ग्रर्थात बुर्जुग्रा लोग भी, उसमें भाग लेते हैं। याने इस उसूल को कि ग्रस्थायी क्रांतिकारी सरकार में टुटपुंजिया वर्ग के साथ समाजवादियों की किसी भी रूप में शिरकत मज़दूर वर्ग के साथ विश्वास-घात है, **सम्मेलन ने रद्द कर दिया** ग्रौर 'व्पेर्योद' यही हासिल करना चाहता था। ऐसा नहीं होता कि "विश्वासघात" केवल इसलिए विश्वासघात

नहीं रह जाता कि उसे मूर्त रूप देनेवाली कार्रवाई आंशिक, प्रासंगिक, स्थानीय, आदि होती है। फलस्वरूप इस विचार को कि अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में शिरकत बाज़ारू जोरेसवाद के समकक्ष है, सम्मेलन ने **रद्द कर दिया**, और यही 'व्येर्योद' हासिल करना चाहता था। ऐसा नहीं होता कि कोई सरकार केवल इसलिए सरकार न रह जाये कि उसकी सत्ता कई शहरों में फैली हुई न होकर एक ही शहर तक सीमित है, कई ज़िलों में फैली हुई न होकर एक ही ज़िले तक सीमित है और न इससे कोई फ़र्क़ पड़ता है कि उस सरकार का क्या नाम है। इस प्रकार, नव 'ईस्क्रा' ने **प्रश्न को जो उसूली शक्ल देने** की कोशिश की थी, उसे **सम्मेलन ने रद्द कर दिया।**

आइये, अब देखें कि सम्मेलन ने क्रांतिकारी सरकारों के निर्माण और इनमें शिरकत पर अब उसूली तौर से स्वीकार्य जो प्रतिबंध लगाये हैं, वे तर्कसंगत हैं कि नहीं। हमें मालूम नहीं कि "प्रासंगिक" और "अस्थायी" इन दो अवधारणाओं में क्या अंतर है। हमें तो ऐसा लगता है कि इस "नये" और अनुपयुक्त शब्द का इस्तेमाल साफ़ तौर से सोचने में असमर्थता को छिपाने के लिए किया गया है। वह "अधिक गूढ़" **प्रतीत होता है**, पर वास्तव में वह केवल अधिक अस्पष्ट और उलझा हुआ है। किसी शहर या ज़िले में आंशिक रूप से "सत्ता पर अधिकार करने के औचित्य" और पूरे राज्य की अस्थायी क्रांतिकारी सरकार में शिरकत में क्या अंतर है? क्या "शहरों" में पीटर्सबर्ग जैसा शहर शामिल नहीं है, जहां ९ जनवरीवाली घटनाएं हुई थीं? क्या ज़िलों में काकेशिया शामिल नहीं है, जो बहुतेरे राज्यों से बड़ा है? ज़िले की तो बात ही छोड़िये, जिस क्षण हम किसी एक शहर में भी "सत्ता पर अधिकार कर लेंगे", क्या उसी क्षण हमारे सामने ये समस्याएं नहीं खड़ी हो जायेंगी (जो एक ज़माने में नव 'ईस्क्रा' को परेशान करती रहती थीं) कि हम जेलख़ानों, पुलिस, ख़ज़ाना, आदि का क्या करें? इस बात से बेशक कोई इनकार नहीं करेगा कि यदि हमारे पास काफ़ी शक्तियां न हुईं, यदि विद्रोह पूरी तरह सफल न हुआ, या यदि विजय निर्णायक न हुई, तो यह संभव है कि अलग-अलग जगहों, अलग-अलग शहरों, आदि में अस्थायी क्रांतिकारी सरकारें क़ायम हो जायें। परंतु इस तरह की बात मान लेने में तुक क्या है, सज्जनो?

क्या स्वयं ग्रापने प्रस्ताव के ग्रारंभ में "क्रांति की निर्णायक विजय" की, "विजयी जन-विद्रोह" की बात नहीं की थी?? सामाजिक-जनवादियों ने ग्रराजकतावादियों का काम कब से संभाल लिया है: सर्वहारा वर्ग के ध्यान ग्रौर लक्ष्यों को भंग कर देना? सामान्य, ग्रखंड ग्रौर पूर्ण के बजाय उसके ध्यान को "ग्रांशिक" की ग्रोर लक्षित कर देना? किसी एक शहर में "सत्ता पर ग्रधिकार कर लेने" की बात का पूर्वानुमान करके ग्राप स्वयं "विद्रोह को फैलाने" की बात करते हैं – क्या हम समझें कि किसी दूसरे शहर में? क्या हम ग्राशा करें कि सभी शहरों में? सज्जनो, ग्रापके निष्कर्ष उतने ही डगमग ग्रौर ग्रस्थिर, उतने ही परस्पर विरोधी ग्रौर उलझे हुए हैं, जितनी कि ग्रापकी प्रस्थापनाएं थीं। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस ने ग्राम तौर पर ग्रस्थायी क्रांतिकारी सरकार के सवाल का बहुत विस्तृत तथा स्पष्ट उत्तर दिया था। वह उत्तर सभी स्थानीय ग्रस्थायी सरकारों पर भी लागू होता है। परंतु सम्मेलन ने इस प्रश्न का जो उत्तर उसके **एक भाग को** कृत्रिम रूप से तथा मनमाने ढंग से पृथक करके दिया है, उसमें कुल मिलाकर पूरी समस्या से केवल **दामन छुड़ाया गया है** (परंतु ग्रसफलतापूर्वक) ग्रौर उलझाव पैदा किया गया है।

"क्रांतिकारी कम्यूनों" का क्या ग्रर्थ होता है? क्या यह ग्रवधारणा "ग्रस्थायी क्रांतिकारी सरकार" से भिन्न है ग्रौर यदि है, तो किस बात में? सम्मेलनवाले सज्जन स्वयं भी यह नहीं जानते। उलझे हुए क्रांतिकारी विचारों के कारण, जैसा कि बहुधा होता है, वे **क्रांतिकारी लफ़्फ़ाज़ी** पर उतर ग्राते हैं। जी हां, सामाजिक-जनवाद के प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकार किये गये प्रस्ताव में "क्रांतिकारी कम्यून" शब्दों का प्रयोग क्रांतिकारी लफ़्फ़ाज़ी के ग्रतिरिक्त ग्रौर कुछ भी नहीं है। मार्क्स ने ग्रनेक बार इस प्रकार की लफ़्फ़ाज़ी की निंदा की थी, जिसमें भविष्य के कार्यभारों पर पर्दा डालने के लिए **बीते हुए ज़माने** के "ग्राकर्षक" शब्द इस्तेमाल किये जाते हैं। ऐसे शब्दों का ग्राकर्षण, जो इतिहास में ग्रपनी भूमिका पूरी कर चुके हों, इस तरह के मामलों में निरर्थक तथा ख़तरनाक चमक-दमक, बच्चों के झुनझुने जैसा रह जाता है। हमें मज़दूरों में ग्रौर सारी जनता में यह स्पष्ट तथा दुविधाहीन समझ पैदा करनी चाहिए कि हम ग्रस्थायी

क्रांतिकारी सरकार की स्थापना क्यों चाहते हैं, कि यदि सत्ता पर कल ही हमारा निर्णायक प्रभाव हुआ, तो हम शुरू हो चुके जन-विद्रोह की विजय के फ़ौरन बाद **कौन-से परिवर्तन लायेंगे**। ये हैं वे सवाल, जो राजनीतिक नेताओं के सामने हैं।

रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस ने इन प्रश्नों के बिलकुल स्पष्ट उत्तर दिये थे और इन परिवर्तनों का एक पूरा कार्यक्रम तैयार किया था – हमारी पार्टी का न्यूनतम कार्यक्रम। परंतु "कम्यून" शब्द हरगिज़ इसका उत्तर नहीं देता; यह केवल दिमाग़ों को उलझानेवाली दूर की ध्वनि ... अथवा ढोल की पोल है। उदाहरण के लिए, १८७१ का पेरिस कम्यून हमें जितना ही अधिक प्रिय है, उसकी ग़लतियों और उसकी विशेष परिस्थितियों का विश्लेषण किये बिना ही उसका हवाला देकर बचना उतना ही अनुचित है। ऐसा करना ब्लांकीवादियों के बेतुके उदाहरण का अनुसरण करना होगा, जिसका एंगेल्स ने मज़ाक़ उड़ाया था और जिन्होंने (१८७४ में अपने "घोषणापत्र" में) कम्यून के हर काम का स्तुतिगान किया था[72]। प्रस्ताव में उल्लिखित **इस** "क्रांतिकारी कम्यून" के बारे में कोई सम्मेलनवाला किसी मज़दूर के प्रश्न का क्या उत्तर देगा? वह केवल यह कह सकेगा कि इतिहास में इस नाम से मज़दूरों की ऐसी सरकार प्रसिद्ध है, जो उस समय जनवादी क्रांति और समाजवादी क्रांति के तत्वों के बीच भेद करने में न तो समर्थ थी और न कर सकी, जिसने जनतंत्र के लिए लड़ने और समाजवाद के लिए लड़ने के कार्यभारों को गड्डमड्ड कर दिया, जो वेर्साई[73] के ख़िलाफ़ ज़बर्दस्त सैनिक आक्रमण करने का काम पूरा न कर सकी, जिसने फ़्रांसीसी बैंक पर क़ब्ज़ा न करके ग़लती की, आदि। सारांश यह कि अपने उत्तर में आप चाहे पेरिस कम्यून का हवाला दें या किसी दूसरे कम्यून का, आपका उत्तर यही होगा कि वह ऐसी सरकार थी, **जैसी हमारी सरकार नहीं होनी चाहिए**। सचमुच बहुत ही कमाल का जवाब है! क्या यह अतिसिद्धांतवादी उपदेशात्मकता और क्रांतिकारी की बेबसी का प्रमाण नहीं है, जब प्रस्ताव पार्टी के व्यावहारिक कार्यक्रम के बारे में तो कुछ नहीं कहता और बेमौक़े इतिहास का पाठ पढ़ाना शुरू कर देता है? क्या इससे ठीक उसी ग़लती का पता नहीं चलता है, जिसका असफल आरोप हमारे ऊपर लगाया

जाता था: जनवादी क्रांति और समाजवादी क्रांति को गड्डमड्ड कर देना, जिनके बीच किसी भी "कम्यून" ने भेद नहीं किया था?

अस्थायी सरकार का (जिसे बेजा तौर से "कम्यून" कहा गया है) "एकमात्र" उद्देश्य विद्रोह फैलाना और सरकार का विघटन करना घोषित किया गया है। यदि "एकमात्र" का शाब्दिक अर्थ लिया जाये, तो अन्य सभी उद्देश्य मिट जाते हैं। यह "केवल नीचे से" के बेतुके सिद्धांत की प्रतिध्वनि है। अन्य सभी उद्देश्यों को इस प्रकार मिटाना अदूरदर्शिता और चिंतन के अभाव का एक दूसरा उदाहरण है। "क्रांतिकारी कम्यून" को, अर्थात क्रांतिकारी सत्ता को, चाहे वह एक ही शहर तक सीमित क्यों न हो, अनिवार्य रूप से राज्य के सभी काम पूरे करने पड़ेंगे (भले ही अस्थायी रूप से, "आंशिक रूप से, प्रासंगिक रूप से" ही सही)। इस बात की ओर से मुंह फेरकर इसे देखने से इनकार करना मूर्खता की हद होगी। उस सत्ता को आठ घंटे के कार्य-दिवस का क़ानून बनाना पड़ेगा, फ़ैक्टरियों पर मज़दूरों का निरीक्षण स्थापित करना होगा, मुफ़्त और आम शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ेगी, जजों के निर्वाचन की पद्धति चालू करनी पड़ेगी, किसान समितियां स्थापित करनी पड़ेंगी, आदि – संक्षेप में उसे निःसंदेह कई सुधार करने पड़ेंगे। इन सुधारों को "क्रांति फैलाने में सहायता" कहना शब्दों के साथ खेलना होगा और एक ऐसे मामले में और अधिक गड़बड़झाला पैदा करना होगा, जिसमें पूर्ण स्पष्टता की आवश्यकता है।

नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के प्रस्ताव के अंतवाले भाग में उस अर्थवाद की उसूली प्रवृत्ति की आलोचना के लिए तो कोई नयी सामग्री नहीं मिलती, जो हमारी पार्टी में फिर से पैदा हो गया है, परंतु ऊपर कही गयी बातों पर दूसरे पहलू से कुछ प्रकाश पड़ता है।

वह भाग इस प्रकार है:

"सामाजिक-जनवाद को अपनी पहलक़दमी पर सत्ता पर अधिकार करने और जब तक संभव हो, उसे अपने हाथों में बनाये रखने की दिशा

में केवल एक ही सूरत में कोशिश करनी चाहिए – अर्थात उस सूरत में, जब क्रांति पश्चिमी यूरोप के उन्नत देशों में फैल जाये, जहां समाजवाद की सफलता के लिए परिस्थितियां कुछ (?) हद तक परिपक्व हो चुकी हैं। उस सूरत में रूसी क्रांति के सीमित ऐतिहासिक क्षेत्र को काफ़ी व्यापक बनाया जा सकता है और समाजवादी सुधारों के मार्ग पर क़दम रखने की संभावना पैदा होती है।

"सामाजिक-जनवादी पार्टी अपनी कार्यनीति को इस आशा पर कि पूरे क्रांतिकारी दौर में वह क्रांति की प्रक्रिया में बदलनेवाली सभी सरकारों के प्रति चरम क्रांतिकारी विरोध-पक्ष की स्थिति बनाये रखेगी, आधारित करके सरकार की सत्ता का, अगर वह उसके हाथों में आ पड़ती है (??), उपयोग करने के लिए अपने को अच्छे से अच्छे ढंग से तैयार कर सकती है।"

यहां आधारभूत विचार वही है, जो "व्पेर्योद' ने बार-बार निरूपित किया है, जिसने कहा था कि हमें जनवादी क्रांति में सामाजिक-जनवाद की पूर्ण विजय से, अर्थात सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व से (मार्तीनोव की तरह) डरना नहीं चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की विजय से हम यूरोप की जनता में उत्साह भर सकेंगे और यूरोप का समाजवादी सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ वर्ग की ग़ुलामी से मुक्त होकर अपनी बारी में हमें समाजवादी क्रांति को पूर्णता तक पहुंचाने में सहायता देगा। परंतु देखिये कि नव 'ईस्क्रा'-पंथियों ने इस विचार को जिस ढंग से पेश किया है, उसमें वह कितना बिगड़ गया है। ब्योरे की बातों पर – इस बेहूदगी की बात पर कि सत्ता किसी ऐसी वर्ग-चेतन पार्टी के हाथ में "पड़" सकती है, जो सत्ता पर अधिकार करने को हानिकारक कार्यनीति समझती है, इस बात पर कि यूरोप में समाजवाद के लिए परिस्थितियां कुछ हद तक नहीं, बल्कि पूरी तरह परिपक्व हो चुकी हैं, इस बात पर कि हमारी पार्टी के कार्यक्रम में किसी प्रकार के समाजवादी परिवर्तनों को स्वीकार न करके केवल समाजवादी क्रांति को स्वीकार किया गया है – हम विस्तार से विचार नहीं करेंगे। आइये, देखें कि 'व्पेर्योद' द्वारा प्रस्तुत किये गये विचार और प्रस्ताव में प्रस्तुत किये गये विचार में क्या मुख्य तथा बुनियादी अंतर है। 'व्पेर्योद' ने रूस के क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग के सामने एक क्रियाशील कार्यभार रखा था:

जनवाद की लड़ाई जीतना और क्रांति को यूरोप तक पहुंचाने के लिए उस जीत का इस्तेमाल करना। प्रस्ताव हमारी "निर्णायक विजय" (नव 'ईस्क्रा'-पंथी अर्थ में नहीं) और यूरोपीय क्रांति के इस संबंध को नहीं समझ पाता और इसलिए उसमें सर्वहारा वर्ग के कार्यभारों और **उसकी** विजय के परिप्रेक्ष्य की बातें न करके आम तौर से संभावनाओं में से एक का उल्लेख किया गया है: "उस सूरत में, जब क्रांति... फैल जाये"... 'व्पेर्योद' में साफ़ तौर से तथा निश्चित रूप से बताया गया था—और रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के प्रस्ताव में यह बात शामिल कर ली गयी थी—कि सामाजिक विकास की उस अवस्था में कौन-सी बातें फ़ौरन पूरी की जा सकती हैं और समाजवाद के लिए संघर्ष की जनवादी पूर्वापेक्षा के रूप में उनमें से कौन-सी बातें सबसे पहले पूरी की जानी चाहिए, इसे ध्यान में रखते हुए "सरकार की सत्ता का उपयोग" सर्वहारा वर्ग के हित में किस प्रकार किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। यह कहकर कि सामाजिक-जनवादी पार्टी सरकार की सत्ता का "उपयोग करने के लिए अपने को तैयार कर सकती है, प्रस्ताव इस मामले में भी नैराश्यपूर्ण ढंग से पीछे-पीछे घिसटता है, क्योंकि उसमें यह नहीं बताया गया है कि वह **किस प्रकार** कर सकेगी, वह **किस प्रकार** अपने को तैयार करेगी और **कैसा** उपयोग करेगी। उदाहरण के लिए, हमें इस बात में संदेह नहीं है कि नव 'ईस्क्रा'-पंथी पार्टी में अपनी नेतृत्व-कारी स्थिति का "उपयोग करने के लिए अपने को तैयार कर सकते हैं", परंतु सवाल तो यह है कि अब तक उस उपयोग के उनके अनुभव और उनकी तैयारियों से इस बात की ज़्यादा उम्मीद पैदा नहीं होती कि यह संभावना वास्तविकता का रूप धारण कर सकेगी...

'व्पेर्योद' ने बिलकुल सटीक ढंग से बताया था कि "सत्ता पर अधि-कार अपने हाथों में बनाये रखने की" असली "संभावना" किस बात में निहित है—सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी जनवादी अधि-नायकत्व में, उनकी संयुक्त जन-शक्ति में, जो प्रतिक्रांति की सारी शक्तियों से ज़्यादा वज़नदार हो सकती है, **जनवादी** परिवर्तनों में उनके हितों की अनिवार्य समानता में। यहां भी सम्मेलन के प्रस्ताव में कोई निश्चित बात नहीं कही गयी है, उसमें केवल सवाल को टाला गया है। निःसंदेह रूस

में सत्ता पर अधिकार अपने हाथों में क़ायम रखने की संभावना स्वयं रूस के अंदर सामाजिक शक्तियों के गठन द्वारा, इस समय हमारे देश में होने-वाली जनवादी क्रांति की परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होनी चाहिए। यूरोप में सर्वहारा वर्ग की विजय के फलस्वरूप (यूरोप में क्रांति लाने से लेकर सर्वहारा वर्ग की विजय तक के बीच अभी बहुत लंबा फ़ासला है) रूसी बुर्जुआ वर्ग का निराशोन्मत्त क्रांति विरोधी संघर्ष शुरू होगा – नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के प्रस्ताव में इस क्रांति विरोधी शक्ति के बारे में एक शब्द तक नहीं कहा गया है, जिसके महत्व का मूल्यांकन रूसी सामा-जिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के प्रस्ताव में किया गया है। यदि जनतंत्र और जनवाद के लिए अपनी लड़ाई में हम सर्वहारा वर्ग के अलावा किसानों का भी भरोसा नहीं कर सकें, तो हमारे लिए "सत्ता पर अधिकार बनाये रखने" की कोई आशा नहीं रह जाती। परंतु यदि आशा है, यदि "ज़ारशाही पर क्रांति की निर्णायक विजय" इस प्रकार की संभावना उत्पन्न कर देती है, तो हमें उसे लक्षित करना चाहिए, उसे तुरंत वास्तविकता में बदल देने का सक्रिय रूप से आह्वान करना चा-हिए और न केवल क्रांति के यूरोप तक पहुंचने **की सूरत में**, बल्कि उसे वहां तक पहुंचाने **के उद्देश्य से** भी व्यावहारिक नारे देने चाहिए। पुछल्लावादी सामाजिक-जनवादियों ने "रूसी क्रांति के सीमित ऐतिहासिक क्षेत्र" की जो बात कही है, वह इस जनवादी क्रांति के उद्देश्यों और इस क्रांति में सर्वहारा वर्ग की अग्रणी भूमिका की सीमित समझ के लिए केवल एक आड़ का काम करती है!

"सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व" के नारे पर एक आपत्ति यह है कि अधिनायकत्व के लिए "अनन्य इच्छा" ('ईस्क्रा', अंक ९५) का होना आवश्यक है और सर्वहारा वर्ग तथा टुटपुंजिया वर्ग की इच्छा कभी अनन्य हो ही नहीं सकती। यह आपत्ति तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि वह "अनन्य इच्छा" अवधारणा की अमूर्त तथा "अधिभूतवादी" व्याख्या पर आधारित है। यह हो सकता है कि किसी एक मामले में इच्छा अनन्य हो और दूसरे मामले में अनन्य न हो। समाज-वाद के प्रश्नों पर और समाजवाद के लिए संघर्ष में एकता न होने का मतलब यह नहीं है कि जनवाद के प्रश्नों पर और जनतंत्र के लिए संघर्ष

में भी इच्छा अनन्य न हो। इसे भूल जाना जनवादी तथा समाजवादी क्रांति के तर्कसंगत तथा ऐतिहासिक अंतर को भूल जाने के बराबर होगा। इस बात को भूल जाना जनवादी क्रांति के **सार्वजनिक** चरित्र को भूल जाने के बराबर होगा: "सार्वजनिक" का मतलब यह है कि ठीक उस हद तक "इच्छा अनन्य" **है**, जिस हद तक यह क्रांति सारी जनता की ज़रूरतों और मांगों को पूरा करती है। जनवाद की सीमाओं से परे सर्वहारा वर्ग तथा कृषक बुर्जुआ वर्ग की इच्छा के अनन्य होने का सवाल ही नहीं उठता। उनके बीच वर्ग संघर्ष अनिवार्य है, परंतु जनवादी जनतंत्र में ही वह संघर्ष **समाजवाद के लिए** जनता का सबसे गहरा तथा सबसे व्यापक संघर्ष होगा। संसार की अन्य सभी चीज़ों की तरह ही सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व का भी अतीत और भविष्य है। उसका अतीत है एकतंत्र, भूदासत्व, राजतंत्र तथा विशेषाधिकार। इस अतीत के विरुद्ध संघर्ष में, प्रतिक्रांति के विरुद्ध संघर्ष में सर्वहारा वर्ग तथा किसानों की "इच्छा अनन्य" हो सकती है, क्योंकि इस मामले में हितों की एकता है।

उसका भविष्य है निजी मिल्कियत के ख़िलाफ़ संघर्ष, मालिक के ख़िलाफ़ उजरती मज़दूर का संघर्ष, समाजवाद के लिए संघर्ष। इस मामले में इच्छा की अनन्यता असंभव है*। इस मामले में हमारा मार्ग एकतंत्र शासन से जनतंत्र की ओर नहीं, बल्कि टुटपुंजिया जनवादी जनतंत्र से समाजवाद की ओर जानेवाला मार्ग है।

ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों में अतीत के तत्व बेशक भविष्य के तत्वों के साथ घुल-मिल जाते हैं, दोनों रास्ते एक-दूसरे को काटते हैं। उजरती श्रम और निजी मिल्कियत के ख़िलाफ़ उसका संघर्ष एकतंत्र शासन में भी मौजूद रहता है, वह भूदासता के अंतर्गत भी उत्पन्न होता है।

---

*पूंजीवाद का विकास, जो स्वतंत्रता की स्थिति में अधिक व्यापक तथा अधिक वेगमय होता है, इच्छा की अनन्यता को अवश्यंभावी रूप से बहुत शीघ्र ख़त्म कर देगा। प्रतिक्रांति तथा प्रतिक्रियावाद को जितनी जल्दी कुचल दिया जायेगा, उतनी ही जल्दी इच्छा की अनन्यता भी समाप्त की जायेगी।

परंतु यह बात किसी भी प्रकार हमें विकास की मुख्य मंज़िलों के बीच तार्किक तथा ऐतिहासिक भेद करने से नहीं रोकती। हम सभी बुर्जुआ क्रांति तथा समाजवादी क्रांति को एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा करते हैं, हम सभी उनके बीच बहुत सख़्ती के साथ भेद करने की नितांत आवश्यकता पर ज़ोर देते हैं, परंतु क्या इस बात से इनकार किया जा सकता है कि इतिहास में दोनों क्रांतियों के अलग-अलग ख़ास-ख़ास तत्व आपस में घुल-मिल जाते हैं? क्या यूरोप की जनवादी क्रांतियों का काल अनेक समाजवादी आंदोलनों तथा समाजवाद की स्थापना की कोशिशों से परिचित नहीं है? और क्या यूरोप की भावी समाजवादी क्रांति को जनवाद के क्षेत्र में अधूरे छूटे बहुत सारे कार्यों को पूरा नहीं करना पड़ेगा?

किसी भी सामाजिक-जनवादी को एक क्षण के लिए भी इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि सर्वहारा वर्ग को अनिवार्य रूप से सबसे अधिक जनवादी तथा सबसे अधिक जनतांत्रिक बुर्जुआ वर्ग तथा टुटपुंजिया वर्ग के ख़िलाफ़ भी समाजवाद के लिए वर्ग संघर्ष करना पड़ेगा। इसमें किसी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं है। इसीलिए सामाजिक-जनवाद की एक अलग, स्वतंत्र तथा पूर्णतः वर्गीय पार्टी होना नितांत आवश्यक है। यही कारण है कि बुर्जुआ वर्ग के साथ "मिलकर प्रहार करने" की हमारी कार्यनीति कुछ समय के लिए ही होती है और हमारा कर्त्तव्य यह होता है कि हम "अपने संघाती पर एक शत्रु की तरह" कड़ी नज़र रखें, आदि। इन सब बातों में भी संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। परंतु इससे यह निष्कर्ष निकालना हास्यास्पद तथा प्रतिक्रियावादी बात होगी कि हमें उन कार्यभारों को, जो अल्पकालिक और अस्थायी होते हुए भी इस समय बुनियादी हैं, भुला देना या उनकी उपेक्षा अथवा अवहेलना करनी चाहिए। एकतंत्र शासन के विरुद्ध संघर्ष समाजवादियों का अस्थायी तथा अल्पकालिक काम है, परंतु किसी भी प्रकार इस काम की अवहेलना या उपेक्षा करना समाजवाद के साथ विश्वासघात करने और प्रतिक्रियावाद का हित-साधन करने के बराबर होगा। सर्वहारा वर्ग तथा किसानों का क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व निःसंदेह समाजवादियों का अल्पकालिक तथा अस्थायी कार्यभार है, परंतु जनवादी क्रांति के ज़माने में इस कार्यभार की उपेक्षा करना सरासर प्रतिक्रियावादी बात होगी।

ठोस राजनीतिक कार्यभार ठोस परिस्थितियों में निर्धारित किये जाने चाहिए। सभी चीज़ें सापेक्ष होती हैं, सभी चीज़ों में प्रवाह होता है और सभी चीज़ें बदलती रहती हैं। जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के कार्यक्रम में जनतंत्र की मांग नहीं है। जर्मनी में परिस्थिति ऐसी है कि व्यवहार में इस प्रश्न को समाजवाद के प्रश्न से अलग नहीं किया जा सकता (हालांकि जर्मनी के संबंध में भी एंगेल्स ने १८९१ में एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम[74] के मसविदे पर अपनी टीका में जनतंत्र और जनतंत्र के लिए संघर्ष के महत्व को कम आंकने के ख़िलाफ़ चेतावनी दी थी!)। रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी के अंदर उसके कार्यक्रम तथा आंदोलन में से जनतंत्र की मांग को निकाल देने का सवाल कभी उठा तक नहीं है, क्योंकि हमारे देश में जनतंत्र के प्रश्न और समाजवाद के प्रश्न के बीच अटूट संबंध का कोई सवाल हो ही नहीं सकता। १८९८ के किसी जर्मन सामाजिक-जनवादी के लिए यह बिलकुल स्वाभाविक बात थी कि वह जनतंत्र के प्रश्न को ख़ास तौर पर सबसे आगे न रखे। इस पर न तो हमें आश्चर्य होता है और न हम उसकी निंदा ही करते हैं। परंतु यदि कोई जर्मन सामाजिक-जनवादी १८४८ में जनतंत्र के प्रश्न को पीछे डाल देता, तो वह क्रांति के साथ सरासर ग़द्दारी करता। अमूर्त सत्य नहीं होता। सत्य हमेशा ठोस होता है।

वह समय भी आयेगा, जब रूसी एकतंत्र के विरुद्ध संघर्ष का अंत हो जायेगा और रूस के लिए जनवादी क्रांति का काल समाप्त हो जायेगा; उस समय सर्वहारा वर्ग तथा किसानों की "इच्छा की अनन्यता" और जनवादी अधिनायकत्व, आदि की बात करना हास्यास्पद होगा। जब वह समय आयेगा, तब हम सीधे-सीधे सर्वहारा वर्ग के समाजवादी अधिनायकत्व पर विचार करेंगे और उसकी अधिक ब्योरेवार चर्चा करेंगे। परंतु इस समय अग्रगामी वर्ग की पार्टी ज़ारशाही पर जनवादी क्रांति की निर्णायक विजय के लिए पूरा ज़ोर लगाकर चेष्टा किये बिना नहीं रह सकती। और निर्णायक विजय सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं होती।

टिप्पणी

१) हम पाठकों को इस बात की याद दिलायें कि 'ईस्क्रा' और 'व्पेर्योद' के आपसी विवाद में 'ईस्क्रा' ने अन्य चीज़ों के अतिरिक्त तुराती के नाम एंगेल्स के उस पत्र का हवाला दिया था, जिसमें एंगेल्स ने इटली के सुधारवादियों के (भावी) नेता को यह चेतावनी दी थी कि वह जनवादी क्रांति को समाजवादी क्रांति के साथ न उलझाएं। १८६४ में इटली की राजनीतिक स्थिति के बारे में एंगेल्स ने लिखा था कि इटली में जो क्रांति होनेवाली है, वह समाजवादी क्रांति नहीं, बल्कि टुटपुंजिया, जनवादी क्रांति होगी[75]। 'ईस्क्रा' ने 'व्पेर्योद' की इस बात के लिए भर्त्सना की थी कि वह एंगेल्स द्वारा निर्धारित उसूल से हट गया है। उसकी वह भर्त्सना अनुचित थी, क्योंकि 'व्पेर्योद' ने (अंक १४) १६वीं शताब्दी की क्रांतियों की तीन मुख्य शक्तियों के अंतर की बाबत मार्क्स के सिद्धांत के औचित्य को कुल मिलाकर पूरी तरह स्वीकार किया था*। इस सिद्धांत के अनुसार पुरानी व्यवस्था के ख़िलाफ़, एकतंत्र, सामंतशाही, भूदासता के ख़िलाफ़ निम्नलिखित शक्तियां टक्कर लेती हैं: १) उदारतावादी बड़ा बुर्जुआ वर्ग; २) आमूलवादी टुटपुंजिया वर्ग; ३) सर्वहारा वर्ग। पहली शक्ति सांविधानिक राजतंत्र से अधिक किसी और चीज़ के लिए नहीं लड़ती; दूसरी शक्ति जनवादी जनतंत्र के लिए लड़ती है; तीसरी शक्ति – समाजवादी क्रांति के लिए। समाजवादी क्रांति के लिए सर्वहारा वर्ग के संघर्ष के साथ पूर्ण जनवादी क्रांति के लिए टुटपुंजिया संघर्ष को उलझा देना समाजवादी के लिए राजनीतिक दिवालियेपन का ख़तरा पैदा करता है। इस आशय की मार्क्स की चेतावनी सर्वथा उचित है। परंतु ठीक इसी कारण "क्रांतिकारी कम्यूनों" का नारा ग़लत है, क्योंकि इतिहास में जो कम्यून हुए हैं, उन्होंने जनवादी क्रांति को और समाजवादी क्रांति को एक ही चीज़ समझने की यही ग़लती की। इसके विपरीत, हमारा नारा – सर्वहारा वर्ग तथा किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व – हमें इस ग़लती से पूरी तरह सुरक्षित रखता है। महज़ जन-

---

*व्ला० इ० लेनिन, 'सामाजिक-जनवाद और अस्थायी क्रांतिकारी सरकार', १६०५। – सं०

वादी क्रांति की सीमाओं का **सीधे-सीधे** उल्लंघन करने की क्षमता न रखने-वाली क्रांति के निर्विवाद बुर्जुआ चरित्र को स्वीकार करते हुए हमारा नारा उस क्रांति को **आगे बढ़ाता है** और उसे ऐसे रूपों में ढालने की कोशिश करता है, जो सर्वहारा वर्ग के लिए सर्वाधिक हितकर हों। फलतः वह जनवादी क्रांति का ज़्यादा से ज़्यादा उपयोग करने की चेष्टा करता है, ताकि समाजवाद के लिए सर्वहारा वर्ग के आगे के संघर्ष में अधिकतम सफलता प्राप्त हो सके।

११. रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के चंद प्रस्तावों के साथ "सम्मेलन" के चंद प्रस्तावों की सरसरी तुलना

इस समय अस्थायी क्रांतिकारी सरकार का प्रश्न सामाजिक-जनवाद के कार्यनीतिक प्रश्नों का केंद्रीय बिंदु है। सम्मेलन के अन्य प्रस्तावों पर भी उतने ही अधिक विस्तार के साथ विचार करना न तो संभव ही है और न आवश्यक। हम अपने आपको केवल कुछ ऐसी बातों की ओर संकेत करने तक ही सीमित रखेंगे, जिनसे रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के और सम्मेलन के प्रस्तावों की कार्यनीतिक दिशाओं के बीच उस उसूली अंतर की पुष्टि होती है, जिसका हमने ऊपर विश्लेषण किया है।

क्रांति के ठीक पूर्व सरकार की कार्यनीति के प्रति रवैये के सवाल को लीजिये। इस प्रश्न का विस्तृत उत्तर भी आपको रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के एक प्रस्ताव में मिल जायेगा। इस प्रस्ताव में उस ख़ास समय की सभी विविध परिस्थितियों तथा कार्यभारों को दृष्टिगत रखा गया है: सरकारी रिआयतों की मक्कारी का भंडाफोड़, "जन प्रतिनिधित्व के स्वांगों" का उपयोग, मज़दूर वर्ग की तात्कालिक मांगों की (जिनमें सबसे प्रमुख आठ घंटे के कार्य-दिवस की मांग है) क्रांतिकारी ढंग से पूर्ति और अंत में यमदूत सभाइयों का विरोध। सम्मेलन के प्रस्तावों में यह प्रश्न कई भागों में बिखरा हुआ है: "प्रतिक्रियावाद की

दुष्ट शक्तियों के विरोध" का उल्लेख केवल अन्य पार्टियों के प्रति रवैये-वाले प्रस्ताव के भाग में किया गया है। प्रतिनिधि-संस्थाओं के चुनाव में भाग लेने के प्रश्न पर बुर्जुआ वर्ग के साथ ज़ारशाही की "समझौतेबाज़ियों" के प्रश्न से अलग विचार किया गया है। आठ घंटे का कार्य-दिवस क्रांतिकारी ढंग से हासिल करने का आह्वान करने के बजाय एक ज़ोरदार नाम – "आर्थिक संघर्ष के बारे में" – के साथ एक ख़ास प्रस्ताव "आठ घंटे का कार्य-दिवस क़ानून द्वारा निर्धारित करने" के लिए मुहिम चलाने के पुराने नारे की केवल पुनरावृत्ति करता है ("मज़दूरों के प्रश्न को रूसी सार्वजनिक जीवन में प्राप्त केंद्रीय स्थान" के बारे में भारी-भरकम तथा मूर्खतापूर्ण शब्दों के बाद)। यह बात कि इस समय यह नारा अपर्याप्त और कालातीत है इतनी साफ़ है कि उसका प्रमाण देने की कोई ज़रूरत नहीं।

खुली राजनीतिक कार्रवाई का प्रश्न। तीसरी कांग्रेस ने हमारी सरगर्मियों में आगे चलकर होनेवाले **बुनियादी** परिवर्तन को ध्यान में रखा है। गुप्त कार्रवाई और गुप्त मशीनरी के विकास को किसी भी हालत में त्यागना नहीं चाहिए: ऐसा करना पुलिस के हाथों में खेलना और सरकार के लिए बेहद फ़ायदेमंद होगा। परंतु इसके साथ ही अब खुली कार्रवाई की बात सोचने का समय भी आ गया है। इस प्रकार की कार्रवाइयों के सार्थक रूप और फलतः इस काम के लिए ख़ास मशीनरी – जो कम गुप्त हो – फ़ौरन **तैयार किये जाने** चाहिए। क़ानूनी तथा अर्द्धक़ानूनी संस्थाओं का इस्तेमाल इस उद्देश्य से किया जाना चाहिए कि जहां तक संभव हो उन्हें रूस की भावी खुली सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के आधार में परिणत कर दिया जाये।

इस मामले में भी सम्मेलन ने समेकित नारे न देकर सवाल को कई हिस्सों में बांट दिया है। संगठन-आयोग के नाम यह हास्यास्पद आदेश ख़ास तौर से उभरकर सामने आता है कि वह क़ानूनी ढंग से काम करनेवाले अपने लेखकों को "उचित स्थान प्रदान करने" का प्रबंध करे। फिर यह सर्वथा बेतुका निर्णय है कि "उन जनवादी अख़बारों को, जो मज़दूर आंदोलन की सहायता करने का लक्ष्य अपने सामने रखते हैं, अपने प्रभाव के अधीन कर लिया जाये।" यह हमारे सभी क़ानूनी उदारतावादी अख़बारों

का घोषित लक्ष्य है और उनमें से लगभग सभी 'ओस्वोबोज्देनिये' की धारा के अनुयायी हैं। 'ईस्क्रा' का संपादकमंडल अपनी सलाह पर ख़ुद अमल करने की शुरूआत क्यों नहीं करता और हमारे सामने इस बात का उदाहरण क्यों नहीं रखता कि 'ओस्वोबोज्देनिये' को सामाजिक-जनवादी प्रभाव के अधीन कैसे लाया जा सकता है? **पार्टी** के लिए आधार स्थापित करने के उद्देश्य से क़ानूनी संस्थाओं को इस्तेमाल करने के नारे के बजाय हमें, पहले तो, केवल "ट्रेड"-यूनियनों के बारे में एक विशिष्ट सलाह दी गयी है (कि पार्टी के सभी सदस्य उनमें अनिवार्यतः शामिल हों) और, दूसरे, यह सलाह दी गयी है कि हम "मज़दूरों के क्रांतिकारी संगठनों का" – "बेज़ाब्ता बनाये गये संगठनों का" – "क्रांतिकारी मज़दूरों के क्लबों" का मार्गदर्शन करें। अल्लाह जाने इन "क्लबों" की गणना बेज़ाब्ता बनाये गये संगठनों की श्रेणी में किस दृष्टि से की गयी है, और ये "क्लब" वास्तव में क्या हैं। पार्टी की सर्वोच्च संस्था की तरफ़ से निश्चित तथा स्पष्ट आदेशों के बजाय हमारे सामने लेखकों के कुछ विचारों के ख़ाके और अस्पष्ट नोट हैं। सभी कामों में एक पूर्णतः नये आधार की दिशा में पार्टी के संक्रमण की शुरूआत का कोई पूरा चित्र हमें नहीं मिलता।

"किसानों की समस्या" को पार्टी कांग्रेस में और सम्मेलन में बिलकुल ही अलग-अलग तरीक़ों से पेश किया गया। कांग्रेस ने "किसान आंदोलन के प्रति रवैये" के बारे में प्रस्ताव तैयार किया था और सम्मेलन ने "किसानों के बीच काम" के बारे में। एक में पूरे व्यापक क्रांतिकारी-जनवादी आंदोलन का ज़ारशाही विरोधी संघर्ष के राष्ट्रीय हित में नेतृत्व करने के कार्यभार को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। दूसरे में इस समस्या को समाज के केवल एक ख़ास हिस्से के बीच "काम" करने तक सीमित कर दिया गया है। एक में हमारे आंदोलन के लिए केंद्रीय व्यावहारिक नारा दिया गया है, जिसमें सभी जनवादी परिवर्तनों को पूरा करने के लिए फ़ौरन क्रांतिकारी किसान समितियों के संगठन का आह्वान किया गया है। दूसरे में "समितियों के संगठन की मांग" को संविधान सभा के सामने पेश किया जाना है। हमें इस संविधान सभा की प्रतीक्षा क्यों करनी चाहिए? क्या वह सचमुच संविधान सभा बन जायेगी? क्या

क्रांतिकारी किसान समितियों की आरंभिक और साथ-साथ स्थापना के बिना वह टिकाऊ होगी? सम्मेलन ने इन तमाम प्रश्नों की ओर ध्यान ही नहीं दिया है। उसके सभी निर्णयों में वही सामान्य विचार प्रतिबिंबित है, जिसका हमने उल्लेख किया है, अर्थात यह कि बुर्जुआ क्रांति में पूरे जनवादी आंदोलन का नेतृत्व करने तथा उसे स्वतंत्र रूप से चलाने के लक्ष्य का अनुसरण किये बिना हमें केवल अपना विशिष्ट काम करना चाहिए। जिस प्रकार अर्थवादी निरंतर इस भ्रांति के शिकार होते रहे कि सामाजिक-जनवादियों को केवल आर्थिक संघर्ष की ओर ध्यान देना चाहिए और राजनीतिक संघर्ष की चिंता करने का काम उदारतावादियों के लिए छोड़ देना चाहिए, उसी प्रकार नव 'ईस्क्रा'-पंथी अपनी हर बहस के दर्मियान इस भ्रांति के शिकार होते रहते हैं कि हमें बुर्जुआ क्रांति के रास्ते से अलग हटकर किसी कोने में दुबके रहना चाहिए और उसे पूरा करने का सक्रिय काम बुर्जुआ वर्ग के लिए छोड़ देना चाहिए।

अंत में अन्य पार्टियों के प्रति रवैयेवाले प्रस्ताव की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के प्रस्ताव में बुर्जुआ मुक्ति आंदोलन की सारी परिसीमितता तथा अपर्याप्तता का पर्दाफ़ाश करने के बारे में कहा गया है, उसमें एक कांग्रेस से दूसरी कांग्रेस तक ऐसी परिसीमितता के सारे संभव मौक़े गिनाने अथवा बुरे और अच्छे बुर्जुआ लोगों के बीच विभाजन रेखा खींचने का भोला विचार अपने सामने नहीं रखा गया है। सम्मेलन स्तारोवेर द्वारा की गयी ग़लती को दोहराते हुए निरंतर ऐसी विभाजन रेखा की खोज में लगा हुआ है और "लिटमस काग़ज़" वाले प्रख्यात सिद्धांत का विकास कर रहा है। स्तारोवेर बहुत नेक विचार से प्रेरित थे – बुर्जुआ वर्ग के सामने कड़ी से कड़ी शर्तें रखना। वे बस इतना भूल गये कि अनुमोदन, सहमति, आदि के योग्य बुर्जुआ जनवादियों को पहले से ही अयोग्य बुर्जुआ जनवादियों से अलग कर देने की हर कोशिश के फलस्वरूप ऐसा "सूत्र" पैदा होता है, जिसे घटनाओं का विकास फ़ौरन मिटा देता है और जो सर्वहारा वर्ग चेतना में उलझाव पैदा कर देता है। संघर्ष में गुरुत्व-केंद्र वास्तविक एकता से घोषणाओं, वायदों तथा नारों की ओर हटने लगता है। स्तारोवेर का मत था कि "सार्विक, समान तथा प्रत्यक्ष मताधिकार और गुप्त मत-

दान" ऐसा ही बुनियादी नारा है। परंतु दो वर्ष भी नहीं बीत पाये थे कि "लिटमस काग़ज़" की निरर्थकता सिद्ध हो गयी और सार्विक मताधिकार का नारा 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों ने अपना लिया, जो इसके फलस्वरूप सामाजिक-जनवाद के ज़रा भी निकट नहीं आये, बल्कि उलटे जिन्होंने इसी नारे की सहायता से मज़दूरों को गुमराह करने और उन्हें समाजवाद के पथ से हटाने की कोशिश की।

अब नव 'ईस्क्रा'-पंथी ऐसी "शर्तें" रख रहे हैं, जो "और भी कड़ी" हैं। वे ज़ारशाही के शत्रुओं से यह "मांग कर रहे हैं" कि वे "संगठित सर्वहारा वर्ग की हर निर्णयात्मक कार्रवाई", आदि का "पूरे उत्साह के साथ तथा स्पष्ट रूप में (!?) समर्थन करें", जिसमें "जनता के स्वशस्त्रीकरण के काम में सक्रिय रूप से भाग लेना" भी शामिल है। इस बार विभाजन रेखा उल्लेखनीय रूप से दूर खींची गयी है – लेकिन ताहम यह रेखा **फिर कालातीत बन चुकी है,** उसकी निरर्थकता फ़ौरन प्रकट हो गयी है। उदाहरण के लिए, जनतंत्र का नारा क्यों मौजूद नहीं है? यह कैसी बात है कि सामाजिक-जनवादी "सामंती श्रेणी-विभाजन और राजतांत्रिक शासन-व्यवस्था के सभी आधारों के ख़िलाफ़ निर्मम क्रांतिकारी युद्ध" के हित में बुर्जुआ जनवादियों से जनतंत्र के लिए संघर्ष को छोड़कर जो चाहो, उसकी "मांग करते हैं?"

'रूसी मुक्ति संघ' ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि यह सवाल केवल दोषारोपण का सवाल नहीं है, कि नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की ग़लती का बुनियादी राजनीतिक महत्व है (देखें 'प्रोलेतारी', अंक ४)*। ये

*'प्रोलेतारी' के अंक ४ में, जो ४ जून, १६०५ को निकला था, 'नया क्रांतिकारी मज़दूर संघ' शीर्षक से एक बहुत लंबा लेख प्रकाशित हुआ था। लेख में संघ द्वारा जारी की गयी अपीलों की विषय-वस्तु दी गयी थी। संघ ने 'रूसी मुक्ति संघ' का नाम धारण किया था और अपने सामने सशस्त्र विद्रोह की सहायता से संविधान सभा बुलाने का लक्ष्य रखा था। लेख में आगे इस प्रकार के ग़ैर पार्टी संघों के प्रति सामाजिक-जनवादियों का रवैया बताया गया था। इस संघ का अस्तित्व कहां तक वास्तविक था और क्रांति में इसका क्या अंजाम हुआ, यह बात हमें बिलकुल नहीं मालूम। (१६०७ के संस्करण में लेखक की टिप्पणी। **– सं०**)

"ज़ारशाही के शत्रु" नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की सभी "मांगों" के अनुकूल सिद्ध होंगे। फिर भी हम प्रकट कर चुके हैं कि इस 'रूसी मुक्ति संघ' के कार्यक्रम में (या उसकी कार्यक्रमहीनता में) 'ओस्वोबोज्देनिये' वाली भावना व्याप्त है, कि 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी बड़ी आसानी से उसे अपने वश में रख सकते हैं। परंतु सम्मेलन ने प्रस्ताव के अंतिम भाग में घोषणा की है कि "सामाजिक-जनवाद **जनता के मक्कार मित्रों** का, अर्थात उन सभी राजनीतिक पार्टियों का विरोध करता रहेगा, जो उदारतावादी तथा जनवादी झंडा लहराते हुए भी सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी संघर्ष को सच्चा समर्थन प्रदान करने से इनकार करते हैं।" 'रूसी मुक्ति संघ' इस प्रकार का समर्थन देने से इनकार ही नहीं करता, बल्कि उसे अत्यधिक आग्रह के साथ प्रस्तुत करता है। क्या यह इस बात की गारंटी है कि इस संघ के नेता "जनता के मक्कार मित्र" नहीं हैं, चाहे वे 'ओस्वो-बोज्देनिये'-पंथी ही क्यों न हों?

देखिये, बात यह है: पहले से ही "शर्तें" गढ़कर और ऐसी "मांगें" रखकर, जो अपनी बेहद दुर्बलता के कारण हास्यास्पद होती हैं, नव 'ईस्क्रा'-पंथी फ़ौरन अपने आपको उपहासजनक स्थिति में डाल देते हैं। जीवन की वास्तविकताओं को आंकने के लिए उनकी सारी शर्तें और मांगें अपर्याप्त सिद्ध हो जाती हैं। उनका सूत्रों के पीछे भागना व्यर्थ है, क्योंकि ऐसा कोई भी सूत्र नहीं हो सकता, जो बुर्जुआ जनवाद की मक्कारी, असंगति तथा संकीर्णता की सभी विविध अभिव्यक्तियों को अपनी लपेट में ले ले। सवाल "लिटमस कागज़" का, सूत्रों का या लिखी हुई तथा छपी हुई मांगों का नहीं है और न ही पहले से "जनता के" मक्कार और सच्चे "मित्रों" का अंतर बतानेवाली विभाजन रेखा खींचने का है, बल्कि सवाल है संघर्ष में सच्ची एकता का, बुर्जुआ जनवाद द्वारा उठाये गये हर "ढीले" क़दम की सामाजिक-जनवादियों द्वारा अथक आलोचना का। "जनवादी परिवर्तन में दिलचस्पी रखनेवाली सभी सामाजिक शक्तियों को सचमच सुदृढ़ करने" के लिए आवश्यकता उन "मुद्दों" की नहीं होती, जिन पर सम्मेलन ने इतनी उद्यमशीलता के साथ और इतने निरर्थक रूप से मेहनत की ही, बल्कि उसके लिए जरूरत होती है सचमच क्रांतिकारी नारों को पेश करने की क्षमता की। इसके लिए ऐसे नारों की आवश्यकता

होती है, जो क्रांतिकारी तथा जनतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग को ऊंचा उठाकर सर्वहारा वर्ग के स्तर पर ले आयें, न कि सर्वहारा वर्ग के उद्देश्यों को नीचे गिराकर राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग के स्तर पर पहुंचा दें। इसके लिए सशस्त्र विद्रोह के तात्कालिक कार्यभारों से कुतर्कों द्वारा कतराने की नहीं, बल्कि अत्यंत उत्साहपूर्वक विद्रोह में भाग लेने की आवश्यकता है।

१२. यदि बुर्जुआ वर्ग जनवादी क्रांति से मुंह फेर ले, तो क्या उसकी व्यापकता कम हो जायेगी?

जब उक्त पंक्तियां लिखी जा चुकी थीं, तब हमें नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के काकेशियाई सम्मेलन द्वारा स्वीकृत और 'ईस्क्रा' में प्रकाशित प्रस्तावों की एक प्रतिलिपि मिली। Pour la bonne bouche (अच्छे उपसंहार के लिए) हम इससे अच्छी सामग्री की कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

'ईस्क्रा' के संपादकमंडल ने ठीक ही कहा है: "कार्यनीति के बुनियादी सवाल पर काकेशियाई सम्मेलन भी **हूबहू वैसे ही**" (ठीक है!) "निर्णय पर पहुंचा, जैसा अखिल रूसी सम्मेलन द्वारा" (अर्थात नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के सम्मेलन द्वारा) "स्वीकृत किया गया था।" "काकेशिया के साथियों ने अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के प्रति सामाजिक-जनवादियों के रवैये के सवाल को 'व्पेर्योद' दल और उसमें शामिल हो जानेवाले तथाकथित कांग्रेस के प्रतिनिधियों द्वारा प्रचारित किये गये नये तरीक़े का बिलकुल स्पष्ट विरोध करके तय कर दिया है।" "यह मानना पड़ेगा कि सम्मेलन ने बुर्जुआ क्रांति में सर्वहारा वर्ग की पार्टी की कार्यनीति का सूत्रीकरण जिस रूप में किया है, वह **नितांत उचित** है।"

सत्य तो सत्य है। नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की बुनियादी ग़लती को इससे अधिक "उचित" शब्दों में कोई दूसरा सूत्रबद्ध नहीं कर सकता था। हम इसे पूरा का पूरा उद्धृत करेंगे और पहले तो कोष्ठकों में पुष्पों की ओर और अंत में फलों की ओर संकेत करेंगे।

अस्थायी सरकार के बारे में नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के काकेशियाई सम्मेलन का प्रस्ताव इस प्रकार है:

"चूंकि हम सर्वहारा वर्ग की सामाजिक-जनवादी चेतना और गहरी बनाने के लिए" (क्यों नहीं! उन्हें इतना और कह देना चाहिए था कि मार्तीनोव के ढंग से गहरी बनाने के लिए!) "क्रांतिकारी स्थिति से फ़ायदा उठाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं (जनतंत्र प्राप्त करने के लिए नहीं, केवल चेतना को और गहरा बनाने के लिए? क्रांति की कैसी "गहरी" समझ है!) "और पार्टी के लिए उदीयमान बुर्जुआ-राजकीय व्यवस्था की आलोचना करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के निमित्त" ("जनतंत्र हासिल करने का काम हमारा नहीं है! हमारा काम तो केवल आलोचना की स्वतंत्रता प्राप्त करना है। अराजकतावादी विचार भाषा की अराजकता को जन्म देते हैं: "बुर्जुआ-राजकीय" व्यवस्था!), "सम्मेलन सामाजिक-जनवादी अस्थायी सरकार के निर्माण और उसमें प्रवेश के ख़िलाफ़ अपना मत घोषित करता है" (स्पेन की क्रांति से दस महीने पहले बकूनिनवादियों द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव को याद कीजिये, जिसका हवाला एंगेल्स ने दिया है: देखें 'प्रोलेतारी', अंक ३[76]) "और राजकीय व्यवस्था के यथासंभव (?!) जनवादीकरण के लिए बुर्जुआ अस्थायी सरकार पर बाहर से" (ऊपर से नहीं, बल्कि नीचे से) "दबाव को सबसे सार्थक तरीक़ा समझता है। सम्मेलन का विश्वास है कि यदि सामाजिक-जनवादियों ने अस्थायी सरकार बनायी या यदि वे ऐसी सरकार में शरीक हुए, तो उसका नतीजा एक ओर तो यह होगा कि सर्वहारा अवाम सामाजिक-जनवादी पार्टी से निराश हो जायेंगे और उसे त्याग देंगे, क्योंकि सामाजिक-जनवादी सत्ता पर अधिकार कर लेने के बावजूद मज़दूर वर्ग की तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकेंगे, जिनमें समाजवाद की स्थापना भी शामिल है" (जनतंत्र तात्कालिक आवश्यकता नहीं है! प्रस्ताव के रचयिता अपने भोलेपन के कारण इस बात को नहीं देखते कि वे शुद्ध अराजकतावादी भाषा बोल रहे हैं, मानो वे बुर्जुआ क्रांतियों में शरीक होने से इनकार कर रहे हों!), "और, दूसरी ओर, **इसके फलस्वरूप बुर्जुआ वर्ग क्रांति से मुंह फेर लेंगे और इस प्रकार उसकी व्यापकता को कम कर देंगे।**"

यही मामले का लब्बे-लुबाब है! यहीं पर अराजकतावादी विचार शुद्धतम अवसरवाद के साथ घल-मिलकर एक हो जाते हैं (जैसा कि

पश्चिम यूरोपीय बर्नस्टीनवादियों के बीच भी निरंतर होता रहता है)। जरा सोचिये: अस्थायी सरकार में इसलिए शरीक न होना कि उससे बुर्जुआ वर्ग क्रांति से मुंह फेर लेगा और इस प्रकार क्रांति की व्यापकता को कम कर देगा! जी हां, यहां हमारे सामने पूर्ण, शुद्ध तथा सुसंगत रूप में यह नव 'ईस्क्रा'-पंथी दर्शन है कि चूंकि क्रांति बुर्जुआ क्रांति है, इसलिए हमें बुर्जुआ दक़ियानूसी के सामने सर झुका देना और उसके लिए रास्ता छोड़ देना चाहिए। यदि हम आंशिक रूप से भी, एक क्षण के लिए भी इस विचार के अधीन अपना पथ निर्धारित करते हैं कि हमारे शरीक होने से संभव है कि बुर्जुआ वर्ग मुंह फेर ले, तो ऐसा करके हम क्रांति का नेतृत्व पूर्ण रूप से बुर्जुआ वर्गों के हाथ में सौंप देते हैं। इस प्रकार, हम सर्वहारा वर्ग को पूरी तरह बुर्जुआ वर्ग के अधीन कर देते हैं (पर हमें पूरी "आलोचना की स्वतंत्रता" रहती है!!) और सर्वहारा वर्ग को दब्बू और विनीत बन जाने पर मजबूर कर देते हैं, ताकि उसकी वजह से बुर्जुआ वर्ग मुंह न फेर ले। हम सर्वहारा वर्ग की सबसे बुनियादी ज़रूरतों, अर्थात उसकी राजनीतिक ज़रूरतों को, जिन्हें अर्थवादियों तथा उनके नक़्क़ालों ने कभी ठीक से नहीं समझा, निर्वीर्य बना देते हैं, ताकि कहीं उनके कारण बुर्जुआ वर्ग मुंह न फेर ले। सर्वहारा वर्ग के लिए आवश्यक हद तक जनवाद की उपलब्धि के लिए क्रांतिकारी संघर्ष का मैदान पूरी तरह छोड़कर हम बुर्जुआ वर्ग के साथ सौदा करने के मैदान में आ जाते हैं और उसूलों के साथ, क्रांति के साथ विश्वासघात करके हम बुर्जुआ वर्ग की स्वैच्छिक सहमति के लिए ("कि वह कहीं मुंह न फेर ले") मूल्य चुकाते हैं।

दो संक्षिप्त पंक्तियों में काकेशियाई नव 'ईस्क्रा'-पंथियों ने क्रांति के साथ विश्वासघात करने और सर्वहारा वर्ग को बुर्जुआ वर्गों का तुच्छ दुमछल्ला बना देने की कार्यनीति का सारतत्व व्यक्त कर डाला है। ऊपर हमने प्रवृत्ति के रूप में नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की ग़लतियों से जो नतीजा निकाला था, वह अब हमारे सामने स्पष्ट तथा सुनिश्चित उसूल के रूप में खड़ा है, अर्थात यह कि राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग की दुम में घिसटते रहो। चूंकि जनतंत्र की स्थापना का नतीजा यह होगा (और हो रहा है: उदाहरण के लिए, श्री स्त्रूवे को ही लीजिये) कि बुर्जुआ वर्ग मुंह फेर

लेगा, इसलिए जनतंत्र के लिए लड़ाई का नाश हो। चूंकि सर्वहारा वर्ग की हर दृढ़ तथा सुसंगत जनवादी मांग दुनिया में हमेशा और हर जगह बुर्जुआ वर्ग को मुंह फेर लेने पर मजबूर करती है, इसलिए, मज़दूर साथियो, अपनी-अपनी मांद में दुबके पड़े रहो, केवल बाहर से ही काम करो, क्रांति के हित में "बुर्जुआ-राजकीय" व्यवस्था के साधनों तथा अस्त्रों का इस्तेमाल करने का स्वप्न न देखो और अपने लिए केवल "आलोचना की स्वतंत्रता" सुरक्षित रखो।

यहां पर "बुर्जुआ क्रांति" शब्द की अवधारणा में बुनियादी जालसाज़ी उभर आयी है। इन शब्दों की मार्तीनोव की या नव 'ईस्क्रा'-पंथी "अवधारणा" का सीधा परिणाम है बुर्जुआ वर्ग की ख़ातिर सर्वहारा वर्ग के ध्येय के साथ विश्वासघात करना।

जो लोग पुराने अर्थवाद को भूल चुके हैं, जो उसका अध्ययन या स्मरण नहीं करते, उनको अर्थवाद के वर्तमान विस्फोट को समझने में कठिनाई होगी। बर्नस्टीनवादी Credo[77] को याद कीजिये। "शुद्ध सर्वहारा" विचारों तथा कार्यक्रमों से लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला: हम सामाजिक-जनवादियों को केवल आर्थिक सवालों से, मज़दूरों के वास्तविक हेतु से, हर प्रकार की राजनीतिक तिकड़मों की आलोचना करने की स्वतंत्रता से, सामाजिक-जनवादी काम को सचमुच और गहरा बनाने से सरोकार रखना चाहिए। राजनीति उदारतावादियों के लिए है। भगवान हमें "क्रांतिकारिता" में फंसने से बचाये: उसकी वजह से बुर्जुआ वर्ग मुंह फेर लेगा। जो लोग पूरे Credo को या 'राबोचाया मीस्ल' के ६ वें अंक (सितंबर, १८६६) के पृथक परिशिष्ट को एक बार फिर पढ़ लेंगे, वे इस पूरी तर्क-विधि को समझ सकेंगे।

आज भी हम देखते हैं कि यही चीज़, बस ज़रा कुछ बड़े पैमाने पर, उस पूरी "महान" रूसी क्रांति के मूल्यांकन पर लागू की जा रही है—अफ़सोस, जिसे कट्टरपंथी कूपमंडूकता के सिद्धांतकारों ने भ्रष्ट कर दिया तथा पहले से ढोंग की हद तक नीचे पहुंचा दिया है! हम सामाजिक-जनवादियों को आलोचना की स्वतंत्रता से, वर्ग चेतना को और गहरा बनाने से, बाहर से कार्रवाई करने से सरोकार रखना चाहिए। उन्हें, बुर्जुआ वर्गों को कार्रवाई की स्वतंत्रता, क्रांतिकारी (इसे पढ़िये: उदारतावादी)

नेतृत्व के लिए उन्मुक्त क्षेत्र, ऊपर से "सुधार" लागू करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

मार्क्सवाद को बाज़ारू बनानेवाले इन लोगों ने आलोचना के हथियार की जगह हथियारों द्वारा आलोचना को रखने की आवश्यकता के बारे में मार्क्स के शब्दों पर कभी ग़ौर नहीं किया[78]। मार्क्स का व्यर्थ में नाम लेकर वे वास्तव में पूरी तरह फ़्रैंकफ़ुर्ट के उन बुर्जुआ बड़बोलों की भावना में कार्यनीतिक प्रस्ताव तैयार करते हैं, जो खुलकर निरंकुशता की आलोचना करते थे, जनवादी चेतना को और गहरी बनाते थे, पर यह नहीं समझ पाते थे कि क्रांति का ज़माना कार्रवाई का, ऊपर और नीचे, दोनों ही तरफ़ से कार्रवाई का ज़माना होता है। मार्क्सवाद को वितंडावाद बनाकर उन्होंने आगे बढ़े हुए, सबसे दृढ़संकल्पी और सबसे ओजस्वी क्रांतिकारी वर्ग की विचारधारा को इस वर्ग के उन सबसे अविकसित स्तरों की विचारधारा बना दिया है, जो कठिन क्रांतिकारी-जनवादी कार्यभारों से जी चुराते हैं और उन जनवादी कार्यभारों की चिंता करने का काम स्त्रूवे जैसे सज्जनों के लिए छोड़ देते हैं।

यदि बुर्जुआ वर्ग इस कारण क्रांति से मुंह फेर लेते हैं कि सामाजिक-जनवादी क्रांतिकारी सरकार में शामिल हो गये हैं, तो वे इस प्रकार क्रांति की "व्यापकता को कम कर देंगे।"

रूसी मज़दूरो, ज़रा यह सुनिये: यदि क्रांति स्त्रूवे जैसे सज्जनों के हाथों से संपन्न होगी, जो सामाजिक-जनवादियों से भयभीत नहीं होते और जो ज़ारशाही पर विजय प्राप्त करना नहीं, बल्कि उसके साथ समझौता कर लेना चाहते हैं, तो उसकी व्यापकता अधिक प्रबल होगी। यदि उक्त दो संभावित परिणामों से पहला घटित होता है, अर्थात यदि शीपोव मार्का "संविधान" के सिलसिले में एकतंत्र शासन के साथ राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग का कोई समझौता हो जाता है, तो क्रांति की व्यापकता अधिक प्रबल होगी!

जो सामाजिक-जनवादी पूरी पार्टी के पथप्रदर्शन के लिए प्रस्तावों में ऐसी शर्मनाक बातें लिखते हैं, या जो ऐसे "उचित" प्रस्तावों का अनुमोदन करते हैं, वे मार्क्सवाद की सप्राण भावना को घुन की तरह खा जानेवाले वितंडावाद में इतने अंधे हो जाते हैं कि वे यह भी नहीं देख

पाते कि उनके ये प्रस्ताव किस प्रकार उनकी अन्य सभी अच्छी-अच्छी बातों को कोरी लफ़्फ़ाज़ी में परिवर्तित कर देते हैं। 'ईस्क्रा' में उनका कोई भी लेख ले लीजिये, या हमारे नामी-गिरामी मार्तीनोव की लिखी कुख्यात पुस्तिका को ही ले लीजिये – तो वहां आप पढ़ेंगे **जन**-विद्रोह की बात, क्रांति को **परिणति तक** पहुंचाने की बात, असंगत बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ लड़ाई में **आम जनता** का सहारा लेने की चेष्टा की बात। परंतु ज्यों ही आप इस बात को स्वीकार कर लेते हैं या इस विचार का अनुमोदन करते हैं कि बुर्जुआ वर्ग के अलग हो जाने के फलस्वरूप "क्रांति की व्यापकता कम" हो जायेगी, ये सारी निहायत उम्दा बातें फ़ौरन घटिया लफ़्फ़ाज़ी बन जाती हैं। सज्जनो, दो में से एक ही बात हो सकती है: या तो हमें जनता के साथ मिलकर असंगत, स्वार्थी तथा कायर बुर्जुआ वर्ग के **बावजूद** क्रांति की तामील और ज़ारशाही पर पूर्ण विजय-प्राप्ति की कोशिश करनी चाहिए, या फिर हम इस "बावजूद" को नहीं स्वीकार करते और इस बात से डरते हैं कि बुर्जुआ वर्ग कहीं क्रांति से "मुंह" न "फेर ले", उस सूरत में हम बुर्जुआ वर्ग की ख़ातिर – असंगत, स्वार्थी तथा कायर बुर्जुआ वर्ग की ख़ातिर – सर्वहारा वर्ग तथा जनता के साथ विश्वासघात करते हैं।

मैंने जो कुछ कहा है, उसका ग़लत अर्थ लगाने की कोशिश न कीजिये। यह शोर मचाना मत शुरू कीजिये कि आप पर जान-बूझकर विश्वासघात करने का आरोप लगाया जा रहा है। नहीं, आप हमेशा आदतन ही दलदल की ओर जाते रहे हैं और अब पुराने ज़माने के उन अर्थवादियों की तरह दलदल में पहुंच गये हैं, जो मार्क्सवाद को और "गहरा" बनाने की ढलान पर तेज़ी से बेरोक-टोक लुढ़कते हुए क्रांति विरोधी, निष्प्राण तथा निर्जीव "बुद्धिमत्ता" पर जा पहुंचे थे।

सज्जनो, क्या आपने कभी इस बात पर विचार किया है कि वे कौन-सी वास्तविक सामाजिक शक्तियां हैं, जो "क्रांति की व्यापकता" को निर्धारित करती हैं? वैदेशिक राजनीति की, अंतर्राष्ट्रीय गुटबंदियों की शक्तियों को छोड़ दीजिये, जो इस समय हमारे लिए बहुत अनुकूल सिद्ध हुई हैं, पर जिन्हें हम अपनी बहस से बाहर कर देते हैं और ठीक ही बाहर कर देते हैं, क्योंकि सवाल रूस की अंदरूनी शक्तियों का है। इन

अंदरूनी सामाजिक शक्तियों पर नज़र डालिये। क्रांति के ख़िलाफ़ एकतंत्र शासन, दरबार, पुलिस, नौकरशाही, सेना और मुट्ठी भर ऊंचे ख़ानदान मोर्चा जमाये बैठे हैं। जनता का क्रोध जितना ही गहरा होता जाता है, सेना उतनी ही कम विश्वसनीय बनती जाती है और नौकरशाही उतनी ही अधिक ढुलमुल रहने लगती है। इसके अतिरिक्त कुल मिलाकर बुर्जुआ वर्ग इस समय क्रांति के पक्ष में है, वह बड़े उत्साह के साथ स्वाधीनता के पक्ष में भाषण दे रहा है, दिन-ब-दिन ज़्यादा मौक़ों पर वह जनता के नाम की, यहां तक कि क्रांति के नाम की दुहाई देने लगा है*। परंतु हम सभी मार्क्सवादी सिद्धांत के कारण और अपने उदारतावादियों, ज़ेम्स्त्वो-वालों और 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों को हर दिन, हर घड़ी देखते रहने के कारण इस बात को जानते हैं कि बुर्जुआ वर्ग क्रांति का समर्थन करने के मामले में असंगत, स्वार्थी और कायर होता है। ज्यों ही बुर्जुआ वर्ग के संकुचित, स्वार्थपूर्ण हित पूरे हो जायेंगे, ज्यों ही वह सुसंगत जनवाद से "मुंह फेर लेगा" (**और वह इस समय भी उससे मुंह फेरने लगा है!**), त्यों ही उसका मुख्य भाग अनिवार्यतः अपना रुख़ प्रतिक्रांति की तरफ़, एकतंत्र शासन की तरफ़, क्रांति के ख़िलाफ़ और जनता के ख़िलाफ़ कर लेगा। फिर रह जाती है "जनता", अर्थात सर्वहारा वर्ग और किसान: अकेले सर्वहारा वर्ग पर ही भरोसा किया जा सकता है कि वह आख़िर तक जायेगा, क्योंकि वह जनवादी क्रांति से बहुत आगे जाता है। यही कारण है कि सर्वहारा वर्ग सबसे आगे रहकर जनतंत्र के लिए लड़ता है और इस मूर्खतापूर्ण और अनुपयुक्त सलाह को तिरस्कार के साथ ठुकरा देता है कि उसे सावधान रहना चाहिए कि कहीं वह बुर्जुआ को डराकर भगा न दे। किसानों के अंदर बहुत बड़ी संख्या में अर्द्धसर्वहारा तथा टुटपुंजिया तत्व भी होते हैं। यह किसानों को भी अस्थिर बनाता है और सर्वहारा वर्ग को मजबूर कर देता है कि वह शुद्ध रूप से अपनी वर्गीय पार्टी में संगठित हो। परंतु किसानों की अस्थिरता बुर्जुआ वर्ग की अस्थिरता से

*इस प्रसंग में जोरेस के नाम श्री स्त्रूवे का खुला पत्र बहुत दिलचस्प है, जिसे अभी हाल में ही जोरेस ने *L'Humanité*[79] में और श्री स्त्रूवे ने 'ओस्वोबोज्देनिये' के ७२ वें अंक में प्रकाशित किया है।

मूलतः भिन्न है, क्योंकि इस समय किसानों को निजी मिल्कियत के नितांत संरक्षण में उतनी दिलचस्पी नहीं है, जितनी बड़ी-बड़ी जागीरों की ज़ब्ती में, जो निजी मिल्कियत का एक प्रमुख रूप हैं। इस वजह से किसान समाजवादी तो नहीं बनते और वे टुटपुंजिया बने रहते हैं, पर उनमें जनवादी क्रांति का पूर्ण तथा उग्रतम पक्षधर बनने की क्षमता होती है। किसान अनिवार्य रूप से इस तरह के पक्षधर बन जायेंगे, बशर्ते कि उनमें जागृति फूंकनेवाली क्रांतिकारी घटनाओं की अग्रगति को बुर्जुआ वर्ग का विश्वासघात और सर्वहारा वर्ग की पराजय असमय ही रोक न दें। इस शर्त के पूरा होने पर किसान अनिवार्य रूप से क्रांति और जनतंत्र की प्रमुख शक्ति बन जायेंगे, क्योंकि केवल पूर्णतः विजयी क्रांति ही किसानों को कृषि सुधारों के क्षेत्र में **सब कुछ** दे सकती है—**वह सब कुछ,** जो किसान चाहते हैं, जिसका वे स्वप्न देखते हैं और जिसकी सचमुच उन्हें (पूंजीवाद के उन्मूलन के लिए नहीं, जैसा कि "समाजवादी-क्रांतिकारी" समझते हैं, बल्कि) इसलिए ज़रूरत है कि वे अर्द्धभूदासता की दलदल से, उत्पीड़न तथा ग़ुलामी के अंधकार से बाहर निकल सकें, कि वे अपने जीवन की परिस्थितियों को उस हद तक सुधार सकें, जिस हद तक यह माल-उत्पादन की व्यवस्था के अंतर्गत संभव हो।

इसके अतिरिक्त क्रांति के साथ किसानों का लगाव केवल आमूल कृषि सुधार के कारण ही नहीं होता, बल्कि उनके आम तथा स्थायी हितों के कारण भी होता है। सर्वहारा वर्ग के कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष करने में भी किसानों को जनवाद की आवश्यकता होती है, क्योंकि केवल जनवादी व्यवस्था ही उनके हितों को सही-सही व्यक्त कर सकती है और जन-समूह के रूप में, बहुसंख्या के रूप में उनके प्रभुत्व को सुनिश्चित बना सकती है। किसानों में जितनी ही ज़्यादा जागृति पैदा होगी (और जापान के साथ युद्ध[80] के बाद से उनमें जितनी तेज़ी से जागति पैदा हो रही है, उसके बारे में वे अनेक लोग जानते भी नहीं, जो जागृति को स्कूली मानदंडों से नापने के आदी होते हैं), उतने ही अधिक सुसंगत रूप से तथा दृढ़संकल्प होकर वे परिपूर्ण जनवादी क्रांति का पक्ष लेंगे, क्योंकि वे बुर्जुआ वर्ग से भिन्न स्थिति में हैं, उन्हें जनता के प्रभुत्व से डरने का कोई कारण नहीं है, बल्कि उलटे उससे उनका लाभ होगा। किसान ज्यों ही अपने

भोले राजतंत्रवाद से छुटकारा पा जायेंगे, त्यों ही जनवादी जनतंत्र उनका आदर्श बन जायेगा, क्योंकि सट्टेबाजी करनेवाले बुर्जुआ वर्ग के चेतन राजतंत्रवाद (ऊपरी सदन, आदि सहित) का अर्थ किसानों के लिए यह होता है कि वे अधिकारों से उसी प्रकार वंचित रहें और उसी तरह उत्पीड़ित रहें तथा जाहिल बने रहें, जैसे इस समय हैं, बस अंतर केवल यह होगा कि इस सब बातों पर यूरोपीय सांविधानिक मुलम्मा थोड़ा-सा और चढ़ जायेगा।

यही कारण है कि वर्ग के रूप में बुर्जुआ वर्ग स्वभावतः तथा अनिवार्यतः उदारतावादी-राजतंत्रवादी पार्टी की छत्रछाया में आ जाने की चेष्टा करता है, जब कि किसान समूह के रूप में क्रांतिकारी तथा जनतंत्रवादी पार्टी के नेतृत्व में आने की चेष्टा करते हैं। यही कारण है कि बुर्जुआ वर्ग जनवादी क्रांति को उसकी चरम सीमा तक नहीं ले जा सकता, जबकि किसान वैसा करने की क्षमता रखते हैं और इसमें हमें उनकी सहायता करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए।

आपत्ति उठायी जाती है: इसमें सिद्ध करने की कोई बात नहीं है, यह सब तो ककहरा है, इसे सभी सामाजिक-जनवादी भली भांति समझते हैं। परंतु ऐसी बात नहीं है। जो लोग क्रांति से बुर्जुआ वर्ग के अलग हो जाने के कारण क्रांति की "व्यापकता के कम" हो जाने की बात कर सकते हैं, वे इस बात को नहीं समझते। इस प्रकार के लोग हमारे कृषि कार्यक्रम के कंठस्थ किये हुए शब्दों को दोहराते हैं, लेकिन उनका अर्थ समझते नहीं, अन्यथा वे सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व की अवधारणा से भयभीत न होते, जो पूरे मार्क्सवादी विश्व-दृष्टिकोण और हमारे कार्यक्रम का एक अनिवार्य निष्कर्ष है; अन्यथा वे महान रूसी क्रांति की व्यापकता को उन सीमाओं तक सीमित न कर देते, जहां तक कि बुर्जुआ वर्ग जाने को तैयार है। इस प्रकार के लोग अपने ठोस मार्क्सवाद विरोधी तथा क्रांति विरोधी प्रस्तावों द्वारा अपने अमूर्त मार्क्सवादी क्रांतिकारी शब्दों पर पानी फेर देते हैं।

जो लोग विजयी रूसी क्रांति में किसानों की भूमिका को सचमुच समझते हैं, वे कभी यह नहीं कह सकते कि यदि बुर्जुआ वर्ग उससे मुंह फेर लेगा, तो क्रांति की व्यापकता कम हो जायेगी। कारण कि रूसी क्रांति

में असली व्यापकता वस्तुतः उसी समय आनी शुरू होगी, उसमें बुर्जुआ-जनवादी क्रांति के युग में अधिकतम संभव क्रांतिकारी व्यापकता सचमुच उसी समय आयेगी, जब बुर्जुआ वर्ग उसकी तरफ़ से मुंह फेर लेगा और जब किसान सर्वहारा वर्ग के कंधे से कंधा मिलाकर सक्रिय क्रांतिकारियों के रूप में सामने आयेंगे। हमारी जनवादी क्रांति को सुसंगत रूप से अपनी आख़िरी मंज़िल तक पहुंचने के लिए ऐसी शक्तियों पर भरोसा करना चाहिए, जो बुर्जुआ वर्ग की अनिवार्य असंगति को निश्शक्त बना देने की क्षमता रखती हों (अर्थात ठीक इसी बात की क्षमता रखती हों कि उसे क्रांति से "मुंह फेर लेने के लिए मजबूर कर दें", जिससे 'ईस्क्रा' के काकेशियाई समर्थक नासमझी के कारण इतना डरते हैं)।

सर्वहारा वर्ग को चाहिए कि वह एकतंत्र के प्रतिरोध को बलपूर्वक कुचल देने और बुर्जुआ वर्ग की अस्थिरता को निश्शक्त बना देने के लिए किसान अवाम को अपने साथ मिलाकर जनवादी क्रांति को परिणति तक पहुंचाये। सर्वहारा वर्ग को चाहिए कि वह बुर्जुआ वर्ग के प्रतिरोध को बलपूर्वक कुचल देने और किसानों तथा टुटपुंजिया वर्ग की अस्थिरता को निश्शक्त बना देने के लिए आबादी के अर्द्धसर्वहारा तत्वों को अपने साथ मिलाकर समाजवादी क्रांति को पूरा करे। ये हैं सर्वहारा वर्ग के कार्यभार, जिन्हें नव 'ईस्क्रा'-पंथी क्रांति की व्यापकता से संबंधित अपनी सभी दलीलों तथा प्रस्तावों में इतने संकुचित रूप में प्रस्तुत करते हैं।

फिर भी एक बात नहीं भूलनी चाहिए, जिसे क्रांति की "व्यापकता" संबंधित बहसों में बहुधा आंखों से ओझल कर दिया जाता है। यह नहीं भूलना चाहिए कि सवाल कार्यभार की कठिनाइयों का नहीं, बल्कि इस बात का है कि हमें किस रास्ते पर चलकर उसका हल ढूंढ़ना और प्राप्त करना चाहिए। सवाल यह नहीं है कि क्रांति की व्यापकता को शक्तिशाली तथा अजेय बनाना आसान है या कठिन, बल्कि सवाल यह है कि इस व्यापकता को और शक्तिशाली बनाने के लिए हमें किस तरह काम करना चाहिए। हमारे विचारों में ठीक उसी बात पर मतभेद हैं कि हमारी सरगर्मियों का बुनियादी स्वरूप क्या हो, वे कौन-सी दिशा अपनायें। हम इस बात पर इसलिए ज़ोर देते हैं कि लापरवाह तथा बेईमान लोग अकसर

दो सवालों को एक में उलझा देते हैं, ग्रर्थात दिशानुसरण का सवाल, याने दो ग्रलग-ग्रलग मार्गों में से एक को चुनने का सवाल ग्रौर यह सवाल कि इस मार्ग पर चलने से लक्ष्य तक कितनी ग्रासानी से पहुंचा जा सकता है, या इस लक्ष्य की सिद्धि कितनी नज़दीक हो जायेगी।

हमने ग्रब से पहले जो कुछ कहा है, उसमें इस ग्राख़िरी सवाल पर विचार नहीं किया है, क्योंकि इस पर पार्टी में कोई झगड़ा या मतभेद नहीं पैदा हुग्रा। परंतु यह मानी हुई बात है कि प्रश्न स्वतः बेहद महत्वपूर्ण ग्रौर इस योग्य है कि सभी सामाजिक-जनवादी उसकी ग्रोर ग्रधिक से ग्रधिक गंभीरतापूर्वक ध्यान दें। केवल मज़दूर वर्ग को ही नहीं, बल्कि किसान ग्रवाम को भी ग्रांदोलन में खींचकर लाने में निहित कठिनाइयों को भुला देना ग्रक्षम्य ग्राशावादिता होगी। यही कठिनाइयां एकाधिक बार जनवादी क्रांति को सफल बनाने के प्रयासों को चकनाचूर कर चुकी हैं, ग्रौर उसमें सबसे ग्रधिक विजय ग्रसंगत तथा स्वार्थी बुर्जुग्रा वर्ग की हुई, क्योंकि उसने जनता के ख़िलाफ़ राजतंत्र का संरक्षण प्राप्त करके "परिस्थिति का पूरा लाभ उठाया" ग्रौर उसके साथ ही उदारतावाद... या 'ग्रोस्वोबोज्देनिये'-पंथ के रुझान की "मासूमियत को भी निभा दिया।" परंतु कठिनाई का ग्रर्थ ग्रसंभवता नहीं है। महत्वपूर्ण बात चुने गये मार्ग के सही होने का पक्का विश्वास है। यह विश्वास उस क्रांतिकारी शक्ति तथा उस क्रांतिकारी उत्साह को सौ गुना बढ़ा देता है, जो चमत्कार कर सकते हैं।

कौन-सा मार्ग चुना जाये, इस सवाल पर वर्तमान सामाजिक-जनवादियों के बीच कितने गहरे मतभेद हैं, यह बात रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के प्रस्ताव के साथ नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के काकेशियाई प्रस्ताव की तुलना करने से फ़ौरन समझ में ग्रा सकती है। कांग्रेस के प्रस्ताव में कहा गया है: बुर्जुग्रा वर्ग ग्रसंगत है, वह ग्रवश्य ही हमें क्रांति की उपलब्धियों से वंचित कर देने की कोशिश करेगा। इसलिए, मज़दूर साथियो, लड़ाई के लिए ग्रौर ज़ोरदार तैयारियां करो, ग्रपने को सशस्त्र करो, किसानों को ग्रपनी तरफ़ मिलाग्रो। हम बिना लड़े ग्रपनी क्रांति की उपलब्धियों को स्वार्थी बुर्जुग्रा वर्ग के हवाले नहीं कर देंगे। काकेशिया के नव 'ईस्क्रा'-पंथियों का प्रस्ताव कहता है: बर्जुग्रा वर्ग ग्रसंगत

है, हो सकता है कि वह क्रांति से मुंह फेर ले। इसलिए, मज़दूर साथियो, कृपा करके अस्थायी सरकार में शरीक होने की बात न सोचो, क्योंकि यदि तुमने ऐसा किया, तो बुर्जुआ वर्ग अवश्य ही मुंह फेर लेगा और उसके फलस्वरूप क्रांति की व्यापकता कम हो जायेगी!

एक पक्ष कहता है: असंगत बुर्जुआ वर्ग के प्रतिरोध या उसकी निष्क्रियता के बावजूद क्रांति को आगे बढ़ाओ, उसे उसकी परिणति तक ले जाओ।

दूसरा पक्ष कहता है: क्रांति को परिणति की मंज़िल तक स्वतंत्र रूप से ले जाने की बात भी न सोचो, क्योंकि यदि तुमने ऐसा किया, तो असंगत बुर्जआ वर्ग उसकी तरफ़ से मुंह फेर लेगा।

क्या ये दोनों मार्ग एक-दूसरे के बिलकुल विपरीत नहीं हैं? क्या यह बात स्पष्ट नहीं है कि एक कार्यनीति दूसरी को पूरी तरह वर्जित कर देती है? क्या यह बात स्पष्ट नहीं है कि पहली कार्यनीति क्रांतिकारी सामाजिक-जनवाद की एकमात्र सही कार्यनीति है, जबकि दूसरी कार्यनीति वास्तव में शुद्धतः 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी कार्यनीति है?

१३. निष्कर्ष। क्या हम जीतने का साहस कर सकते हैं?

जो लोग रूसी सामाजिक-जनवाद की दशा की सतही जानकारी रखते हैं या जो लोग अर्थवाद के दिनों से हमारी पार्टी के अंदरूनी संघर्ष के पूरे इतिहास को जाने बिना ही केवल तमाशबीनों की तरह ही हर बात के बारे में अपनी राय क़ायम करते हैं, वे बहुधा उन कार्यनीतिक मतभेदों को भी, जो अब, विशेष रूप से तीसरी कांग्रेस के बाद से, ठोस रूप धारण कर चुके हैं, यह सीधी-सादी दलील देकर टाल देते हैं कि हर सामाजिक-जनवादी आंदोलन में स्वाभाविक तथा अनिवार्य रूप से ऐसी दो धाराएं होती हैं, जिनके बीच समझौता बिलकुल संभव होता है। वे कहते हैं कि एक पक्ष साधारण, चालू, दैनिक काम पर, आंदोलन तथा प्रचार को विकसित करने, शक्तियों को तैयार करने, आंदोलन को गहरा बनाने, आदि की आवश्यकता पर विशेष ज़ोर देता है, जबकि दूसरा पक्ष आंदोलन

के जुझारू, आम राजनीतिक, क्रांतिकारी कार्यभारों पर ज़ोर देता है, सशस्त्र विद्रोह की आवश्यकता बताता है और क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व के लिए, अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के लिए नारे देता है। इन दोनों में से किसी भी पक्ष को, वे कहते हैं, अतिशयोक्ति से काम नहीं लेना चाहिए; अति बुरी होती है इस मामले में भी और उस मामले में भी (और आम तौर से दुनिया में हर जगह), आदि, आदि।

व्यावहारिक (और उद्धरण चिह्नों के भीतर "राजनीतिक") बुद्धिमानी की तुच्छ सचाइयां, जिनका इस प्रकार की दलीलों में निःसंदेह समावेश होता है, बहुधा पार्टी की तात्कालिक तथा तीव्र आवश्यकताओं को समझने की असमर्थता पर पर्दा डाल देती हैं। रूसी सामाजिक-जनवादियों के वर्तमान कार्यनीतिक मतभेदों को ही लीजिये। प्रतिदिन के बंधे-बंधाये काम पर विशेष ज़ोर देने से, जैसा कि हम कार्यनीति के बारे में नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की दलीलों में देखते हैं, स्वतः कोई ख़तरा बेशक नहीं पैदा हो सकता था और न ही कार्यनीतिक नारों के बारे में कोई मतभेद पैदा हो सकता था। परंतु ज्यों ही आप रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के प्रस्तावों की तुलना सम्मेलन के प्रस्तावों के साथ करते हैं, यह मतभेद ज्वलंत रूप से स्पष्ट हो जाता है।

तो फिर मसला क्या है? पहले तो यह कि आंदोलन में दो धाराओं और अतिवाद की हानिप्रदता के बारे में अमूर्त रूप में आम चर्चा करना ही काफ़ी नहीं है। हमें ठोस रूप से यह मालूम होना चाहिए कि किसी विशेष समय पर कोई विशेष आंदोलन किस व्याधि का शिकार है और इस समय पार्टी के सामने वास्तविक राजनीतिक ख़तरा क्या है। दूसरे, हमें यह जानना चाहिए कि अमुक कार्यनीतिक नारे पेश किये जाने से – या शायद अमुक नारे के न होने से – किन वास्तविक राजनीतिक शक्तियों को फ़ायदा हो रहा है। नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की बात सुनकर तो हम इस नतीजे पर पहुंचेंगे कि सामाजिक-जनवादी पार्टी के सामने आंदोलन तथा प्रचार को, आर्थिक संघर्ष को तथा बुर्जुआ जनवाद की आलोचना को तिलांजलि दे देने का ख़तरा है, सैनिक तैयारियों, सशस्त्र आक्रमणों, सत्ता पर अधिकार करने, आदि में ज़रूरत से ज़्यादा लीन हो जाने का ख़तरा है। परंतु वास्तव में पार्टी की बिलकुल ही दूसरी दिशा से असली ख़तरा

है। जो भी आंदोलन की दशा को कुछ नज़दीक से जानता है, जो भी उस पर ध्यानपूर्वक तथा विचारपूर्वक नज़र रखता है, वह नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की आशंकाओं के हास्यास्पद पहलू को देखे बिना नहीं रह सकता। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का सारा काम पूरी तरह ऐसे पक्के तथा निश्चित रूप में ढल चुका है, जिससे इस बात की बिलकुल गारंटी हो जाती है कि हमारा ध्यान मुख्यतः आंदोलन तथा प्रचार पर, छोटी और बड़ी सभाओं के आयोजन पर, परचों तथा पुस्तिकाओं के वितरण पर, आर्थिक संघर्ष में सहायता देने और उसके नारों के पक्ष में आवाज़ उठाने पर केंद्रित रहेगा। एक भी पार्टी समिति, एक भी ज़िला समिति, एक भी केंद्रीय सभा या एक भी फ़ैक्टरी ग्रुप ऐसा नहीं है, जिसमें निनानवे प्रतिशत ध्यान, शक्ति तथा समय हमेशा और लगातार इन कामों पर न दिया जाता हो, जो पिछली शताब्दी के अंतिम दशक से दृढ़ रूप से स्थापित हो चुके हैं। केवल वे ही लोग इस बात को नहीं जानते, जो आंदोलन से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। जब नव 'ईस्क्रा'-पंथी बहुत महत्वपूर्ण ढंग से घिसे-पिटे सत्यों को दुहराते हैं, तो उससे केवल बहुत भोले या कम जानकार लोग ही प्रभावित हो सकते हैं।

असलियत यह है कि हमारे बीच विद्रोह के कार्यभारों के प्रति, आम राजनीतिक नारों के प्रति, पूरी जन-क्रांति के नेतृत्व के सवाल के प्रति आवश्यकता से अधिक उत्साह का अभाव ही नहीं दिखाई देता, बल्कि इसके विपरीत ठीक इस मामले में ही हमारा **पिछड़ापन** सबसे अधिक ज्वलंत रूप में उभरकर सामने आता है, वही हमारी सबसे बड़ी कमज़ोरी और आंदोलन के लिए असली ख़तरा है, जो, संभव है, करनी में क्रांतिकारी होने के स्तर से नीचे गिरकर केवल कथनी में क्रांतिकारी रह जाये, जो कहीं-कहीं हो भी रहा है। उन सैकड़ों संगठनों, दलों और मंडलों में, जो पार्टी का काम कर रहे हैं, आपको कोई भी ऐसा नहीं मिलेगा, जिसने अपनी स्थापना के समय से ही उस प्रकार का नित्यप्रति का काम न किया हो, जिसके बारे में नव 'ईस्क्रा' के बुद्धिमान अब इस तरह बात करते हैं, जैसे उन्होंने किन्हीं नये सत्यों का उद्घाटन किया हो। दूसरी तरफ़, आपको ऐसे दल तथा मंडल नगण्य संख्या में मिलेंगे, जिन्होंने सशस्त्र विद्रोह के कार्यभार समझ लिये हों, जिन्होंने उन कार्यभारों को पूरा करना शुरू

कर दिया हो और जिन्होंने ज़ारशाही के ख़िलाफ़ पूरी जन-क्रांति का नेतृत्व करने की आवश्यकता को और उस उद्देश्य से दूसरे नारे न देकर कुछ निश्चित प्रगतिशील नारे ही देने की आवश्यकता को महसूस कर लिया हो।

हम प्रगतिशील तथा असली क्रांतिकारी कामों में बेहद पिछड़ गये हैं और ढेरों मामलों में हमें उनका एहसास तक नहीं हुआ है। जहां-तहां हम यह भी नहीं देख पाये हैं कि इस सिलसिले में हमारे पिछड़ेपन के कारण क्रांतिकारी बुर्जुआ जनवाद ने मज़बूती हासिल की है। परंतु नव 'ईस्क्रा' के लेखक घटनाक्रम और समय के तक़ाज़ों की तरफ़ से मुंह फेरकर आग्रह-पूर्वक यही दोहराते रहते हैं: जो कुछ पुराना है, उसे न भूलो! जो कुछ नया है, उसके प्रवाह में न बह जाओ! सम्मेलन के सभी महत्वपूर्ण प्रस्तावों का मुख्य अपरिवर्तनीय राग यही है, जबकि कांग्रेस के प्रस्तावों में आप ठीक वैसे ही अपरिवर्तित रूप में यह पढ़ते हैं: जो कुछ पुराना है, उसकी पुष्टि करते हुए (और ठीक इसलिए रुककर उसका चर्वित-चर्वण न करते हुए कि वह पुराना है और साहित्य, प्रस्तावों तथा अनुभव द्वारा निर्णीत और पुष्ट किया जा चुका है) हम नया कार्यभार सामने रखते हैं, उस-की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं, नया नारा देते हैं और यह मांग करते हैं कि जो सामाजिक-जनवादी सचमुच क्रांतिकारी हैं, वे इस नारे को व्यव-हार में पूरा करने के लिए फ़ौरन जुट जायें।

सामाजिक-जनवाद की कार्यनीति की दो धाराओं के प्रश्न के संबंध में परिस्थिति दरअसल ऐसी ही है। क्रांतिकारी काल ने हमारे सामने नये कार्यभार रखे हैं, जिन्हें बिलकुल ही अंधे लोग नहीं देख पायेंगे। कुछ सामाजिक-जनवादी बिना किसी संकोच के इन कार्यभारों को स्वीकार करते हैं और उन्हें यह कहकर अपना तात्कालिक लक्ष्य घोषित करते हैं: सशस्त्र विद्रोह में कोई विलंब नहीं किया जा सकता, फ़ौरन और पूरा ज़ोर लगाकर उसके लिए अपने आपको तैयार करो, याद रखो कि निर्णायक विजय के लिए यह अनिवार्य है, जनतंत्र का, अस्थायी सरकार का, सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व का नारा दो। दूसरे सामाजिक-जनवादी पीछे हट जाते हैं, एक ही जगह चक्कर लगाते रहते हैं, नारे देने के बजाय भूमिकाएं लिखते हैं, जो कुछ पुराना है, उसकी

पुष्टि करते हुए नये की ओर ध्यान देने के बजाय पुराने का नागवार और दीर्घसूत्री ढंग से चर्वित-चर्वण करते रहते हैं। निर्णायक विजय की परिस्थितियां निर्धारित करने में असमर्थ, पूर्ण विजय की उपलब्धि की तमन्ना के अनुकूल एकमात्र नारे देने में असमर्थ, वे जो कुछ नया है, उससे कतराने के लिए तरह-तरह के बहाने गढ़ते रहते हैं।

इस दुमछल्लेपन का राजनीतिक परिणाम हमारी आंखों के सामने है। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की "बहुसंख्या" और क्रांतिकारी बुर्जुआ जनवाद के बीच सुलह-समझौते की कपोल-कल्पना अभी तक कपोल-कल्पना ही बनी हुई है, जिसकी पुष्टि किसी भी राजनीतिक तथ्य, "बोल्शेविकों" के किसी भी महत्वपूर्ण प्रस्ताव, या रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस की किसी भी कार्रवाई द्वारा नहीं हुई है। दूसरी ओर, अवसरवादी, राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग, जिसका प्रतिनिधित्व 'ओस्वोबोज्देनिये' करता है, बहुत समय से नव 'ईस्क्रा'-पंथी "उसूली" प्रवृत्तियों का **स्वागत करता आया है** और अब उनके सहारे अपना उल्लू सीधा कर भी रहा है, "गोपनीयता" तथा "उपद्रवों" के ख़िलाफ़, क्रांति के "तकनीकी" पहलू की अतिरंजना के ख़िलाफ़, सशस्त्र विद्रोह का नारा खुले तौर पर देने के ख़िलाफ़, अतिवादी मांगों की "क्रांतिकारिता", इत्यादि के ख़िलाफ़ उनके शब्दों तथा "विचारों" को अंगीकार कर रहा है। काकेशिया में "मेंशेविक" सामाजिक-जनवादियों के एक पूरे सम्मेलन का प्रस्ताव और नव 'ईस्क्रा' के संपादकमंडल द्वारा उस प्रस्ताव का अनुमोदन इन सब बातों का असंदिग्ध रूप से राजनीतिक निचोड़ पेश करते हैं: यदि सर्वहारा वर्ग क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व में भाग ले, तो कहीं बुर्जुआ वर्ग मुंह न फेर ले! यही है उसका पूरा सारतत्व। इस बात से सर्वहारा वर्ग को राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग का दुमछल्ला बना देने का काम अंतिम रूप से पूरा हो जाता है। वास्तव में नव 'ईस्क्रा' के दुमछल्लेपन का **राजनीतिक महत्व** इस बात से, किसी एक व्यक्ति के इत्तफ़ाक़िया वक्तव्य से नहीं, बल्कि एक समूची प्रवृत्ति द्वारा विशेष रूप से अनुमोदित प्रस्ताव से सिद्ध हो जाता है।

जो भी इन तथ्यों पर विचार करेगा, वह सामाजिक-जनवादी आंदोलन के दो पक्षों और उसकी दो प्रवृत्तियों की ओर हर बात किये जानेवाले

संकेत के वास्तविक महत्व को समझ सकेगा। बड़े पैमाने पर इन प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के लिए बर्नस्टीनवाद को ले लीजिये। बर्नस्टीनवादी हूबहू इसी ढंग से इस बात पर ज़ोर देते थे और दे रहे हैं कि सर्वहारा वर्ग की सच्ची आवश्यकताओं को, उसकी शक्ति-वृद्धि, सभी कामों के गहनीकरण, नये समाज के तत्वों की तैयारी और आंदोलन तथा प्रचार संबंधी कार्यभारों को केवल वे ही समझते हैं। बर्नस्टीन कहते हैं: हम मांग करते हैं कि जो कुछ मौजूद है, उसे स्वीकार किया जाये! और इस प्रकार वे "अंतिम लक्ष्य" से रहित "आंदोलन" को मान्यता देते हैं, केवल प्रतिरक्षात्मक कार्यनीति को मान्यता देते हैं, इस भय की कार्यनीति का प्रचार करते हैं कि "कहीं बुर्जुआ वर्ग मुंह न फेर ले।" बर्नस्टीन-वादियों ने भी क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों के "जैकोबिनवाद" के बारे में, "मज़दूरों की पहलक़दमी" को न समझ पानेवाले "साहित्यिकों", इत्यादि के बारे में शोर मचाया था। वास्तव में, जैसा कि सभी जानते हैं, क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों ने प्रतिदिन के छोटे कामों को, शक्तियों की तैयारी, आदि को त्यागने की बात कभी सोची तक नहीं। उन्होंने केवल इस बात की मांग की थी कि अंतिम लक्ष्य को स्पष्ट रूप से समझा जाये, क्रांतिकारी कामों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जाये। वे अर्द्धसर्व-हारा तथा अर्द्धटुटपुंजिया स्तरों को सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी स्तर तक उठाना चाहते थे, न कि उक्त स्तर को गिराकर इस प्रकार के अवसरवादी विचारों के स्तर पर पहुंचाना कि "कहीं बुर्जुआ वर्ग मुंह न फेर ले।" पार्टी के बुद्धिजीवी-अवसरवादी पक्ष और सर्वहारा-क्रांतिकारी पक्ष के इस झगड़े की सबसे उभरी हुई अभिव्यक्ति इस प्रश्न के रूप में हुई: dürfen wir siegen? "क्या हम जीतने का साहस कर सकते हैं?" क्या जीतना हमारे लिए मुनासिब है? क्या जीत हमारे लिए ख़तरनाक नहीं होगी? क्या हमें जीतना चाहिए? परंतु इस प्रश्न को, जो पहली बार देखने में इतना विचित्र प्रतीत होता है, इसलिए उठाया गया और उठाना पड़ा कि अवसरवादी विजय से डरते थे, सर्वहारा वर्ग को उससे डराकर भगाये दे रहे थे, यह भविष्यवाणी कर रहे थे कि उससे हम मुसीबत में फंस जायेंगे और सीधे-सीधे उसका आह्वान करनेवाले नारों का मज़ाक़ उड़ा रहे थे।

बुद्धिजीवी-अवसरवादी और सर्वहारा-क्रांतिकारी प्रवृत्तियों के बीच वही बुनियादी विभाजन हमारे अंदर भी मौजूद है, परंतु एक बहुत ठोस अंतर यह है कि हमारे सामने समाजवादी क्रांति का नहीं, बल्कि जनवादी क्रांति का सवाल है। यह सवाल कि "क्या हम जीतने का साहस कर सकते हैं?", जो पहली बार देखने में इतना बेतुका मालूम होता है, हमारे बीच भी उठाया गया है। यह सवाल मार्तीनोव ने अपनी 'दो अधिनायकत्व' नामक रचना में उठाया था, जिसमें उन्होंने यह भविष्यवाणी की थी कि यदि हमने विद्रोह की तैयारी अच्छी तरह की और उसे बिलकुल सफलतापूर्वक पूरा कर लिया, तो हम भारी मुसीबत में फंस जायेंगे। यह प्रश्न अस्थायी क्रांतिकारी सरकार से संबंधित सारे नव 'ईस्क्रा'-पंथी साहित्य में उठाया गया है और हर समय इस बात के लिए बार-बार, यद्यपि निष्फल, कोशिशें की गयी हैं कि बुर्जुआ-अवसरवादी सरकार में मिलेरां के शरीक होने और टुटपुंजिया क्रांतिकारी सरकार में वर्लिन के भाग लेने को[81] समान ठहराया जाये। यह बात प्रस्ताव में शब्दबद्ध कर दी गयी है: "कहीं बुर्जुआ वर्ग मुंह न फेर ले।" हालांकि, उदाहरण के लिए, काउत्स्की अब व्यंग करने की कोशिश करते हैं और कहते हैं कि अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के बारे में हमारा झगड़ा भालू को मारने से पहले ही उसकी खाल का बंटवारा कर लेने के समान है, ताहम इस व्यंग से केवल यही सिद्ध होता है कि बुद्धिमान और क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादी भी केवल सुनी-सुनायी जानकारी के आधार पर किसी चीज़ के बारे में बात करने में ऐसी ग़लती में फंस सकते हैं। जर्मन सामाजिक-जनवाद अभी अपने भालू को मारने (समाजवादी क्रांति पूरी करने) के इतना निकट नहीं पहुंचा है, परंतु यह बहस कि क्या हम भालू को मारने का "साहस कर सकते हैं" उसूलों और व्यावहारिक राजनीति की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है। रूसी सामाजिक-जनवादी अभी इतना ताक़तवर होने के कहीं निकट भी नहीं पहुंचे हैं कि वे "अपने भालू को मार सकें" (जनवादी क्रांति कर सकें), परंतु यह सवाल कि क्या हम उसे मारने का "साहस कर सकते हैं" रूस के पूरे भविष्य के लिए और रूसी सामाजिक-जनवाद के भविष्य के लिए बहुत अधिक महत्व रखता है। जब तक हमें यह विश्वास न हो कि हम जीतने का "साहस कर सकते हैं", तब तक सेना

को उत्साहपूर्वक तथा सफलतापूर्वक न तो एकत्रित किया जा सकता है, न उसका नेतृत्व किया जा सकता है।

हमारे पुराने अर्थवादियों को ले लीजिये। वे भी यही शोर मचाते थे कि उनके विरोधी षड्यंत्रकारी हैं, जैकोबिन हैं (देखें 'राबोचेये देलो', विशेषत: उसका अंक १० और दूसरी कांग्रेस[82] में कार्यक्रम पर होनेवाली बहस में मार्तीनोव का भाषण), कि राजनीति के मैदान में कूदकर वे अपने आपको जनता से अलग कर रहे हैं, कि वे मज़दूर आंदोलन की बुनियादी बातों को भूलते जा रहे हैं, मज़दूरों की पहलक़दमी की उपेक्षा कर रहे हैं, इत्यादि। वास्तव में "मज़दूरों की पहलक़दमी" के ये समर्थक बुद्धिजीवी-अवसरवादी थे, जो सर्वहारा वर्ग के कार्यभारों की अपनी संकुचित तथा दक़ियानूसी अवधारणा मज़दूरों पर थोप देते थे। वास्तव में अर्थवाद के विरोधियों ने, जैसा कि हर आदमी पुराने 'ईस्क्रा' से देख सकता है, सामाजिक-जनवादी काम के किसी भी पहलू की न तो उपेक्षा की और न उसे पीछे फेंका, न ही आर्थिक संघर्ष को ज़रा भी भुलाया। इसके साथ ही वे फ़ौरी तथा तात्कालिक राजनीतिक कार्यभारों को उनकी पूरी व्यापकता के साथ प्रस्तुत कर सके और उन्होंने मज़दूरों की पार्टी को उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग का "आर्थिक" दुमछल्ला बना देने का विरोध किया।

अर्थवादियों ने यह रट रखा था कि राजनीति अर्थनीति पर आधारित है और उन्होंने इसका मतलब यह "समझ लिया था" कि राजनीतिक संघर्ष को आर्थिक संघर्ष के स्तर पर उतार देना चाहिए। नव 'ईस्क्रा'-पंथियों ने यह रट रखा है कि जनवादी क्रांति का आर्थिक आधार बुर्जुआ क्रांति है और उन्होंने इसका अर्थ यह "समझ लिया है" कि सर्वहारा वर्ग के जनवादी उद्देश्यों को गिराकर बुर्जुआ उदारता के स्तर पर ले आना चाहिए, उस स्तर पर, जिससे आगे जाने पर "बुर्जुआ वर्ग मुंह फेर लेगा।" काम को अधिक गहरा बनाने के बहाने, मज़दूरों की पहलक़दमी की भावना को प्रोत्साहित करने और शुद्ध रूप से वर्ग नीति का अनुसरण करने के बहाने अर्थवादी वास्तव में मज़दूर वर्ग को उदारतावादी-बुर्जुआ राजनीतिज्ञों के हाथों में सौंप रहे थे, अर्थात वे पार्टी को एक ऐसे मार्ग पर लिये जा रहे थे, जिसका वस्तुपरक अर्थ बिलकुल यही था। उन्हीं

बहानों का सहारा लेकर नव 'ईस्क्रा'-पंथी वास्तव में बुर्जुआ वर्ग की ख़ातिर जनवादी क्रांति में सर्वहारा वर्ग के हितों के साथ विश्वासघात कर रहे हैं, अर्थात वे पार्टी को एक ऐसे रास्ते पर लिये जा रहे हैं, जिसका वस्तु-परक अर्थ ठीक यही है। अर्थवादी यह सोचते थे कि राजनीतिक संघर्ष में नेतृत्व करना सामाजिक-जनवादियों का नहीं, बल्कि उदारतावादियों का काम है। नव 'ईस्क्रा'-पंथी सोचते हैं कि जनवादी क्रांति का सक्रिय रूप से संचालन करना सामाजिक-जनवादियों का नहीं, बल्कि वास्तव में जन-वादी बुर्जुआ वर्ग का काम है, क्योंकि सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व और प्रमुख भूमिका से क्रांति की "व्यापकता कम हो जायेगी।"

सारांश यह कि नव 'ईस्क्रा'-पंथी अर्थवाद के नक़्क़ाल हैं, दूसरी पार्टी कांग्रेस में अपनी उत्पत्ति की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि इस समय जनवादी क्रांति में सर्वहारा वर्ग के कार्यनीतिक कामों को पेश करने के अपने ढंग की दृष्टि से भी। वे भी पार्टी का बुद्धिजीवी-अवसरवादी पक्ष हैं। संगठन के क्षेत्र में वे बुद्धिजीवियों का अराजकतावादी व्यक्तिवाद लेकर दाख़िल हुए और "विसंगठन-प्रक्रिया" पर पहुंच गये, उन्होंने सम्मेलन द्वारा स्वीकृत "नियमावली"[83] में यह बात जोड़ दी कि पार्टी के साहित्य को पार्टी के संगठन से अलग कर दिया जाये, चुनावों की अप्रत्यक्ष तथा प्रायः चारमंज़िली पद्धति जारी की जाये, जनवादी प्रतिनिधित्व के बजाय बोना-पार्ती मतसंग्रह की पद्धति लागू की जाये और अंत में अंश तथा पूर्ण के बीच "समझौतों" का उसूल लागू किया जाये। पार्टी की कार्यनीति में वे उसी ढलान पर नीचे की तरफ़ फिसलते गये। "ज़ेम्स्त्वो आंदोलन की योजना"[84] में उन्होंने घोषणा की कि ज़ेम्स्त्वोवालों के सामने किये जाने-वाले भाषण "उच्चतम कोटि के प्रदर्शन" हैं और उन्हें राजनीतिक रंग-मंच पर (९ जनवरी से फ़ौरन पहले!) केवल दो सक्रिय शक्तियां दिखाई दीं – सरकार और बुर्जुआ जनवाद। उन्होंने जनता को हथियारबंद करने के तात्कालिक कार्य को प्रत्यक्ष तथा व्यावहारिक नारे की जगह उसमें स्वयं अपने को हथियारबंद करने की धधकती कामना से लैस करने की अपील करके "और गहन" बना दिया। अब उन्होंने अपने आधिका-रिक प्रस्तावों में सशस्त्र विद्रोह, अस्थायी सरकार की स्थापना और क्रांति-कारी-जनवादी अधिनायकत्व से संबंधित कार्यभारों को विकृत और दुर्बल

बना दिया है। "कहीं बुर्जुआ वर्ग मुंह न फेर ले"–उनके आख़िरी प्रस्ताव की यह टेक इस प्रश्न पर भरपूर प्रकाश डालती है कि उनका मार्ग पार्टी को कहां ले जा रहा है।

अपने सामाजिक तथा आर्थिक अंतर्य में रूस की जनवादी क्रांति बुर्जुआ क्रांति है। इस सही मार्क्सवादी प्रस्थापना को केवल दोहराना ही काफ़ी नहीं है। उसे समझने में समर्थ होना आवश्यक है और राजनीतिक नारों पर लागू करने में समर्थ होना आवश्यक है। उत्पादन के वर्तमान, अर्थात पूंजीवादी संबंधों पर आधारित आम तौर से सारी राजनीतिक स्वतंत्रता बुर्जुआ स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता की मांग सबसे पहले बुर्जुआ वर्ग के हितों को व्यक्त करती है। उसी के प्रतिनिधियों ने पहले-पहल यह मांग उठायी थी। उसके समर्थकों ने जो स्वतंत्रता हासिल की, उसका उपयोग हर जगह उन्होंने मालिकों की तरह किया है, उसे संयत तथा नपे-तुले बुर्जुआ सांचे में ढाला, उसे क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग के शांति-काल में बहुत ही सूक्ष्म और तूफ़ानी दौर में बहुत ही पाशविक दमन के साथ जोड़ा है।

परंतु इस बात से केवल विद्रोही नरोदवादी, अराजकतावादी और अर्थवादी ही यह निष्कर्ष निकाल सकते थे कि स्वतंत्रता के लिए संघर्ष नहीं चलाया जाना चाहिए या उसे बहुत अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। ये बुद्धिजीवी-दक़ियानूसी शिक्षाएं सर्वहारा वर्ग पर उसकी इच्छा के विरुद्ध केवल कुछ ही समय के लिए थोपी जा सकती थीं। सर्वहारा वर्ग ने स्वभावतः इस बात को महसूस किया है कि उसे राजनीतिक स्वाधीनता की ज़रूरत है, औरों से ज़्यादा ज़रूरत है, इस बात के बावजूद ज़रूरत है कि उसका तात्कालिक परिणाम यही होगा कि बुर्जुआ वर्ग और मज़बूत और संगठित होगा। सर्वहारा वर्ग वर्ग संघर्ष से कतराकर नहीं, बल्कि उसे विकसित करके, उसे व्यापक बनाकर, उसकी चेतना को, उसके संगठन तथा संकल्प को बढ़ाकर अपनी मुक्ति की प्रतीक्षा करता है। जो भी राजनीतिक संघर्ष के कार्यभारों के महत्व को घटाता है, वह सामाजिक-जनवादी को जनता के प्रवक्ता के स्तर से गिराकर ट्रेड-यूनियन का सेक्रेटरी बना देता है। जो भी जनवादी बुर्जुआ क्रांति में सर्वहारा वर्ग के कार्यभारों के महत्व को घटाता है, वह सामाजिक-जनवादी को जनता की क्रांति के

नेता के पद से गिराकर एक स्वतंत्र मज़दूर यूनियन के नेता के पद पर पहुंचा देता है।

जी हां, **जनता की** क्रांति के। सामाजिक-जनवाद "जनता" शब्द के बुर्जुआ-जनवादी दुरुपयोग के ख़िलाफ़ बिलकुल ठीक लड़ा है और इस समय भी लड़ रहा है। वह मांग करता है कि इस शब्द का उपयोग जनता के बीच पाये जानेवाले वर्ग विरोधों को समझने की असमर्थता को छिपाने के लिए न किया जाये। वह बिना किसी लाग-लपेट के सर्वहारा वर्ग की पार्टी के लिए पूर्ण वर्गीय स्वाधीनता की आवश्यकता पर पूरी तरह ज़ोर देता है। परंतु वह "जनता" को "वर्गों" में इस उद्देश्य से विभाजित नहीं करता कि अग्रगामी वर्ग अपने ही घरौंदे में बंद होकर रह जाये, अपने आपको संकुचित उद्देश्यों के भीतर सीमित कर ले और इस भय से अपनी सरगर्मियों को दुर्बल बना दे कि कहीं संसार के आर्थिक शासक मुंह न फेर लें, बल्कि इस उद्देश्य से कि अग्रगामी वर्ग, जो बीच के वर्गों की तरह अर्द्धमनस्कता, ढुलमुलपन तथा अनिश्चयता का शिकार नहीं होता, अधिक शक्ति तथा उत्साह के साथ पूरी जनता के ध्येय के लिए, पूरी जनता का नेतृत्व करते हुए लड़ सके।

इसी बात को आजकल के नव 'ईस्क्रा'-पंथी बहुधा समझ नहीं पाते, जो जनवादी क्रांति में सक्रिय राजनीतिक नारों को पेश करने के स्थान पर केवल "वर्गीय" शब्द को खोखले पंडिताऊ ढंग से सभी लिंग-रूपों तथा सभी कारक-रूपों में दोहराते रहते हैं!

जनवादी क्रांति बुर्जुआ क्रांति है। आम भूमि पुनर्वितरण का या ज़मीन और आज़ादी का नारा – उस किसान अवाम का सबसे व्यापक नारा, जो उत्पीड़ित और जाहिल होते हुए भी बड़ी व्यग्रता के साथ प्रकाश तथा सुख के लिए लालायित है – बुर्जुआ नारा है। परंतु हम मार्क्सवादियों को यह जानना चाहिए कि सर्वहारा वर्ग तथा किसानों की वास्तविक स्वतंत्रता के लिए बुर्जुआ स्वतंत्रता तथा बुर्जुआ प्रगति के रास्ते को छोड़कर न तो कोई दूसरा रास्ता है और न हो ही सकता है। हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता के अलावा, जनवादी जनतंत्र के अलावा, सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व के अलावा इस समय समाजवाद को निकटतर लाने का न तो कोई दूसरा

साधन है और न हो ही सकता है। अग्रगामी और एकमात्र क्रांतिकारी, कोई शर्त न रखनेवाले, कोई शंका न रखनेवाले, पीछे मुड़कर न देखनेवाले क्रांतिकारी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में हमें यथासंभव अधिक से अधिक व्यापक रूप में, अधिक से अधिक साहस के साथ तथा अधिक से अधिक पहलक़दमी दिखाते हुए जनवादी क्रांति के कार्यभारों को सारी जनता के सामने रखना होगा। इन कार्यभारों के महत्व को गिराना मार्क्सवाद को सैद्धांतिक रूप में एक ढोंग बना देना है, उसे दक़ियानूसी ढंग से विकृत करना है, जबकि व्यावहारिक-राजनीतिक रूप में उसका अर्थ क्रांति के हेतु को बुर्जुआ वर्ग के हाथों में सौंप देना है, जो अनिवार्यतः क्रांति को सुसंगत रूप से पूरा करने के काम से मुंह फेर लेगा। क्रांति की पूर्ण विजय के रास्ते में जो कठिनाइयां सामने आयेंगी, वे बहुत बड़ी हैं। यदि अपनी शक्ति भर सब कुछ करने के बाद भी प्रतिक्रियावादी शक्तियों के प्रतिरोध, बुर्जुआ वर्ग के विश्वासघात और अवाम के अज्ञान के कारण सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधियों के प्रयास विफल हो जाते हैं, तो उसके लिए उन्हें कोई भी दोष नहीं दे सकता। परंतु यदि सामाजिक-जनवाद इसलिए जनवादी विद्रोह की क्रांतिकारी शक्ति को कम करता है और क्रांतिकारी जोश को ठंडा करता है कि वह जीतने से डरता है, कि उसे इस बात का ध्यान रखना है कि कहीं बुर्जुआ वर्ग मुंह न फेर ले, तो सभी लोग और सबसे बढ़कर वर्ग-चेतन सर्वहारा वर्ग उसकी निंदा करेगा।

मार्क्स ने कहा था कि क्रांतियां इतिहास के इंजिन होती हैं[85]। क्रांतियां उत्पीड़ितों तथा शोषितों के उत्सव होती हैं। जनसाधारण और किसी भी समय इतने सक्रिय रूप से एक नयी समाज-व्यवस्था के रचयिताओं के रूप में सामने आने की स्थिति में नहीं होते, जितना कि क्रांति के समय। यदि क्रमिक विकास के संकुचित तथा दक़ियानूसी पैमाने से नापा जाये, तो ऐसे मौक़ों पर जनता चमत्कार कर सकती है। परंतु ऐसे मौक़े पर क्रांतिकारी पार्टियों के नेताओं को भी अपने उद्देश्य अधिक विशद तथा साहसपूर्ण ढंग से सामने रखने चाहिए, ताकि उनके नारे हमेशा जनसाधारण की क्रांतिकारी पहलक़दमी से आगे रहें, उनके लिए प्रकाश-स्तंभ का काम करें, हमारे जनवादी तथा समाजवादी आदर्श को पूरी विशालता तथा भव्यता के साथ उनके सामने प्रस्तुत करें और उन्हें पूर्ण, परम तथा निर्णायक

विजय के लिए सबसे छोटा तथा सबसे सीधा रास्ता दिखायें। क्रांति तथा सीधे मार्ग के भय के कारण समझौतेपरस्त, चक्करदार तथा टेढ़े-मेढ़े रास्ते ईजाद करने का कार्यभार हम 'ग्रोस्वोबोज्देनिये'-पंथी बुर्जुआ वर्ग के अवसरवादियों पर छोड़ दें। यदि हमें ज़बर्दस्ती इन रास्तों पर घिसटने पर मजबूर कर दिया गया, तो हम अपना कर्त्तव्य छोटे-मोटे नैत्यिक काम में भी निभा सकेंगे। परंतु पहले निर्मम संघर्ष द्वारा इस बात का फ़ैसला हो जाये कि कौन-सा मार्ग चुना जाना है। यदि हमने अवाम के इस उत्सवमय जोश को, उनके क्रांतिकारी उत्साह को सीधे और निर्णायक मार्ग के लिए निर्मम तथा आत्मत्यागमय संघर्ष चलाने के लिए इस्तेमाल नहीं किया, तो हम क्रांति के प्रति ग़द्दार होंगे, उसके साथ विश्वासघात करेंगे। बुर्जुआ अवसरवादियों को भावी प्रतिक्रियावाद पर कायरों की तरह भयभीत होकर विचार करने दो। मज़दूर न तो इस विचार से भयभीत होंगे कि प्रतिक्रियावाद बहुत भयानक रूप धारण करनेवाला है और न इस विचार से कि बुर्जुआ वर्ग मुंह फेर लेने का इरादा रखता है। मज़दूर सौदा करने की आस नहीं लगाये हैं और न तुच्छ रिआयतों की ही मांग कर रहे हैं। वे बिना कोई दया दिखाये प्रतिक्रियावादी शक्तियों को कुचल देने की, अर्थात **सर्वहारा वर्ग तथा किसानों का क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व स्थापित करने** की चेष्टा कर रहे हैं।

उदारतावादी प्रगति के हमवार "बहाव" के कालों की अपेक्षा, जिसका मतलब मज़दूर वर्ग का उसके शोषकों द्वारा बहुत कष्टदायी धीमी गति से रक्त-शोषण होता है, तूफ़ानी ज़मानों में हमारी पार्टी के जहाज़ के लिए बेशक अधिक बड़े ख़तरे होते हैं। क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व के कार्यभार "चरम विरोध-पक्ष" या शुद्धतः संसदीय संघर्ष के कार्यभारों की अपेक्षा बेशक हज़ार गुना अधिक कठिन तथा अधिक पेचीदा होते हैं। परंतु जो भी वर्तमान क्रांतिकारी घड़ी में हमवार बहाव या सुरक्षित "विरोध-पक्ष" का मार्ग जान-बूझकर पसंद कर सकता है, उसके लिए यही बेहतर है कि वह कुछ समय के लिए सामाजिक-जनवादी काम छोड़ दे और उस समय की प्रतीक्षा करे, जबकि क्रांति पूरी हो जायेगी, जबकि उत्सव के दिन बीत जायेंगे, जबकि ज़िंदगी फिर रोज़मर्रा के पिटे हुए ढर्रे पर चलने लगेगी और उसके संकुचित बंधे-बंधाये मानदंड इतने घिनौने ढंग से बेसुरे

नहीं रहेंगे, या अग्रगामी वर्ग के कार्यभारों का इतना विकृत रूप नहीं रहेंगे।

सारी जनता की, विशेष रूप से किसानों की अगुआई करते हुए पूर्ण स्वतंत्रता के लिए, सुसंगत जनवादी क्रांति के लिए, जनतंत्र के लिए लड़ें! समस्त मेहनतकशों तथा शोषितों की अगुआई करते हुए समाजवाद के लिए लड़ें! व्यवहार में क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग की नीति ऐसी होनी चाहिए और ऐसा है वह वर्गीय नारा, जो क्रांति के दौरान हर कार्यनीतिक समस्या के हल में, मज़दूरों की पार्टी के हर व्यावहारिक क़दम में कूट-कूटकर भरा होना चाहिए, निर्णायक होना चाहिए।

उपसंहार

फिर 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथ, फिर नव 'ईस्क्रा'-पंथ

अपनी पुस्तिका के ८ वीं अध्याय में हमने जिस प्रश्न पर विचार किया था, उसके बारे में 'ओस्वोबोज्देनिये' के अंक ७१—७२ में तथा 'ईस्क्रा' के अंक १०२—१०३ में विपुल परिमाण में नयी सामग्री प्रस्तुत की गयी है। चूंकि यहां उस पूरी विपुल सामग्री का उपयोग करना असंभव है, इसलिए हम अपने को केवल सबसे महत्वपूर्ण बातों तक ही सीमित रखेंगे: पहली तो यह बात कि 'ओस्वोबोज्देनिये' सामाजिक-जनवाद में किस प्रकार के "यथार्थवाद" की प्रशंसा करता है और वह किस कारण उसकी प्रशंसा करता है; दूसरी यह बात कि क्रांति तथा अधिनायकत्व की अवधारणाओं के आपस में क्या संबंध हैं।

१. बुर्जुआ-उदारतावादी यथार्थवादी क्यों सामाजिक-जनवादी "यथार्थवादियों" की प्रशंसा करते हैं?

'रूसी सामाजिक-जनवाद में फूट' और 'सामान्य बुद्धि की विजय' शीर्षक लेखों में ('ओस्वोबोज्देनिये', अंक ७२) सामाजिक-जनवाद के बारे में उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधियों की राय बतायी गयी है और वह राय वर्ग-चेतन सर्वहाराओं के लिए उल्लेखनीय महत्व रखती है। हर सामाजिक-जनवादी से इन लेखों को शुरू से आख़िर तक पढ़ने और उनके एक-एक वाक्य पर **विचार करने** की अधिक से अधिक ज़ोरदार

सिफ़ारिश करना भी काफ़ी नहीं है। सर्वप्रथम हम इन दोनों लेखों में दी गयी सबसे महत्वपूर्ण प्रस्थापनाओं को उद्धृत करेंगे :

'ओस्वोबोज्देनिये' कहता है : "बाहर से देखनेवाले किसी भी व्यक्ति के लिए उस मतभेद के असली राजनीतिक अर्थ को समझना काफ़ी कठिन है, जिसके कारण सामाजिक-जनवादी पार्टी दो धड़ों में बंट गयी है। 'बहुमत' (बोल्शिनस्त्वो – सं०) वाले धड़े की यह परिभाषा कि वह अधिक आमूलवादी तथा अधिक अडिग है, और उसके बरख़िलाफ़ 'अल्पमत' (मेंशिनस्त्वो – सं०) की यह परिभाषा कि वह हेतु की ख़ातिर कुछ समझौतों की गुंजाइश रखता है, पूर्णतः सही नहीं होगी, उससे बहरहाल उनका पूरा चरित्र-निरूपण नहीं होता। कुछ भी हो, अल्पमतवाला धड़ा शुद्ध मार्क्सवाद के परंपरागत सूत्रों का पालन शायद लेनिन के धड़े से भी ज़्यादा उत्साह के साथ करता है। हमारी राय में उनका निम्नलिखित चरित्र-निरूपण अधिक सही होगा। 'बहुमत' की बुनियादी राजनीतिक मनोवृत्ति अमूर्त क्रांतिकारिता की, विद्रोहशीलता की, हर संभव उपाय से जनसाधारण के बीच विद्रोह भड़काने और उनके नाम पर फ़ौरन सत्ता पर अधिकार कर लेने की उत्सुकता की मनोवृत्ति है; कुछ हद तक यह बात 'लेनिनपंथियों' को समाजवादी-क्रांतिकारियों के निकट ले आती है और उसके कारण उनके दिमाग़ में सारी जनता की रूसी क्रांति के विचार के सामने वर्ग संघर्ष का विचार धुंधला पड़ जाता है; व्यवहार में सामाजिक-जनवादी शिक्षा के कई संकीर्ण विचारों को तिलांजलि देकर भी 'लेनिनपंथी', दूसरी ओर, क्रांतिकारिता की संकीर्णता में शराबोर हैं, वे तत्काल विद्रोह की तैयारी के अतिरिक्त और हर व्यावहारिक काम का परित्याग कर देते हैं, वे क़ानूनी तथा अर्द्धक़ानूनी आंदोलन के सभी रूपों और अन्य विरोधात्मक प्रवृत्तियों के साथ व्यावहारिक दृष्टि से हर प्रकार के उपयोगी समझौते की उसूली तौर से उपेक्षा करते हैं। इसके विपरीत, अल्पमत मार्क्सवादी शिक्षा पर दृढ़ रूप से अटल रहकर उसके साथ ही मार्क्सवादी विश्वदृष्टिकोण के यथार्थवादी तत्वों को भी सुरक्षित रखता है। इस धड़े का बुनियादी विचार बुर्जुआ वर्ग के हितों के मुक़ाबले 'सर्वहारा वर्ग' के हितों को रखना है। परंतु, दूसरी ओर, सर्वहारा वर्ग के संघर्ष की कल्पना – बेशक सामाजिक-जनवाद के अटल सिद्धांतों द्वारा निर्धारित निश्चित सीमाओं के भीतर – इस संघर्ष की सभी ठोस परिस्थितियों तथा उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से महसूस करते हुए यथार्थवादी संजीदगी के साथ की गयी है। दोनों धड़ों में से कोई भी अपने बुनियादी दृष्टिकोण का सुसंगत रूप

से पालन नहीं करता, क्योंकि अपनी वैचारिक तथा राजनीतिक सरगर्मियों में वे सामाजिक-जनवादी नियमावली के कड़े सूत्रों से बंधे हुए हैं, जिनके कारण 'लेनिनपंथी' कम से कम कुछ समाजवादी-क्रांतिकारियों जैसे अडिग विद्रोही नहीं बन पाते और 'ईस्क्रा'-पंथी मज़दूर वर्ग के वास्तविक राजनीतिक आंदोलन के व्यावहारिक नेता नहीं बन पाते।"

मुख्य प्रस्तावों में कही गयी बातों को उद्धृत करने के बाद 'ओस्वोबोज्देनिये' का लेखक उनके बारे में आगे कुछ ठोस टिप्पणियों द्वारा अपने आम "विचारों" की व्याख्या करता है। वह कहता है कि तीसरी कांग्रेस की तुलना में "अल्पमत का सम्मेलन सशस्त्र विद्रोह के प्रति बिलकुल ही भिन्न रवैया अपनाता है।" "सशस्त्र विद्रोह के प्रति रवैये के प्रसंग में" अस्थायी सरकार से संबंधित उनके अलग-अलग प्रस्तावों में मतभेद है। "इसी प्रकार का मतभेद मज़दूरों की ट्रेड-यूनियनों के संबंध में दिखाई देता है। 'लेनिनपंथी' अपने प्रस्तावों में मज़दूर वर्ग की राजनीतिक शिक्षा तथा संगठन के इस सबसे महत्वपूर्ण आधार-बिंदु के बारे में एक शब्द भी नहीं कहते। इसके विपरीत, अल्पमत ने बहुत ही वज़नी प्रस्ताव तैयार किया।" वह कहता है कि उदारतावादियों के बारे में इन दोनों धड़ों में मतैक्य है, परंतु तीसरी कांग्रेस ने "उदारतावादियों के प्रति रवैये के बारे में दूसरी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत प्लेख़ानोव के प्रस्ताव को लगभग शब्दशः दोहराया है और उसी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत स्तारोवेर के प्रस्ताव को ठुकरा दिया है, जिसमें उदारतावादियों की ओर इतना सख़्त रवैया नहीं अपनाया गया था।" यद्यपि किसानों के आंदोलन के बारे में कांग्रेस तथा सम्मेलन के प्रस्ताव कुल मिलाकर बिलकुल एक जैसे ही हैं, "पर 'बहुमत' ज़मींदारों की जागीरों तथा दूसरी ज़मीनों को क्रांतिकारी ढंग से ज़ब्त कर लेने के विचार पर अधिक ज़ोर देता है, जबकि 'अल्पमत' जनवादी राजकीय और प्रशासनिक सुधारों की मांग को अपने आंदोलन का आधार बनाना चाहता है।"

अंत में 'ओस्वोबोज्देनिये' 'ईस्क्रा' के १०० वें अंक से एक मेंशेविक प्रस्ताव उद्धृत करता है, जिसकी मुख्य धारा इस प्रकार है: "इस बात को देखते हुए कि इस समय केवल गुप्त काम से ही पार्टी के जीवन में अवाम की काफ़ी शिरकत सुनिश्चित नहीं होती और इसके फलस्वरूप कुछ हद तक यह भी होता है कि एक ग़ैर क़ानूनी संगठन के रूप में पार्टी तथा अवाम के बीच एक विरोध-सा पैदा हो जाता है, पार्टी को क़ानूनी आधार पर मज़दूरों के ट्रेड-यूनियन संघर्ष का नेतृत्व अपने हाथ में ले लेना चाहिए और बड़ी सख़्ती के साथ उस संघर्ष को सामाजिक-जनवादी कार्यभारों के साथ संबंधित कर देना चाहिए।" इस प्रस्ताव पर टिप्पणी करते

हुए 'ओस्वोबोज्देनिये' कह उठता है: "हम इस प्रस्ताव का सामान्य बुद्धि की विजय के रूप में, सामाजिक-जनवादी पार्टी के एक निश्चित हिस्से की कार्यनीति के संबंध में प्रकट होनेवाली समझदारी के रूप में हार्दिक स्वागत करते हैं।"

अब पाठक के सामने 'ओस्वोबोज्देनिये' की सारी उल्लेखनीय रायें हैं। इन रायों को इस अर्थ में सही समझ लेना बेशक बहुत बड़ी भूल होगी कि वे वस्तुगत सत्य के अनुकूल हैं। हर सामाजिक-जनवादी बड़ी आसानी से हर क़दम पर उनमें ग़लतियां पकड़ लेगा। इस बात को भूल जाना नादानी होगी कि इन रायों में उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग के हित तथा दृष्टि-कोण कूट-कूटकर भरे हुए हैं और इसीलिए वे सर्वथा पक्षपातपूर्ण तथा एकतरफ़ा हैं। वे सामाजिक-जनवादियों के विचारों को उसी प्रकार प्रति-बिंबित करती हैं, जिस प्रकार चीज़ों का प्रतिबिंब अवतल या उत्तल आईनों में दिखाई देता है। परंतु इस बात को भूल जाना और भी बड़ी ग़लती होगी कि ये विकृत बुर्जुआ रायें अंततोगत्वा बुर्जुआ वर्ग के वास्तविक हितों को प्रतिबिंबित करती हैं, जो निःसंदेह एक वर्ग की हैसियत से इस बात को सही-सही समझता है कि सामाजिक-जनवाद की कौन-सी प्रवृत्तियां उसके लिए हितकर, नज़दीकी, आत्मीय तथा रुचिकर हैं और कौन-सी धाराएं उसके लिए हानिकारक, दूरवर्ती, बेगानी तथा अरुचिकर हैं। बुर्जुआ दार्श-निक या बुर्जुआ पत्रकार कभी भी सामाजिक-जनवाद को, चाहे वह मेंशेविक सामाजिक-जनवाद हो, या बोल्शेविक सामाजिक-जनवाद हो, ठीक से नहीं समझ सकता। परंतु यदि वह समझदार पत्रकार है, तो उसका वर्गीय सहज बोध उसे धोखा नहीं देगा और वह भली भांति समझेगा कि सामा-जिक-जनवादी आंदोलन की एक अथवा दूसरी प्रवृत्ति का बुर्जुआ वर्ग के हित की दृष्टि से क्या अभिप्राय है, हालांकि यह हो सकता है कि वह उसे तोड़-मरोड़कर पेश करे। यही कारण है कि हमारे शत्रु का वर्गीय सहज बोध, उसका वर्गीय मत हमेशा इस योग्य होता है कि उस पर हर वर्ग-चेतन सर्वहारा अत्यधिक गंभीरतापूर्वक ध्यान दे।

तो फिर रूसी बुर्जुआ वर्ग का वर्गीय सहज बोध जिस रूप में 'ओस्वो-बोज्देनिये' में व्यक्त होता है, उससे हमें क्या पता चलता है?

वह बिलकुल निश्चित रूप से उस धारा पर संतोष प्रकट करता है, जिसका प्रतिनिधित्व नव 'ईस्क्रा' करता है, उसकी यथार्थवादिता, संजीदगी, सामान्य बुद्धि की विजय, उसके प्रस्तावों की गंभीरता, कार्यनीतिक समझदारी, उसकी व्यावहारिकता, आदि के लिए उसकी प्रशंसा करता है – और वह तीसरी कांग्रेस की प्रवृत्ति पर असंतोष प्रकट करता है, उसकी संकीर्णता, उसकी क्रांतिकारिता, उसकी विद्रोहशीलता, उसके द्वारा व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी समझौतों के परित्याग, आदि के लिए उसकी निंदा करता है। बुर्जुआ वर्ग का वर्गीय सहज बोध उसे ठीक वही बात सुझाता है, जो हमारे साहित्य में अत्यंत सुनिश्चित तथ्यों द्वारा बार-बार सिद्ध की जा चुकी है, अर्थात यह कि नव 'ईस्क्रा'-पंथी वर्तमान रूसी सामाजिक-जनवाद का अवसरवादी पक्ष हैं और उनके विरोधी – क्रांतिकारी पक्ष। उदारतावादियों के लिए इनमें से पहली प्रवृत्ति के साथ सहानुभूति रखना और बादवाली प्रवृत्ति की भर्त्सना करना अनिवार्य है। बुर्जुआ वर्ग के विचारधारा-निरूपक होने के नाते उदारतावादी इस बात को भली भांति समझते हैं कि बुर्जुआ वर्ग को मज़दूर वर्ग की "व्यावहारिकता, संजीदगी तथा गंभीरता" से क्या फ़ायदे हैं, अर्थात इस बात से कि मज़दूर वर्ग अपने कार्य-क्षेत्र को पूंजीवाद, सुधारों, ट्रेड-यूनियन संघर्ष, आदि की सीमाओं के भीतर ही रखे। सर्वहारा वर्ग की "क्रांतिकारी संकीर्णता", अपने वर्गीय कार्यभार के नाम पर रूसी जन-क्रांति में नेतृत्व प्राप्त करने की उसकी कोशिश बुर्जुआ वर्ग के लिए ख़तरनाक तथा भयंकर है।

अन्य बातों के अतिरिक्त "यथार्थवाद" शब्द को इससे पहले 'ओस्वोबोज्देनिये' तथा श्री स्त्रूवे ने जिस ढंग से इस्तेमाल किया था, उससे स्पष्ट हो जाता है कि 'ओस्वोबोज्देनिये' के अर्थ में उस शब्द का वास्तविक अभिप्राय यही है। स्वयं 'ईस्क्रा' को भी यह स्वीकार करना पड़ा कि 'ओस्वोबोज्देनिये' के "यथार्थवाद" का **यही** अभिप्राय है। उदाहरण के लिए, 'ईस्क्रा' के अंक ७३–७४ के परिशिष्ट में 'समय आ गया है!' शीर्षक लेख को याद कीजिये। इस लेख के लेखक ने (जिन्होंने रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस में "दलदल" के दृष्टिकोण को सुसंगत ढंग से पेश किया था) खुलकर यह मत व्यक्त किया कि "कांग्रेस में अकीमोव ने अवसरवाद के सच्चे प्रतिनिधि के बजाय उसकी

प्रेतात्मा की भूमिका अदा की।" और 'ईस्क्रा' के संपादकमंडल को एक टिप्पणी में निम्नलिखित बात कहकर 'समय आ गया है!' शीर्षक लेख के लेखक की बात में फ़ौरन सुधार करना पड़ा:

"हम इस राय से सहमत नहीं हो सकते। कार्यक्रम के संबंध में कामरेड अकीमोव के विचारों पर अवसरवाद की स्पष्ट छाप है, और इस बात को 'ओस्वोबोज्देनिये' के आलोचक ने भी स्वीकार किया है, जिसने उसके हाल के ही एक अंक में यह कहा कि कामरेड अकीमोव 'यथार्थवादी'–इसे पढ़िये: संशोधनवादी–प्रवृत्ति के समर्थक हैं।"

इस प्रकार, हम देखते हैं कि 'ईस्क्रा' स्वयं इस बात से भली भांति परिचित है कि 'ओस्वोबोज्देनिये' का "यथार्थवाद" अवसरवाद के सिवा और कुछ नहीं है। यदि "उदारतावादी यथार्थवाद" पर प्रहार करते समय ('ईस्क्रा', अंक १०२) अब 'ईस्क्रा' इस बारे में कुछ भी नहीं कहता कि उसके यथार्थवाद के लिए किस प्रकार **उदारतावादियों ने उसकी प्रशंसा की थी**, तो इस बात का कारण यह है कि इस तरह की प्रशंसा किसी भी निंदा से अधिक अरुचिकर है। इस प्रकार की प्रशंसा से (जो 'ओस्वोबोज्देनिये' ने न तो संयोगवश की है और न पहली बार) वास्तव में उदारतावादी यथार्थवाद के साथ सामाजिक-जनवादी "यथार्थवाद" (इसे पढ़िये: अवसरवाद) की उन प्रवृत्तियों का घनिष्ठ संबंध सिद्ध होता है, जो नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की सारी कार्यनीतिक स्थिति की भ्रांतिमूलकता के कारण उनके हर प्रस्ताव में पायी जाती हैं।

सचमुच रूसी बुर्जुआ वर्ग ने "जन-" क्रांति में अपनी असंगति और अपनी स्वार्थ-लोलुपता को पूरी तरह प्रकट कर दिया है–श्री स्त्रूवे के तर्कों में, अधिकतर उदारतावादी अख़बारों के लहजे और अंतर्य द्वारा, और अधिकतर ज़ेम्स्त्वोवालों, अधिकतर बुद्धिजीवियों और आम तौर से सर्वश्री त्रुबेत्सकोई, पेत्रुन्केविच, रोदिचेव और मंडली के पक्षधरों के राजनीतिक कथनों के चरित्र द्वारा प्रकट कर दिया है। बुर्जुआ वर्ग बेशक हमेशा इस बात को साफ़-साफ़ नहीं समझ पाता, परंतु आम तौर से और कुल मिलाकर वह अपने वर्गीय सहज बोध द्वारा इस बात को भली भांति समझ

लेता है कि, एक ओर तो, सर्वहारा वर्ग तथा "जनता" बलि के बकरे के रूप में, एकतंत्र के ख़िलाफ़ टक्करमार के रूप में उसकी क्रांति के लिए उपयोगी हैं, लेकिन, दूसरी ओर, सर्वहारा वर्ग और क्रांतिकारी किसान उसके लिए बहुत ख़तरनाक सिद्ध होंगे, अगर वे "ज़ारशाही पर निर्णायक विजय" प्राप्त कर लेंगे और जनवादी क्रांति को पूर्ति की मंज़िल तक पहुंचा देंगे। यही कारण है कि बुर्जुआ वर्ग सर्वहारा वर्ग को इस बात पर राज़ी करने की पूरी कोशिश करता है कि वह क्रांति में एक "गौण" भूमिका पर संतोष कर ले, कि वह अधिक संजीदा, व्यावहारिक तथा यथार्थवादी रहे, कि वह अपनी सरगर्मियों में हमेशा इस उसूल द्वारा निर्देशित हो कि "कहीं बुर्जुआ वर्ग मुंह न फेर ले।"

बुद्धिजीवी बुर्जुआ इस बात को भली भांति जानते हैं कि वे मज़दूर आंदोलन से छुटकारा नहीं पा सकेंगे। यही कारण है कि वे मज़दूर आंदोलन का विरोध नहीं करते, वे सर्वहारा के वर्ग संघर्ष का विरोध नहीं करते – नहीं, वे तो हड़ताल करने की स्वतंत्रता और सुसंस्कृत वर्ग संघर्ष की दिखावटी प्रशंसा भी करते हैं, क्योंकि वे मज़दूर आंदोलन तथा वर्ग संघर्ष को ब्रेंतानो या हिर्श और डुंकेर के अर्थ में समझते हैं। दूसरे शब्दों में, वे मज़दूरों को हड़ताल करने और ट्रेड-यूनियनों में संगठित होने की स्वतंत्रता (जिसे वास्तव में मज़दूरों ने स्वयं लगभग प्राप्त कर लिया है) इस शर्त पर "दे देने" को पूरी तरह तैयार हैं कि मज़दूर अपनी "विद्रोह-शीलता", अपनी "संकीर्ण क्रांतिकारिता", "व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी समझौते" के प्रति अपने विरोध को, "सारी रूसी जन-क्रांति" पर अपने वर्ग संघर्ष की छाप, अपनी सर्वहारा सुसंगति, सर्वहारा संकल्प तथा "अनभिजात्य जैकोबिनवाद" की छाप डालने के अपने दावों और आकांक्षाओं को त्याग दें। यही कारण है कि बुद्धिजीवी बुर्जुआ सारे रूस के अंदर मज़दूरों में (बुर्जुआ) संजीदगी, (उदारतावादी) व्यावहारिकता, (अवसरवादी) यथार्थवाद, (ब्रेंतानो के) वर्ग संघर्ष[86], (हिर्श और डुंकेर की) ट्रेड-यूनियनों[87], आदि के विचार कूट-कूटकर भर देने के लिए हर कोशिश करते हैं, इसके लिए वे हज़ारों उपायों तथा साधनों – पुस्तकों*,

---

*तुलना करें: **प्रोकोपोविच**, 'रूस में मज़दूरों की समस्या'।

व्याख्यानों, भाषणों, वार्ताओं, आदि, आदि – का सहारा लेते हैं। इनमें से अंतिम दो नारे "सांविधानिक-जनवादी" पार्टी या 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी पार्टी के बुर्जुआ लोगों के लिए विशेष रूप से सुविधाजनक हैं, क्योंकि बाहर से देखने में वे मार्क्सवादी नारों से मेल खाते हैं, क्योंकि कुछ छोटी-मोटी बातों को छोड़ देने से और थोड़ा-सा तोड़-मरोड़कर इन नारों को सामाजिक-जनवादी नारों के साथ उलझा देना और कभी-कभी सामाजिक-जनवादी नारे कहकर भी पेश करना आसान है। उदाहरण के लिए, क़ानूनी उदारतावादी अख़बार 'रास्स्वेत'[88] (जिस पर हम किसी दिन 'प्रोलेतारी' के पाठकों के साथ अधिक विस्तारपूर्वक विचार करने की कोशिश करेंगे) वर्ग संघर्ष के बारे में, बुर्जुआ वर्ग द्वारा सर्वहारा वर्ग को धोखा दिये जाने की संभावना के बारे में, मज़दूर आंदोलन के बारे में, सर्वहारा वर्ग की पहलक़दमी के बारे में और इसी प्रकार की अन्य बातों के बारे में अकसर ऐसी "दो-टूक" बातें कहता है कि जो पाठक बहुत ध्यान देकर न पढ़े या जो मज़दूर प्रबुद्ध न हो, वह बड़ी आसानी से यह विश्वास करने लग सकता है कि 'रास्स्वेत' की "सामाजिक-जनवादिता" खरी है। परंतु वास्तव में वह सामाजिक-जनवादिता की बुर्जुआ नक़ल और वर्ग संघर्ष की अवधारणा की अवसरवादी विकृति तथा भ्रष्टीकरण है।

इस समूची विराट (जनसाधारण पर प्रभाव की व्यापकता की दृष्टि से) बुर्जुआ हेरा-फेरी की बुनियाद में मज़दूर आंदोलन को घटाकर मुख्यत: एक ट्रेड-यूनियन आंदोलन बना देने, उसे स्वाधीन राजनीति (अर्थात क्रांतिकारी राजनीति, जनवादी अधिनायकत्व की ओर प्रवृत्त राजनीति से यथासंभव दूर रखने, "मज़दूरों के दिमाग़ में वर्ग संघर्ष के विचार द्वारा सारी जनता की रूसी क्रांति के विचार को धुंधला कर देने" की प्रवृत्ति काम करती रहती है।

जैसा कि पाठक देख सकते हैं, हमने 'ओस्वोबोज्देनिये' के सूत्र को उलट दिया है। यह बहुत ही उम्दा सूत्र है, जो जनवादी क्रांति में सर्वहारा वर्ग की भूमिका के बारे में दो दृष्टियों को बहुत अच्छे ढंग से व्यक्त करता है: बुर्जुआ दृष्टि और सामाजिक-जनवादी दृष्टि। बुर्जुआ वर्ग सर्वहारा वर्ग को ट्रेड-यूनियन आंदोलन तक सीमित रखना चाहता है और इस प्रकार "उसके दिमाग़ में (**ब्रेंतानो के**) वर्ग संघर्ष के विचार द्वारा सारी जनता

की रूसी क्रांति के विचार को धुंधला कर देना" चाहता है – जो *Credo* के बर्नस्टीनवादी लेखकों की भावना के सर्वथा अनुकूल है, जिन्होंने मज़दूरों के दिमाग़ में "शुद्ध मज़दूर" आंदोलन के विचार द्वारा राजनीतिक संघर्ष के विचार को धुंधला कर दिया था। इसके विपरीत सामाजिक-जनवाद सर्वहारा के वर्ग संघर्ष को विकसित करके उसे इस हद तक आगे पहुंचा देना चाहता है कि सर्वहारा सारी जनता की रूसी क्रांति में नेतृत्व की भूमिका अदा कर सके, अर्थात वह उस क्रांति को सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के जनवादी अधिनायकत्व तक पहुंचाना चाहता है।

बुर्जुआ वर्ग सर्वहारा वर्ग से कहता है कि हमारे देश की क्रांति सारी जनता की क्रांति है। इसलिए तुम्हें एक अलग वर्ग की हैसियत से अपने वर्ग संघर्ष तक सीमित रहना चाहिए, "सामान्य बुद्धि" के नाम पर अपना ध्यान मुख्यतः ट्रेड-यूनियनों की ओर उनके क़ानूनीकरण की ओर देना चाहिए, इन ट्रेड-यूनियनों को ही "अपनी राजनीतिक शिक्षा तथा संगठन का सबसे महत्वपूर्ण आधार-बिंदु" समझना चाहिए, क्रांतिकारी समय में मुख्यतः नव 'ईस्क्रा' के प्रस्ताव जैसे "गंभीर" प्रस्ताव तैयार करने चाहिए, उन प्रस्तावों पर ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए, जिनमें "उदारतावादियों के प्रति अधिक अनुकूल रवैया अपनाया जाता है", ऐसे नेताओं को तरजीह देनी चाहिए, जिनमें "मज़दूर वर्ग के वास्तविक राजनीतिक आंदोलन के व्यावहारिक नेता" बनने की प्रवृत्ति पायी जाती हो, तुम्हें "मार्क्सवादी विश्वदृष्टिकोण के यथार्थवादी तत्वों को सुरक्षित रखना" चाहिए (यदि तुम दुर्भाग्यवश इस "अवैज्ञानिक" नियमावली के "कड़े सूत्रों" का शिकार बन चुके हो)।

सामाजिक-जनवादी सर्वहारा वर्ग से कहता है कि हमारे देश की क्रांति सारी जनता की क्रांति है। इसलिए तुम्हें सबसे प्रगतिशील और एकमात्र पूर्णतः क्रांतिकारी वर्ग होने के नाते उसमें न केवल सबसे सक्रिय रूप से भाग लेने की कोशिश करनी चाहिए, बल्कि उसका नेतृत्व करने की भी कोशिश करनी चाहिए। इसलिए तुम्हें वर्ग संघर्ष की संकीर्णतापूर्वक निर्धारित सीमाओं में नहीं घिरे रहना चाहिए, जिसका मतलब मुख्यतः ट्रेड-यूनियन आंदोलन समझा जाता है, बल्कि इसके विपरीत तुम्हें अपने वर्ग संघर्ष की सीमाओं तथा सार को इतना व्यापक बनाना चाहिए कि उसमें

केवल सारी जनता की वर्तमान, जनवादी, रूसी क्रांति के ही **सारे** लक्ष्य नहीं, बल्कि उसके बाद होनेवाली समाजवादी क्रांति के लक्ष्य भी **शामिल हो जायें।** इसलिए ट्रेड-यूनियन आंदोलन की उपेक्षा न करते हुए, लेशमात्र क़ानूनी संभावनाओं का भी फ़ायदा उठाने से इनकार न करते हुए तुम्हें क्रांतिकारी काल में सशस्त्र विद्रोह के और क्रांतिकारी सेना तथा क्रांतिकारी सरकार के निर्माण के कार्यभारों को सबसे आगे रखना चाहिए, क्योंकि यही ज़ारशाही पर जनता की पूर्ण विजय और जनवादी जनतंत्र तथा वास्तविक राजनीतिक स्वाधीनता की उपलब्धि का एकमात्र उपाय है।

इस प्रश्न के बारे में नव 'ईस्क्रा'-पंथियों के प्रस्तावों में, उनकी ग़लत "नीति" के कारण, जो अधकचरा, असंगत, बुर्जुआ वर्ग के लिए स्वभावतः रुचिकर रुख़ अपनाया गया, उसके बारे में कुछ कहना निरर्थक है।

२. साथी मार्तीनोव ने फिर प्रश्न को "गहरा" बना दिया

आइये, अब 'ईस्क्रा' के अंक १०२ तथा १०३ में प्रकाशित मार्तीनोव के लेखों पर विचार करें। एंगेल्स तथा मार्क्स के कई उद्धरणों की हमारी व्याख्या को ग़लत और अपनी व्याख्या को सही साबित करने की मार्तीनोव ने जो कोशिशें की हैं, उनका हम बेशक कोई उत्तर नहीं देंगे। ये कोशिशें इतनी ओछी, मार्तीनोव के हथकंडे इतने स्पष्ट और प्रश्न इतना साफ़ है कि इस बात पर दुबारा विचार करना दिलचस्प नहीं होगा। अपने पूरे पलायन में मार्तीनोव ने जिन सीधी-सादी तिकड़मों का सहारा लिया है, उन्हें हर समझदार पाठक बड़ी आसानी से पहचान लेगा, विशेष रूप से उस समय, जब एंगेल्स की पुस्तिका 'बकूनिनवादी काम पर' और मार्क्स की मार्च, १८५० वाली 'कम्युनिस्ट लीग की केंद्रीय परिषद की अपील' के पूरे अनुवाद प्रकाशित हो जायेंगे, जिन्हें 'प्रोलेतारी' के सहयोगियों का एक दल तैयार कर रहा है। मार्तीनोव के लेख के केवल एक उद्धरण से ही पाठकों के लिए उनका पलायन स्पष्ट हो जायेगा।

अंक १०३ में मार्तीनोव कहते हैं: "'ईस्क्रा' इस बात को स्वीकार करता है कि अस्थायी सरकार की स्थापना क्रांति को आगे बढ़ाने का एक संभव तथा सार्थक तरीक़ा है, लेकिन भविष्य में चलकर समाजवादी क्रांति के लिए राज्य की मशीनरी पर पूर्ण रूप से अधिकार के निमित्त ही अस्थायी **बुर्जुआ** सरकार में सामाजिक-जनवादियों के भाग लेने की सार्थकता को वह अस्वीकार करता है।" दूसरे शब्दों में, राज्यकोष तथा बैंकों के लिए क्रांतिकारी सरकार के उत्तरदायित्व, "जेलख़ानों" को अधिकार में लेने के ख़तरे तथा असंभवता, आदि के संबंध में अपनी सारी आशंकाओं के बेतुकेपन को अब 'ईस्क्रा' स्वीकार करता है। परंतु 'ईस्क्रा' पहले की तरह ही चीज़ों को उलझा रहा है, जनवादी और समाजवादी अधिनायकत्व को एक में मिला रहा है। यह घोटाला अनिवार्य है, वह पलायन को छिपाने का एक साधन है।

परंतु नव 'ईस्क्रा' के उलझे दिमाग़वाले लोगों में मार्तीनोव सबसे अव्वल दर्जे के उलझे दिमाग़वाले आदमी हैं, यों कहें कि उलझे दिमाग़-वालों में प्रतिभाशाली हैं। समस्या को "और गहरा" बनाने के अपने अध्यवसायपूर्ण प्रयत्नों द्वारा उसे उलझाते हुए वह प्रायः अनिवार्य रूप से ऐसे नये सूत्रों पर "पहुंच जाते हैं", जिनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने जो रुख़ अपनाया है, वह बिलकुल भ्रांत है। आपको याद होगा कि अर्थवाद के दिनों में उन्होंने किस प्रकार प्लेख़ानोव को "और गहरा" बना दिया था और इस सूत्र की रचना की थी: "मालिकों तथा सरकार के ख़िलाफ़ आर्थिक संघर्ष।" अर्थवादियों के पूरे साहित्य में इस प्रवृत्ति की सर्वथा भ्रांतिपूर्णता की इससे अधिक उपयुक्त अभिव्यक्ति ढूंढ़ लेना कठिन है। आज भी यही बात है। मार्तीनोव बड़े उत्साह के साथ नव 'ईस्क्रा' की सेवा करते हैं और प्रायः जब भी अपना मुंह खोलते हैं, तो नव 'ईस्क्रा'-पंथी भ्रांतिपूर्णता के मूल्यांकन के लिए हमें नयी तथा बहुत उम्दा सामग्री प्रदान करते हैं। अंक १०२ में वह कहते हैं कि लेनिन ने "अप्रत्यक्ष रूप से क्रांति की अवधारणा के स्थान पर अधिनायकत्व की अवधारणा रख दी है" (पृ० ३, कालम २)।

सच तो यह है कि नव 'ईस्क्रा'-पंथी हमारे ख़िलाफ़ जितने भी आरोप लगाते हैं, वे सब यही एक आरोप बनकर रह जाते हैं। और इस

आरोप के लिए हम मार्तीनोव के कितने आभारी हैं! आरोप को इन शब्दों में सूत्रबद्ध करके उन्होंने नव 'ईस्क्रा'-पंथ के विरुद्ध संघर्ष में हमारी कितनी बहुमूल्य सेवा की है! हमें 'ईस्क्रा' के संपादकमंडल से अवश्य यह प्रार्थना करनी चाहिए कि वह और ज़्यादा मौक़ों पर मार्तीनोव को हमारे ख़िलाफ़ बेलगाम छोड़ दिया करे, ताकि 'प्रोलेतारी' के ख़िलाफ़ प्रहार "और गहरे" हो सकें और इन प्रहारों का सूत्रीकरण "सचमुच उसूली ढंग से" हो सके। कारण कि मार्तीनोव जितना ही ज़्यादा उसूली ढंग से तर्क करने के लिए ज़ोर लगाते हैं, उनकी दलीलें उतनी ही ज़्यादा बुरी प्रतीत होती हैं, वह उतनी ही अधिक स्पष्टतापूर्वक नव 'ईस्क्रा'-पंथी प्रवृत्ति के अंदर की दरारें प्रकट करते हैं और उतनी ही सफलतापूर्वक अपने पर तथा अपने मित्रों पर reductio ad absurdum (नव 'ईस्क्रा' के उसूलों को बेतुकेपन की हद तक पहुंचा देने) की उपयोगी शैक्षणिक संक्रिया संपन्न करते हैं।

'व्पेर्योद' तथा 'प्रोलेतारी' क्रांति की अवधारणा "के स्थान पर" अधिनायकत्व की अवधारणा "रख देते हैं।" 'ईस्क्रा' इस प्रकार का "रद्दोबदल" नहीं चाहता। अत्यंत माननीय कामरेड मार्तीनोव, बिलकुल ठीक! आपने अनजाने ही एक महान सत्य कह दिया। इस **नये** सूत्रीकरण द्वारा आपने हमारे इस दावे की पुष्टि कर दी है कि 'ईस्क्रा' क्रांति के पीछे घिसट रहा है, वह क्रांति के कार्यभारों के 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी निरूपण में भटक रहा है, जबकि 'व्पेर्योद' तथा 'प्रोलेतारी' ऐसे नारे दे रहे हैं, जो जनवादी क्रांति को आगे ले जाते हैं।

कामरेड मार्तीनोव, क्या यह बात आपकी समझ में नहीं आती? प्रश्न के महत्व को देखते हुए हम आपको विस्तारपूर्वक समझायेंगे।

जनवादी क्रांति का बुर्जुआ चरित्र और बातों के अतिरिक्त इस बात में अभिव्यक्त होता है कि निजी स्वामित्व तथा माल-उत्पादन की अर्थ-व्यवस्था को पूरी तरह स्वीकार करनेवाले तथा उनकी सीमाओं से आगे जाने में असमर्थ अनेक सामाजिक वर्ग, दल तथा स्तर परिस्थितियों से विवश होकर एकतंत्र की और आम तौर से पूरी भूदास व्यवस्था की निरर्थकता को मान लेते हैं और स्वतंत्रता की मांग में साथ देते हैं। जिस स्वतंत्रता की मांग "समाज" करता है और जिसके समर्थन में ज़मींदार तथा पूंजी-

पति धुआंधार शब्दों की (केवल शब्दों की!) झड़ी लगा देते हैं, उसका बुर्जुआ चरित्र अधिकाधिक स्पष्टता के साथ व्यक्त होता जा रहा है। इसके साथ ही स्वतंत्रता के लिए मज़दूरों तथा बुर्जुआ वर्ग के संघर्ष का बुनियादी अंतर, सर्वहारा तथा उदारतावादी जनवादिता का बुनियादी अंतर भी अधिक स्पष्ट होता जाता है। मज़दूर वर्ग और उसके वर्ग-चेतन प्रतिनिधि आगे बढ़ रहे हैं और इस संघर्ष को आगे बढ़ा रहे हैं और केवल यही नहीं कि वे इसे पूर्ति की मंज़िल तक ले जाने से नहीं डरते, बल्कि जनवादी क्रांति की चरमतम सीमाओं से भी आगे जाने की चेष्टा कर रहे हैं। बुर्जुआ वर्ग असंगत तथा स्वार्थी है और वह स्वतंत्रता के नारे को केवल आंशिक रूप से और मक्कारी के साथ स्वीकार करता है। कोई विशिष्ट रेखा खींचकर, किन्हीं विशिष्ट "मुद्दों" को तैयार करके (स्तारोवेर के या सम्मेलनवालों के प्रस्ताव के मुद्दों की तरह) उस सीमा को निर्धारित करने की तमाम कोशिशों का विफल होना अनिवार्य है, जिसके आगे स्वतंत्रता के बुर्जुआ मित्रों की यह मक्कारी आरंभ हो जाती है, या चाहे यों कह लीजिये कि जिसके आगे स्वतंत्रता के ये बुर्जुआ मित्र उसके साथ विश्वासघात आरंभ कर देते हैं। कारण कि दो पाटों के बीच (एक-तंत्र और सर्वहारा वर्ग के बीच) फंसा बुर्जुआ वर्ग अपना रुख़ और अपने नारे हज़ार तरीक़ों तथा उपायों से बदल सकता है, वह एक सूत बाएं या एक सूत दाहिने खिसककर लगातार सौदेबाज़ी तथा मोल-तोल करते हुए अपने आपको स्थिति के अनुसार ढाल सकता है। सर्वहारा जनवादिता का काम यह नहीं है कि वह इस प्रकार के निष्प्राण "मुद्दे" गढ़ती रहे, बल्कि उसका काम है विकसित होती हुई राजनीतिक स्थिति की निरंतर आलोचना करना, बुर्जुआ वर्ग की नयी से नयी तथा पहले से अकल्पित असंगतियों तथा धोखेबाज़ियों का भंडाफोड़ करना।

अगर आप ग़ैर क़ानूनी अख़बारों में श्री स्त्रूवे की राजनीतिक घोषणाओं के इतिहास को, उनके साथ सामाजिक-जनवाद की लड़ाई के इतिहास को याद करें, तो आप स्पष्ट रूप से देखेंगे कि सर्वहारा जनवादिता के दृढ़ समर्थक सामाजिक-जनवाद ने इन कार्यभारों को किस प्रकार पूरा किया है। श्री स्त्रूवे ने शुरूआत इस शुद्ध शीपोव मार्का नारे से की थी: "अधिकार और एक अधिकारसंपन्न ज़ेम्स्त्वो" (देखिये 'ज़ार्या'[89] में मेरा

लेख 'ज़ेम्स्त्वो के उत्पीड़क तथा उदारतावाद के हैनिबाल')। सामाजिक-जनवाद ने उनकी क़लई खोल दी और उन्हें निश्चित सांविधानिक कार्यक्रम की दिशा में धकेल दिया। जब क्रांतिकारी घटनाओं की विशेष रूप से तीव्र प्रगति की बदौलत ये "धक्के" कारगर हुए, तो संघर्ष बढ़कर जनवादिता के **अगले** प्रश्न पर पहुंच गया: केवल एक आम संविधान ही नहीं, बल्कि ऐसा संविधान, जिसमें सार्विक, समान तथा प्रत्यक्ष मताधिकार और गुप्त मतदान की व्यवस्था हो। जब हमने "शत्रु" से इस नये मोर्चे को भी "हथिया लिया" ('ओस्वोबोज्देनिये लीग' द्वारा सार्विक मताधिकार की स्वीकृति), तो हम और आगे बढ़ने के लिए ज़ोर लगाने लगे; हमने द्वि-सदनी पद्धति की मक्कारी और जालीपन सिद्ध कर दिया और यह दिखा दिया कि 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों ने सार्विक मताधिकार को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया है; हमने उनके **राजतंत्रवाद** को उजागर करते हुए इनकी जनवादिता का दलालगीरी का स्वरूप दिखाया या, दूसरे शब्दों में, थैलीशाही के 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी सूरमाओं द्वारा महान रूसी क्रांति के हितों के साथ की जानेवाली **सौदेबाज़ी** दिखायी।

अंतिम बात यह कि एकतंत्र शासन की अटल हठधर्मिता, गृहयुद्ध की ज़बर्दस्त प्रगति और उस स्थिति की निस्तारहीनता, जिसमें राजतंत्रवादियों ने रूस को फंसा दिया है, मोटी से मोटी अक़्लवालों की समझ में भी आने लगी हैं। क्रांति एक **वास्तविकता** बनती गयी। अब क्रांति को स्वीकार करने के लिए क्रांतिकारी होना आवश्यक नहीं रह गया है। एकतंत्र सरकार सब की आंखों के सामने सचमुच विघटित होने लगी और हो रही है। जैसा कि किसी उदारतावादी (श्री ग्रेडेस्कूल) ने क़ानूनी अख़बार में ठीक ही कहा है, इस सरकार की अवज्ञा वास्तव में आरंभ हो गयी है। बाहर से दिखाई देनेवाली अपनी तमाम शक्ति के बावजूद एकतंत्र शासन शक्तिहीन साबित हो चुका है। विकसित होती हुई क्रांति के प्रसंग में जो घटनाएं हुई हैं, उन्होंने जिंदा ही सड़ती हुई इस परजीवी व्यवस्था का सफ़ाया करना शुरू कर दिया है। अपनी सरगर्मियों को (या यह कहना अधिक सही होगा कि अपनी राजनीतिक सौदेबाज़ी को) यथार्थतः पैदा होते हुए संबंधों पर आधारित करने पर मजबूर होकर उदारतावादी बुर्जुआ लोग **क्रांति को स्वीकार करने की आवश्यकता समझने लगे** हैं। वे ऐसा

इसलिए नहीं करते कि वे क्रांतिकारी हैं, बल्कि इस बात के बावजूद करते हैं कि वे क्रांतिकारी नहीं हैं। वे ऐसा मजबूर होकर तथा अपनी इच्छा के विरुद्ध करते हैं, क्रांति की सफलताओं को क्रोध से देखते हुए वे क्रांतिकारिता के लिए एकतंत्र शासन पर आरोप लगाते हैं, क्योंकि वह सौदा नहीं करना चाहता, बल्कि ज़िंदगी या मौत का संघर्ष चाहता है। पैदायशी तिजारती होने की वजह से वे संघर्ष तथा क्रांति से घृणा करते हैं, परंतु परिस्थितियां उन्हें क्रांति की ज़मीन पर खड़ा होने को मजबूर कर देती हैं, क्योंकि उनके पैरों तले और कोई ज़मीन है ही नहीं।

हमारे सामने अत्यंत शिक्षाप्रद तथा अत्यंत हास्यजनक दृश्य है। बुर्जुआ उदारतावादी वेश्याएं अपने आपको क्रांति के लिबास में सजाने की कोशिश कर रही हैं। 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी – risum teneatis, amici! * – 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी क्रांति की ओर से बात करने लगे हैं! 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी हमें यह आश्वासन दिलाने लगे हैं कि वे "क्रांति से नहीं डरते" (श्री स्त्रूवे, 'ओस्वोबोज्देनिये' के अंक ७२ में)!!! 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी अपना यह दावा जताने लगे हैं कि उन्हें "क्रांति का अगुआ होना चाहिए!!!"

यह असाधारण रूप से महत्वपूर्ण घटना है, जो केवल बुर्जुआ उदारतावाद की प्रगति को ही नहीं, बल्कि उससे भी ज़्यादा उस क्रांतिकारी आंदोलन की वास्तविक सफलताओं की प्रगति को भी व्यक्त करती है, जिसे स्वीकार करने पर लोग **मजबूर हुए हैं**। एकतंत्र इतना डांवांडोल हो गया है कि बुर्जुआ वर्ग तक यह महसूस करने लगा है कि क्रांति का पक्ष लेना उसके लिए अधिक हितकर है। दूसरी ओर, यही घटना, जो इस बात का प्रमाण है कि पूरा आंदोलन एक नये तथा उच्चतर स्तर पर पहुंच गया है, हमारे सामने भी नये तथा उच्चतर कार्यभार रखती है। किसी एक या दूसरे बुर्जुआ विचारधारा-निरूपक की वैयक्तिक ईमानदारी के बावजूद बुर्जुआ वर्ग क्रांति को ईमानदारी के साथ स्वीकार नहीं कर सकता। आंदोलन की इस उच्चतर मंज़िल पर भी बुर्जुआ वर्ग अपने साथ स्वार्थपरता तथा असंगति, सौदेबाज़ी और तुच्छ प्रतिक्रियावादी तिकड़में लाये बिना

---

* – मित्रो, हंसी रोकिये!

नहीं रह सकता। अब हमें अपने कार्यक्रम के नाम पर और अपने कार्यक्रम का विकास करते हुए क्रांति के तात्कालिक **ठोस** कार्यभार **दूसरे ढंग से** निरूपित करने चाहिए। जो कल तक काफ़ी था, वह **आज नाकाफ़ी है।** शायद कल तक क्रांति को स्वीकार करने की मांग एक उन्नत जनवादी नारे के रूप में काफ़ी थी। आज वह काफ़ी नहीं है। क्रांति ने श्री स्त्रूवे तक को इस बात के लिए मजबूर कर दिया कि वह उसे स्वीकार करें। अब अग्रगामी वर्ग को इस क्रांति के फ़ौरी तथा तात्कालिक कार्यभारों के **ख़ुद अंतर्य** को सटीक ढंग से निर्धारित कर देना चाहिए। क्रांति को स्वीकार करते हुए भी श्रीमान स्त्रूवे जैसे लोग बार-बार अपने लंबकर्ण खड़े कर लेते हैं और फिर शांतिपूर्ण परिणति की संभावना, **निकोलाई** द्वारा 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों को सत्ता-ग्रहण के लिए निमंत्रण, आदि के बारे में अपना पुराना राग अलापने लगते हैं। 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी श्रीमंत क्रांति को इसलिए स्वीकार करते हैं कि वे अधिक सुरक्षित ढंग से उसे अपने स्वार्थ में इस्तेमाल कर सकें, उसके साथ विश्वासघात कर सकें। इस समय हमारा कर्त्तव्य है कि हम सर्वहारा वर्ग को और सारी जनता को यह बता दें कि **क्रांति का नारा काफ़ी नहीं** है; यह बता दें कि **क्रांति के ख़ुद अंतर्य** की स्पष्ट तथा असंदिग्ध, सुसंगत तथा निश्चित परिभाषा कितनी आवश्यक है। और ऐसी परिभाषा उसी एक नारे में मिलती है, जो क्रांति की "निर्णायक विजय" की सही-सही अभिव्यक्ति कर सकता है, वह नारा है: सर्वहारा वर्ग तथा किसानों का क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व।

राजनीति में शब्दों का दुरुपयोग एक बहुत आम बात है। उदाहरण के लिए, "समाजवादी"–यह नाम अंग्रेज़ी बुर्जुआ उदारतावाद के समर्थकों ने (हारकोर्ट ने कहा था, "अब हम सब समाजवादी हैं–" "We all are socialists now"), बिस्मार्क के समर्थकों ने और पोप लियो तेरहवें के मित्रों ने अकसर अपने को दिया। "क्रांति" शब्द का भी बड़ी आसानी से दुरुपयोग किया जा सकता है और आंदोलन के विकास की एक ख़ास अवस्था में पहुंचकर इस प्रकार का दुरुपयोग अनिवार्य भी है। जब श्री स्त्रूवे ने क्रांति की ओर से बात करना शुरू किया, तो मुझे अनायास ही थियेर की याद आ गयी। फ़रवरी क्रांति[90] से कुछ दिन पहले इस दानवी बौने ने, बुर्जुआ वर्ग के राजनीतिक भ्रष्टाचार के इस आदर्श प्रवक्ता ने

आते हुए जनव्यापी तूफ़ान को भांप लिया और संसद के मंच से घोषणा कर दी कि वह **क्रांति की पार्टी में है!** (देखें मार्क्स की रचना 'फ़्रांस में गृहयुद्ध')। क्रांति की पार्टी की दिशा में 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथियों के मोड़ का राजनीतिक महत्व **बिलकुल वही** है, जो थियेर के "मोड़" का था। जब रूस में थियेर जैसे लोग क्रांति की पार्टी में होने की बात करने लगे हैं, तो इससे यह पता चलता है कि क्रांति का नारा नाकाफ़ी और निरर्थक हो गया है और वह कोई कार्यभार निर्धारित नहीं करता, क्योंकि क्रांति एक वास्तविकता बन गयी है और भांति-भांति के लोग उसके चारों ओर जमा होने लगे हैं।

वास्तव में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से क्रांति क्या है? उस कालातीत राजनीतिक ऊपरी ढांचे को बलपूर्वक छिन्न-भिन्न कर देना, जिसके साथ नये उत्पादन संबंधों की विसंगति एक ख़ास मौक़े पर पहुंचकर उसके ध्वंस का कारण बनती है। एकतंत्र शासन के साथ पूंजीवादी रूस के पूरे ढांचे की विसंगति, रूस के बुर्जुआ-जनवादी विकास के सारे तक़ाज़ों की विसंगति अब उसके ध्वंस का कारण बन गयी है और जितने ही दीर्घकाल तक इस विसंगति को कृत्रिम रूप से बरक़रार रखा गया था, ध्वंस उतना ही अधिक भीषण हुआ है। ऊपरी ढांचे का हर जोड़ खुलने लगा है, वह दबाव के आगे झुक रहा है, कमज़ोर होता जा रहा है। जनता को विविधतम **वर्गों** तथा सामाजिक समूहों के प्रतिनिधियों के ज़रिये अब स्वयं अपने प्रयासों से अपने लिए एक नया ऊपरी ढांचा बनाना पड़ेगा। विकास की एक ख़ास मंज़िल में पहुंचकर पुराने ऊपरी ढांचे की अनुपयोगिता सभी के लिए स्पष्ट हो जाती है। सभी लोग क्रांति को स्वीकार कर लेते हैं। अब काम इस बात का निर्णय करना है कि यह नया ऊपरी ढांचा **किन** वर्गों को बनाना चाहिए और **किस तरह** बनाना है। यदि यह निर्णय नहीं किया जाता, तो इस समय क्रांति का नारा बिलकुल खोखला और निरर्थक है, क्योंकि एकतंत्र शासन की दुर्बलता ग्रैंड ड्यूकों तथा 'मोस्कोव्स्किये वेदोमोस्ती'[91] को भी "क्रांतिकारी" बना देती है! यदि यह निर्णय नहीं किया जाता, तो अग्रगामी वर्ग के अग्रगामी जनवादी कार्यभारों की बात ही नहीं हो सकती। सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के जनवादी अधिनायकत्व का नारा ऐसा निर्णय प्रस्तुत करता है। यह नारा इस बात का निर्णय

करता है कि नये ऊपरी ढांचे के नये "निर्माता" किन वर्गों पर भरोसा कर सकते हैं, उन्हें किन वर्गों पर भरोसा करना चाहिए, कि इस नये ऊपरी ढांचे का चरित्र क्या हो (समाजवादी अधिनायकत्व न होकर "जनवादी" अधिनायकत्व) और उसका निर्माण किस तरह करना है (अधिनायकत्व, अर्थात बलपूर्वक प्रतिरोध का बलपूर्वक दमन, जनता के क्रांतिकारी वर्गों की हथियारबंदी)। इस समय क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व के इस नारे को, क्रांतिकारी सेना के, क्रांतिकारी सरकार के, क्रांतिकारी किसान समितियों के नारे को मानने से जो कोई इनकार करता है, वह या तो क्रांति के कार्यभारों को बिलकुल ही नहीं समझता, क्रांति के वर्तमान परिस्थिति द्वारा प्रस्तुत किये गये नये तथा उच्चतर कार्यभारों का निर्णय नहीं कर पाता, या फिर "क्रांति" के नारे का दुरुपयोग करते हुए जनता को धोखा दे रहा है, क्रांति के साथ विश्वासघात कर रहा है।

पहली बात कामरेड मार्तीनोव तथा उनके मित्रों पर लागू होती है। दूसरी बात श्री स्त्रूवे तथा ज़ेम्स्त्वो की पूरी "सांविधानिक-जनवादी" पार्टी पर लागू होती है।

कामरेड मार्तीनोव इतने चालाक और तेज़ निकले कि उन्होंने हमारे ऊपर क्रांति तथा अधिनायकत्व की अवधारणाओं की "अदला-बदली" करने का आरोप ठीक ऐसे वक़्त पर लगाया, जबकि क्रांति के विकास ने यह तक़ाज़ा किया कि अधिनायकत्व के नारे द्वारा उसके कार्यभार निर्धारित किये जायें। वास्तव में इस बार भी कामरेड मार्तीनोव का दुर्भाग्य यह रहा कि वह फिर पिछड़ गये, आख़िरी से पहलेवाली मंज़िल पर पहुंचकर अटक गये, **'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथ के स्तर पर पाये गये**, क्योंकि "क्रांति" को (कथनी में) स्वीकार करना और सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के जनवादी अधिनायकत्व को (अर्थात क्रांति को करनी में) मानने से इनकार करना आज 'ओस्वोबोज्देनिये' की राजनीतिक स्थिति के, अर्थात उदारतावादी राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग के हितों के अनुकूल है। उदारतावादी बर्जुआ वर्ग श्री स्त्रूवे के माध्यम से अब क्रांति के पक्ष में अपना मत व्यक्त कर रहा है। वर्ग-चेतन सर्वहारा क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों के माध्यम से सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के अधिनायकत्व की मांग कर

रहा है। और यहां पर नव 'ईस्क्रा' का लाल बुझक्कड़ बहस में कूद पड़ता है और चिल्लाकर कहता है: ख़बरदार, जो क्रांति और अधिनायकत्व की अवधारणाओं में "अदला-बदली की!" कहिये, क्या यह सच नहीं है कि नव 'ईस्क्रा'-पंथियों की भ्रांत स्थिति अब उनके नसीब में 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथ की दुम के पीछे निरंतर घिसटते रहना लिख देती है?

हम यह दिखा चुके हैं कि जनवादिता को स्वीकार करने के मामले में 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी एक-एक सीढ़ी करके ऊपर चढ़ रहे हैं (सामाजिक-जनवादियों के प्रोत्साहनकारी धक्कों के बिना नहीं)। पहले हमारे बीच झगड़ा इस बात पर था: शीपोव पद्धति (अधिकार और अधिकार-संपन्न ज़ेम्स्त्वो) या संविधानवाद? फिर झगड़ा इस बात पर रहा: सीमित मताधिकार या सार्विक मताधिकार? उसके बाद इस बात पर: क्रांति की स्वीकृति या एकतंत्र शासन के साथ दलालोंवाली सौदेबाज़ी? अब अंत में झगड़ा इस बात पर है: सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के अधिनायकत्व के बिना क्रांति की स्वीकृति या जनवादी क्रांति में इन वर्गों के अधिनायकत्व की मांग की स्वीकृति? यह संभव और संभाव्य है कि 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी श्रीमंत (इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि इस समयवाले ही या बुर्जुआ जनवादियों के वामपक्ष में उनके उत्तराधिकारी) एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ें, अर्थात कुछ समय बीतने पर (शायद जिस समय कामरेड मार्तीनोव एक क़दम और ऊपर चढ़ चुके होंगे) अधिनायकत्व के नारे को भी स्वीकार कर लें। यदि रूसी क्रांति सफलतापूर्वक आगे बढ़ती और निर्णायक विजय प्राप्त कर लेती है, तो ऐसा होना अनिवार्य ही है। उस दशा में सामाजिक-जनवाद की स्थिति क्या होगी? वर्तमान क्रांति की पूर्ण विजय जनवादी क्रांति की समाप्ति और समाजवादी क्रांति के लिए निर्णयकारी संघर्ष का श्रीगणेश होगी। आधुनिक किसानों की मांगों की पूर्ति, प्रतिक्रियावाद की पूर्ण पराजय और जनवादी जनतंत्र की स्थापना बुर्जुआ वर्ग की ही नहीं, टुटपुंजिया वर्ग की भी क्रांतिकारिता की पूर्ण समाप्ति और समाजवाद के लिए सर्वहारा वर्ग के वास्तविक संघर्ष का आरंभ होंगी। जनवादी क्रांति जितनी ही पूर्ण होगी, इस नये संघर्ष का विकास उतना ही अधिक शीघ्र और व्यापक, उतना ही अधिक शुद्ध और निर्णयात्मक

होगा। "जनवादी" अधिनायकत्व का नारा वर्तमान क्रांति के इतिहास की दृष्टि से सीमित चरित्र को और समस्त उत्पीड़न तथा समस्त शोषण से मज़दूर वर्ग की पूर्ण मुक्ति के लिए नयी व्यवस्था के आधार पर नये संघर्ष की आवश्यकता को व्यक्त करता है। दूसरे शब्दों में : जब जनवादी बुर्जुआ वर्ग या टुटपुंजिया वर्ग एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ जायेगा, जब केवल क्रांति ही नहीं, बल्कि क्रांति की पूर्ण विजय भी एक साकार सत्य बन जायेगी, तब हम जनवादी अधिनायकत्व के नारे "के स्थान पर" सर्वहारा वर्ग के समाजवादी अधिनायकत्व का, अर्थात पूर्ण समाजवादी क्रांति का नारा "रख देंगे" (और शायद इस पर नये, भावी मार्तीनोव लोग बहुत चीखें-चिल्लायेंगे)।

३. अधिनायकत्व का बाज़ारू-बुर्जुआ वर्णन और उस पर मार्क्स का विचार

१८४८ के 'नया राइन समाचारपत्र' में छपे मार्क्स के लेखों के अपने प्रकाशन की टिप्पणियों में मेहरिंग ने हमें बताया है कि बुर्जुआ प्रकाशनों में इस अख़बार को इस बात के लिए भी बुरा-भला कहा गया है कि, उनके कथनानुसार, उसने "जनवाद उपलब्ध करने के एकमात्र साधन के रूप में अधिनायकत्व को फ़ौरन लागू करने की मांग की थी" (Marx, *Nachlass*, खंड ३, पृ० ५३)[92]। बाज़ारू-बुर्जुआ दृष्टिकोण से अधिनायकत्व तथा जनवाद की अवधारणाएं एक-दूसरे को वर्जित करती हैं। वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को न समझने और राजनीति के मैदान में विभिन्न बुर्जुआ हल्क़ों तथा गुटों के तुच्छ कलह देखने का आदी होने के कारण बुर्जुआ वर्ग अधिनायकत्व का अर्थ यह लगाता है कि उसमें हर प्रकार की स्वतंत्रताएं तथा जनवाद की सारी गारंटी रद्द कर दी जाती है, हर प्रकार की मनमानी होती है और अधिनायक के वैयक्तिक हित में सत्ता का हर प्रकार से दुरुपयोग किया जाता है। सच तो यह है कि हमारे मार्तीनोव की रचनाओं में ठीक इसी बाज़ारू-बुर्जुआ दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होती है, जो नव 'ईस्क्रा' में अपनी "नयी मुहिम" को यह कहकर ख़त्म करते

हैं कि अधिनायकत्व के नारे के प्रति 'व्पेर्योद' तथा 'प्रोलेतारी' के पक्ष-पात का कारण लेनिन की "अपनी क़िस्मत आज़माने की तीव्र इच्छा" है ('ईस्क्रा', अंक १०३, पृ० ३, कालम २)। यह सुंदर व्याख्या और 'नया राइन समाचारपत्र' पर बुर्जुआ लोगों द्वारा लगाया गया अधिनायकत्व के प्रचार का आरोप पूर्णतः समस्तरीय हैं। फलतः क्रांति और अधिनायकत्व की अवधारणाओं में "अदला-बदली" करने के लिए मार्क्स पर भी उंगली उठायी गयी थी, बेशक "सामाजिक-जनवादियों" द्वारा नहीं, बल्कि बुर्जुआ उदारतावादियों द्वारा! मार्तीनोव को वैयक्तिक अधिनायकत्व से भिन्न वर्गीय अधिनायकत्व का अर्थ समझाने के लिए और समाजवादी अधि-नायकत्व के कार्यभारों से भिन्न जनवादी अधिनायकत्व के कार्यभार समझाने के लिए 'नया राइन समाचारपत्र' के विचारों पर कुछ विस्तार के साथ ध्यान देना अनुचित न होगा।

'नया राइन समाचारपत्र' ने १४ सितंबर, १८४८ को लिखा कि "क्रांति के बाद राज्य की हर अस्थायी व्यवस्था एक अधिनायकत्व की, वह भी ज़ोरदार अधिनायकत्व की मांग करती है। हमने शुरू से ही कैम्प-हाउसेन" (१८ मार्च, १८४८ के बाद मंत्रिमंडल के प्रधान) "को इस-लिए बुरा-भला कहा है कि उन्होंने अधिनायक के ढंग से काम नहीं किया, कि उन्होंने फ़ौरन पुरानी संस्थाओं को भंग करके उनके अवशेषों का उन्मूलन नहीं कर दिया। जिस समय श्रीमान कैम्पहाउसेन अपने आपको सांवि-धानिक भुलावों की लोरी से बहला रहे थे, उस बीच पराजित पार्टी (अर्थात प्रतिक्रियावाद की पार्टी) नौकरशाही में, सेना में अपनी स्थिति मज़बूत कर चुकी थी और जहां-तहां खुले संघर्ष का भी साहस करने लगी थी।"[93]

मेहरिंग ने ठीक ही कहा है कि ये शब्द चंद प्रस्थापनाओं में उन सभी बातों का सारांश प्रस्तुत कर देते हैं, जो 'नया राइन समाचारपत्र' में कैम्पहाउसेन मंत्रिमंडल के बारे में लंबे-लंबे लेखों में विस्तार के साथ विक-सित की गयी थीं। मार्क्स के इन शब्दों से हमें क्या पता चलता है? यह कि अस्थायी क्रांतिकारी सरकार को अधिनायकी ढंग से काम करना **चाहिए** (यह एक ऐसी प्रस्थापना थी, जिसे समझने में 'ईस्क्रा' बिलकुल असमर्थ था, क्योंकि वह अधिनायकत्व के नारे से परहेज़ करता था), कि ऐसे

अधिनायकत्व का कार्यभार पुरानी संस्थाओं के अवशेषों का उन्मूलन करना है (ठीक यही बात रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के प्रतिक्रांति विरोधी संघर्षवाले प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कही गयी थी और सम्मेलन के प्रस्ताव में छोड़ दी गयी थी, जैसा कि हम ऊपर दिखा चुके हैं)। तीसरी और आख़िरी बात यह कि इन शब्दों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मार्क्स ने क्रांति तथा खुले गृहयुद्ध के ज़माने में "सांविधानिक भुलावों" में पड़े रहने के लिए बुर्जुआ जनवादियों को लताड़ा था। 'नया राइन समाचारपत्र' के ६ जून, १८४८ के अंक में प्रकाशित लेख से इन शब्दों का अर्थ विशेष रूप से स्पष्ट हो जाता है। मार्क्स ने लिखा: "जन-संविधान सभा को सबसे पहले सक्रिय, क्रांतिकारी ढंग से सक्रिय सभा होनी चाहिए। परंतु फ़्रैंकफ़ुर्ट की सभा स्कूली ढंग से संसद-पद्धति का अभ्यास करने में संलग्न है और उसने सरकार को कार्रवाई की छूट दे रखी है। मान लें कि यह विद्वत्सभा गहरे विचार-विमर्श के बाद अच्छी से अच्छी कार्यसूची और अच्छे से अच्छा संविधान तैयार करने में सफल हो जाती है। लेकिन उस अच्छी से अच्छी कार्यसूची और अच्छे से अच्छे संविधान से क्या लाभ होगा, अगर उसी अर्से में जर्मन सरकारें कार्यसूची में पहले नंबर पर संगीनें रख दें?"[94]

अधिनायकत्व के नारे का यही अर्थ है। इस बात से हम देख सकते हैं कि "संविधान सभा स्थापित करने के फ़ैसले" को निर्णायक विजय कहनेवाले, या हमें "चरम क्रांतिकारी विरोध-पक्ष की पार्टी बने रहने" का निमंत्रण देनेवाले प्रस्तावों के प्रति मार्क्स का रवैया क्या होता!

राष्ट्रों के जीवन की बड़ी-बड़ी समस्याएं केवल बल द्वारा ही तय होती हैं। आम तौर से स्वयं प्रतिक्रियावादी वर्ग ही पहले हिंसा का, गृहयुद्ध का सहारा लेते हैं, वे ही "कार्यसूची में पहले नंबर पर संगीनें रख देते हैं", जैसा कि रूसी एकतंत्र शासन ने किया और ६ जनवरी के बाद से हर जगह नियमित तथा अडिग रूप से करता जा रहा है। और चूंकि ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी है, चूंकि संगीनें सचमुच राजनीतिक कार्यसूची में पहले नंबर पर रख दी गयी हैं, चूंकि विद्रोह की नितांत आवश्यकता तथा तात्कालिकता सिद्ध हो चुकी है, इसलिए सांविधानिक भुलावे तथा स्कूली

ढंग से संसद-पद्धति का अभ्यास क्रांति के साथ बुर्जुआ विश्वासघात के लिए मात्र आड़ का काम देते हैं, वे इस को छिपाने के लिए आड़ का काम देते हैं कि बुर्जुआ वर्ग क्रांति से किस प्रकार "मुंह फेर रहा" है। इसलिए सच्चे क्रांतिकारी वर्ग को ऐसे समय में अधिनायकत्व का ही नारा देना चाहिए।

इस अधिनायकत्व के कार्यभारों के प्रश्न पर मार्क्स ने 'नया राइन समाचारपत्र' में ही लिखा था: "राष्ट्रीय सभा को कालातीत सरकारों की प्रतिक्रियावादी कोशिशों के ख़िलाफ़ अधिनायकी ढंग से कार्रवाई करनी चाहिए थी और तब वह जनमत की ऐसी शक्ति अपने पक्ष में खींच लेती कि उसके सामने सारी संगीनें चकनाचूर हो जातीं... परंतु यह सभा जर्मन जनता को अपने साथ लेकर चलने या उसके साथ चलने के बजाय जर्मन जनता को अपनी बकवास से परेशान करती रहती है।"[95] मार्क्स की राय में राष्ट्रीय सभा को यह करना चाहिए था कि "जर्मनी में वस्तुतः विद्य-मान शासन-व्यवस्था की उन तमाम चीज़ों को समूल नष्ट कर देती, जो जनता की प्रभुसत्ता के उसूल का खंडन करती थीं", फिर "उस क्रांतिकारी आधार को सुदृढ़ बनाती, जिस पर वह टिकी थी, ताकि क्रांति द्वारा उपलब्ध की गयी जनता की प्रभुसत्ता को सभी प्रहारों से सुरक्षित बनाया जा सकता।"[96]

इस प्रकार, १८४८ में मार्क्स ने क्रांतिकारी सरकार या अधिनायकत्व के सामने जो कार्यभार रखे थे, उनका मतलब सारतः सबसे पहले **जनवादी** क्रांति था: प्रतिक्रांति से प्रतिरक्षा और जनता की प्रभुसत्ता का खंडन करने-वाली हर चीज़ का वास्तव में उन्मूलन। यह क्रांतिकारी-जनवादी अधि-नायकत्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

आगे चलें: मार्क्स की राय में किन वर्गों के लिए यह कार्यभार (जनता की प्रभुसत्ता के उसूल का पूरी तरह कार्यतः उपयोग करने और प्रति-क्रांति के प्रहारों को निष्फल बनाने का कार्यभार) संपन्न करना संभव और लाज़िमी था? मार्क्स "जनता" की बात करते हैं। परंतु हम जानते हैं कि वह "जनता" की एकता और जनता के बीच वर्ग संघर्ष के अभाव से संबंधित टुटपंजिया भ्रांतियों के ख़िलाफ़ हमेशा निर्ममतापूर्वक लड़ते रहे। "जनता" शब्द का इस्तेमाल करके मार्क्स ने इस शब्द द्वारा वर्गों के पार-

स्परिक भेदों पर पर्दा नहीं डाला, बल्कि उन्होंने केवल उन ख़ास तत्वों को एकबद्ध कर दिया, जो क्रांति को पूर्ति तक ले जाने की क्षमता रखते हैं।

'नया राइन समाचारपत्र' ने लिखा कि १८ मार्च को बर्लिन के सर्वहारा वर्ग की विजय के बाद क्रांति के दो परिणाम निकले: "एक ओर तो, जनता सशस्त्र हो गयी, उसे संगठन बनाने का अधिकार मिल गया और जनता की प्रभुसत्ता वास्तव में हासिल हो गयी; दूसरी ओर, राजतंत्र और कैम्पहाउसेन-हान्सेमान मंत्रिमंडल, अर्थात बड़े बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधियों की सरकार ज्यों की त्यों बनी रही। इस प्रकार, क्रांति के परिणामों के दो क्रम थे, जिनका अलग-अलग दिशाओं में जाना अनिवार्य था। जनता ने विजय प्राप्त की, उसने निश्चित रूप से जनवादी ढंग की स्वतंत्रताएं प्राप्त कीं, परंतु प्रत्यक्ष सत्ता उसके हाथ में न आकर बड़े बुर्जुआ वर्ग के हाथों में चली गयी। सारांश यह कि क्रांति अंत तक पूरी नहीं हुई। जनता ने बड़े बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधियों को मंत्रिमंडल बनाने दिया और बड़े बुर्जुआ वर्ग के उन प्रतिनिधियों ने प्रशा के पुराने अभिजात वर्ग तथा नौकरशाही के साथ गठबंधन का प्रस्ताव करके फ़ौरन अपनी चेष्टाओं को प्रकट कर दिया। आर्निम, कानिट्ज़ तथा श्वेरिन मंत्रिमंडल में शामिल हो गये।

"**बड़े बुर्जुआ वर्ग ने, जो शुरू से ही क्रांति विरोधी था, जनता के भय से, अर्थात मज़दूरों तथा जनवादी बुर्जुआ वर्ग के भय से प्रतिक्रियावादी शक्तियों के साथ बचाव तथा आक्रमण, दोनों के लिए गठबंधन कर लिया**" (शब्दों पर ज़ोर हमारा)।[97]

इस प्रकार, केवल "संविधान सभा स्थापित करने का फ़ैसला" ही नहीं, बल्कि उसका सचमुच बुलाया जाना भी क्रांति की निर्णायक विजय के लिए अपर्याप्त है! सशस्त्र संघर्ष में आंशिक विजय (१८ मार्च, १८४८ को सेना के ख़िलाफ़ बर्लिन के मज़दूरों की विजय) के बाद भी एक "अपूर्ण" क्रांति, एक ऐसी क्रांति, "जिसे पूर्ति तक न ले जाया गया हो", संभव है। तब उसकी पूर्ति किस बात पर निर्भर होती है? वह इस बात पर निर्भर होती है कि तात्कालिक शासन-व्यवस्था किसके हाथों में जाती है: पेत्रुन्केविच तथा रोदिचेव जैसे लोगों के हाथों में, अर्थात कैम्पहाउसेन तथा हान्सेमान जैसे लोगों के हाथों में, या **जनता** के हाथों

में, अर्थात मज़दूरों तथा जनवादी बुर्जुआ वर्ग के हाथों में। पहली सूरत में सत्ता पर बुर्जुआ वर्ग का अधिकार होगा और सर्वहारा वर्ग को "आलोचना की स्वतंत्रता" होगी, "चरम क्रांतिकारी विरोध-पक्ष की पार्टी बने रहने की" स्वतंत्रता होगी। विजय के फ़ौरन बाद बुर्जुआ वर्ग प्रतिक्रियावादी शक्तियों के साथ मित्रता कर लेगा (उदाहरण के लिए, यदि रूस में सड़कों पर सेना के ख़िलाफ़ लड़ाई में पीटर्सबर्ग के मज़दूरों की केवल आंशिक विजय होती और वे सरकार बनाने का काम पेत्रुन्केविच और मंडली के हाथ में छोड़ देते, तो वहां भी अनिवार्य रूप से यही होता)। दूसरी सूरत में क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व, अर्थात क्रांति की पूर्ण विजय संभव होगी।

अब केवल अधिक सटीक ढंग से यह निर्धारित करना रह जाता है कि "जनवादी बुर्जुआ वर्ग" (demokratische Bürgerschaft) से मार्क्स का वास्तव में क्या मतलब था, जिसे मज़दूरों के साथ मिलाकर उन्होंने जनता कहा था और जिसे उन्होंने बड़े बुर्जुआ वर्ग से अलग बताया था।

२९ जुलाई, १८४८ के 'नया राइन समाचारपत्र' में प्रकाशित एक लेख के निम्नलिखित अंश में इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर मिल जाता है: "... १८४८ की जर्मन क्रांति १७८९ की फ़्रांसीसी क्रांति की केवल विडंबना है।

"४ अगस्त, १७८९ को, बैस्टील पर धावे के तीन सप्ताह बाद फ़्रांसीसी जनता एक ही दिन में सभी सामंती बंधनों पर हावी हो गयी।

"११ जुलाई, १८४८ को, मार्च की बैरीकेडों के चार महीने बाद सामंती बंधन जर्मन जनता पर हावी हो गये। Teste Gierke cum Hansemanno*.

---

* "गवाह: श्री गिएर्के तथा श्री हान्सेमान।" हान्सेमान एक मंत्री थे, जो बड़े बुर्जुआ वर्ग की पार्टी का प्रतिनिधित्व करते थे (उनका रूसी नमूना त्रुबेत्सकोई या रोदिचेव जैसे लोग हैं); हान्सेमान के मंत्रिमंडल में गिएर्के कृषि-मंत्री थे, जिन्होंने "सामंती बंधनों के उन्मूलन" की एक योजना, "बिना मुआवज़ा" उन्मूलन की मानो "साहसपूर्ण" योजना बनायी थी, जो वास्तव में केवल छोटे-मोटे तथा महत्वहीन बंधनों को ख़त्म

"१७८९ का फ़ांसीसी बुर्जुआ वर्ग एक क्षण के लिए भी अपने संगी-साथियों का, किसानों का पल्ला छोड़कर नहीं भागा। वह जानता था कि देहातों में सामंतशाही का विनाश, स्वतंत्र भूस्वामी (grundbesitzenden) किसान वर्ग का निर्माण ही उसके शासन का आधार है।

"१८४८ का जर्मन बुर्जुआ वर्ग बिलकुल बेशर्मी के साथ किसानों से विश्वासघात कर रहा है, जो उसके सर्वाधिक स्वाभाविक मित्र हैं, उसके रक्त-मांस हैं और जिनके बिना वह अभिजात वर्ग के मुक़ाबले बेबस होता है।

"सामंती अधिकारों की बरक़रारी, (भ्रामक) मुआवज़े के रूप में उनकी स्वीकृति – यह है १८४८ की जर्मन क्रांति का परिणाम। खोदा पहाड़ निकली चुहिया।"[98]

यह बहुत शिक्षाप्रद अंश है, जिसमें हमें चार महत्वपूर्ण प्रस्थापनाएं मिलती हैं: १) अपूर्ण जर्मन क्रांति पूर्ण फ़ांसीसी क्रांति से इसलिए भिन्न है कि जर्मन बुर्जुआ वर्ग ने आम तौर से जनवाद के साथ ही नहीं, बल्कि ख़ास तौर से किसानों के साथ भी विश्वासघात किया। २) जनवादी क्रांति की पूर्ण निष्पत्ति का आधार किसानों के स्वतंत्र वर्ग का निर्माण है। ३) इस प्रकार के वर्ग के निर्माण का अर्थ है सामंती बंधनों का उन्मूलन, सामंतशाही का विनाश, पर उसका अर्थ अभी समाजवादी क्रांति नहीं होता। ४) बुर्जुआ वर्ग के, याने जनवादी बुर्जुआ वर्ग के "सर्वाधिक स्वाभाविक" मित्र किसान हैं, जिनके बिना प्रतिक्रियावाद के मुक़ाबले वह बिलकुल "बेबस" होता है।

ठोस राष्ट्रीय विशिष्टताओं के अनुसार उचित परिवर्तन करके और सामंतशाही के स्थान पर भूदासता रखकर ये सभी प्रस्थापनाएं १९०५ के रूस पर भी पूरी तरह लागू की जा सकती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि जर्मनी के अनुभव का स्पष्टीकरण जिस रूप में मार्क्स ने किया है, उससे

करने और ज़्यादा बुनियादी बंधनों को बरक़रार रखने या मुआवज़ा देकर ख़त्म करने की योजना थी। श्री गिएर्के रूस के काब्लुकोव, मनुइलोव, हर्ज़ेनस्टीन तथा ऐसे ही दूसरे बुर्जुआ-उदारतावादी किसान-मित्रों की तरह के थे, जो "किसानों के भूस्वामित्व में वृद्धि" तो चाहते हैं, पर ज़मींदारों को नाराज़ नहीं करना चाहते।

यदि हम सबक़ लें, तो क्रांति की निर्णायक विजय के लिए सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व के अतिरिक्त और किसी नारे पर हम नहीं पहुंच सकते। इसमें कोई संदेह नहीं कि जिस "जनता" को १८४८ में मार्क्स ने प्रतिरोधकारी प्रतिक्रियावाद तथा विश्वासघाती बुर्जुआ वर्ग के मुक़ाबले में पेश किया था, उसके मुख्य उपादान सर्वहारा वर्ग तथा किसान हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि रूस में भी उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग और श्रीमंत 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी किसानों के साथ विश्वास-घात कर रहे हैं और करते रहेंगे, अर्थात वे अपने को छद्म सुधार तक ही सीमित रखेंगे और ज़मींदारों तथा किसानों की निर्णायक लड़ाई में ज़मींदारों का पक्ष लेंगे। इस संघर्ष में केवल सर्वहारा वर्ग ही आख़िर तक किसानों का साथ दे सकता है। अंततोगत्वा इसमें कोई संदेह नहीं है कि रूस में भी किसान संघर्ष की सफलता, अर्थात सारी भूमि की किसानों को सुपुर्दगी पूर्ण जनवादी क्रांति की द्योतक और परिणति तक पहुंचायी गयी क्रांति का सामाजिक अवलंब होगी। परंतु वह किसी प्रकार भी समाजवादी क्रांति या "समाजीकरण" नहीं होगी, जिसकी बात टुटपुंजिया वर्ग के विचार-धारा-निरूपक, समाजवादी-क्रांतिकारी करते हैं। किसान विद्रोह की सफलता, जनवादी क्रांति की विजय जनवादी जनतंत्र के आधार पर समाजवाद के वास्ते सच्चे तथा निर्णायक संघर्ष के लिए केवल रास्ता साफ़ करेगी। इस संघर्ष में भूस्वामी वर्ग के रूप में किसानों की वही विश्वासघाती तथा ढुलमुल भूमिका रहेगी, जो इस समय जनवाद के लिए संघर्ष में बुर्जुआ वर्ग की है। इस बात को भुला देना समाजवाद को भुला देना है, सर्वहारा वर्ग के वास्तविक हितों तथा कार्यभारों के बारे में अपने आपको और दूसरों को धोखा देना है।

१८४८ में मार्क्स के जो विचार थे, उन्हें प्रस्तुत करने में कुछ छूट न रह जाये, इसके लिए तत्कालीन जर्मन सामाजिक-जनवाद (या यदि उस युग की भाषा में कहा जाये, तो सर्वहारा वर्ग की कम्युनिस्ट पार्टी) और आज के रूसी सामाजिक-जनवाद के बीच एक बुनियादी अंतर पर ध्यान देना आवश्यक है। मेहरिंग कहते हैं:

"'नया राइन समाचारपत्र' राजनीतिक रंगमंच पर 'जनवाद के मुखपत्र' के रूप में प्रकट हुआ। उसके सभी लेखों में जो विचार लाल

धागे की तरह पिरोया होता था, उसके बारे में किसी प्रकार की ग़लती नहीं हो सकती। परंतु वह बुर्जुआ वर्ग के हितों के ख़िलाफ़ सर्वहारा वर्ग के हितों की अपेक्षा निरंकुश सत्ता तथा सामंतशाही के ख़िलाफ़ बुर्जुआ क्रांति के हितों का प्रत्यक्ष समर्थन अधिक करता था। उसके कालमों में आपको क्रांति के दौरान विशेष मज़दूर आंदोलन के बारे में बहुत कम सामग्री मिलेगी, हालांकि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उसके साथ ही मोल तथा शापर के संपादकत्व में सप्ताह में दो बार कोलोन मज़दूर संघ का एक विशेष मुखपत्र[99] निकलता था। कुछ भी हो, आज के पाठक को यह बात खटकेगी कि 'नया राइन समाचारपत्र' अपने समय के जर्मन मज़दूर आंदोलन की ओर कितना कम ध्यान देता था, हालांकि उसमें काम करनेवाले सबसे योग्य व्यक्ति स्टीफ़ान बोर्न पेरिस तथा ब्रसेल्स में मार्क्स तथा एंगेल्स के शिष्य रह चुके थे और १८४८ में उनके अख़बार के बर्लिन संवाददाता थे। बोर्न ने अपने 'संस्मरण' में लिखा है कि मार्क्स तथा एंगेल्स ने मज़दूरों के बीच उनके आंदोलन के ख़िलाफ़ एक शब्द भी नहीं कहा। लेकिन एंगेल्स के बाद के वक्तव्यों से ऐसा अनुमान लगाना संभव है कि वे कम से कम इस आंदोलन के तरीक़ों से असंतुष्ट थे। उनका असंतोष इस एतबार से उचित था कि जर्मनी के अधिकांश भाग में सर्वहारा वर्ग की उस समय तक पूर्णतः अविकसित वर्ग चेतना के लिए बोर्न को अनेक रिआयतें देनी पड़ी थीं, जो 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के दृष्टिकोण से आलोचना की कसौटी पर पूरी नहीं उतरतीं। उनका असंतोष इस एतबार से अनुचित था कि इन बातों के बावजूद बोर्न अपने आंदोलन को अपेक्षाकृत काफ़ी उच्च स्तर पर क़ायम रख सके... निःसंदेह मार्क्स तथा एंगेल्स का यह सोचना इतिहास तथा राजनीति की दृष्टि से सही था कि मज़दूर वर्ग का बुनियादी हित बर्जुआ क्रांति को जहां तक हो सके आगे बढ़ाने में है... फिर भी मज़दूर आंदोलन का सामान्य सहज बोध अधिक से अधिक मेधावी विचारकों की अवधारणाओं को भी किस प्रकार सुधार सकता है, इसका उल्लेखनीय प्रमाण इस बात से मिलता है कि अप्रैल, १८४९ में उन्होंने मज़दूरों के ख़ास संगठन के पक्ष में अपना मत प्रकट किया और मज़दूरों की उस कांग्रेस में भाग लेने का फ़ैसला किया, जिसकी तैयारी विशेषतः पूर्वी एल्ब (पूर्वी प्रशा) का सर्वहारा वर्ग कर रहा था।"

इस प्रकार, अप्रैल, १८४९ में जाकर क्रांतिकारी अख़बार का प्रकाशन आरंभ होने के लगभग पूरे एक वर्ष बाद ('नया राइन समाचारपत्र' का प्रकाशन १ जून, १८४८ को आरंभ हुआ था) मार्क्स तथा एंगेल्स ने मज़दूरों के ख़ास संगठन के पक्ष में अपना मत प्रकट किया! उस समय तक वे केवल "जनवाद का मुखपत्र" चला रहे थे, जिसका मज़दूरों की किसी स्वतंत्र पार्टी के साथ कोई संगठनात्मक संबंध नहीं था! यह बात आजकल के हमारे दृष्टिकोण से बेहूदा और असंभव भले ही प्रतीत हो, पर उससे स्पष्ट रूप से यह पता चलता है कि उन दिनों की जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी और आजकल की रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी में ज़मीन-आसमान का अंतर है। इस बात से पता चलता है कि जर्मन जनवादी क्रांति में (१८४८ में आर्थिक तथा राजनीतिक, दोनों ही दृष्टियों से जर्मनी के पिछड़ेपन के कारण – राज्य के रूप में उसमें एकता न होने के कारण) आंदोलन की सर्वहारा विशिष्टताएं, उसके अंदर सर्वहारा धारा कितनी कम देखने में आती थीं। उस दौर में और उससे कुछ बाद में एक स्वतंत्र सर्वहारा पार्टी संगठित करने की आवश्यकता के बारे में मार्क्स द्वारा बार-बार की गयी घोषणाओं को जांचते समय इस बात को भूलना नहीं चाहिए (जैसे, उदाहरण के लिए, प्लेख़ानोव भूलते हैं)। मार्क्स जनवादी क्रांति के अनुभव के फलस्वरूप ही लगभग पूरे एक वर्ष बाद इस व्यावहारिक निष्कर्ष पर पहुंचे – इतना तंग-नज़रीभरा, इतना टुटपुंजिया था उस समय जर्मनी का पूरा वातावरण। हमारे लिए यह निष्कर्ष अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद के पचास वर्ष के अनुभव की एक पुरानी तथा ठोस उपलब्धि है – ऐसी उपलब्धि, जिसे लेकर हमने रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी को संगठित करना **आरंभ किया**। हमारे लिए, उदाहरण के लिए, इस बात का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता कि क्रांतिकारी सर्वहारा अख़बार सर्वहारा वर्ग की सामाजिक-जनवादी पार्टी के बाहर हों, कि वे क्षण भर के लिए भी केवल "जनवाद के मुखपत्रों" के रूप में निकलें।

परंतु मार्क्स तथा स्टीफ़ान बोर्न के बीच जो अंतर प्रकट होना अभी मुश्किल से आरंभ हुआ था, वह हमारे यहां उतने ही अधिक विकसित रूप में मौजूद है, जितनी अधिक हमारी क्रांति के जनवादी प्रवाह में सर्वहारा धारा शक्तिशाली है। स्टीफ़ान बोर्न द्वारा संचालित आंदोलन के बारे

में मार्क्स तथा एंगेल्स के संभव असंतोष की बात कहते हुए मेहरिंग ने अपने विचारों को बहुत हल्के तथा बहुत गोल-मोल ढंग से व्यक्त किया है। १८८५ में एंगेल्स ने (Enthüllungen über den Kommunistenprozeß zu Köln, Zürich, 1885,* की अपनी भूमिका में) बोर्न के बारे में यह लिखा था:

कम्युनिस्ट लीग[100] के सदस्य हर जगह चरमपंथी जनवादी आंदोलन की अगुआई कर रहे थे और इस प्रकार यह सिद्ध कर रहे थे कि लीग क्रांतिकारी सरगर्मी की एक बहुत अच्छी पाठशाला थी। "कंपोज़ीटर स्टीफ़ान बोर्न ने, जो ब्रसेल्स तथा पेरिस में लीग के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में काम कर चुके थे, बर्लिन में 'मज़दूर बिरादरी' (Arbeiterverbrüderung) की स्थापना की, जो बहुत व्यापक होती गयी और १८५० तक क़ायम रही। बोर्न प्रतिभाशाली युवक थे, परंतु राजनीतिक नेता के रूप में सामने आने में उन्होंने बहुत जल्दबाज़ी की। वह बेहद पंचमेली क़िस्म के ऐरों-ग़ैरों (Kreti und Plethi) के साथ 'भाईचारा' क़ायम करते थे, ताकि अपने इर्द-गिर्द एक भीड़ जुटा सकें। वह उन लोगों में क़तई नहीं थे, जो विरोधी प्रवृत्तियों में एकता स्थापित कर सकें या अंधकार में प्रकाश ला सकें। फलस्वरूप उनकी बिरादरी के आधिकारिक प्रकाशनों में 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में प्रस्तुत किये गये विचारों को गिल्ड की यादों और आकांक्षाओं के साथ, लुई ब्लां तथा प्रूदों के विचारांशों के साथ, संरक्षणवाद की रक्षा, आदि के साथ मिलाकर एक चूं-चूं का मुरब्बा तैयार कर दिया जाता था; सारांश यह कि ये लोग सबको ख़ुश करना चाहते थे (Allen alles sein)। **वे विशेष रूप से हड़तालों, ट्रेड-यूनियनों तथा उत्पादकों की सहकारी समितियों के संगठन का काम करते थे और इस बात को भुला देते थे कि सबसे बड़ा सवाल राजनीतिक विजय द्वारा पहले उस क्षेत्र पर अधिकार करने का है,** जिसमें ही इस प्रकार के काम स्थायी आधार पर पूरे किये जा सकते हैं (शब्दों पर ज़ोर हमारा)। जब बाद में चलकर प्रतिक्रियावाद की विजयों के कारण इस बिरादरी के

---

*'कोलोन में कम्युनिस्टों के मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन', ज़ूरिच, १८८५। **–सं०**

नेता क्रांतिकारी संघर्ष में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने की ग्रावश्यकता को समझने लगे, तो स्वाभाविक रूप से वह ग्रधकचरी भीड़, जिसे उन्होंने ग्रपने चारों ग्रोर एकत्रित किया था, उन्हें छोड़कर चली गयी। बोर्न ने मई, १८४९ में ड्रेसडेन के विद्रोह में भाग लिया ग्रौर उसमें बाल-बाल बच गये। परंतु मज़दूर बिरादरी पृथक संघ के रूप में सर्वहारा वर्ग के महान राजनीतिक ग्रांदोलन से बरतरफ़ हो गयी। उसका ग्रस्तित्व बहुत हद तक केवल काग़ज़ी था ग्रौर उसकी भूमिका इतनी गौण थी कि प्रतिक्रियावाद ने उसे १८५० तक ग्रौर उसकी बची-खुची शाखाग्रों को कई वर्ष बाद तक भी कुचलना ग्रावश्यक नहीं समझा। बोर्न (जिनका ग्रसली नाम Buttermilch था)* राजनीतिक नेता नहीं, बल्कि स्विट्ज़रलैंड में एक तुच्छ प्रोफ़ेसर बन गये हैं, जो ग्रब गिल्ड की भाषा में मार्क्स का ग्रनुवाद न करके मधुर जर्मन भाषा में विनम्र रेनान का ग्रनुवाद करते हैं।"[102]

जनवादी क्रांति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियों का मूल्यांकन एंगेल्स ने इस ढंग से किया था!

हमारे नव 'ईस्क्रा'-पंथी भी ग्रर्थवाद की ग्रोर बढ़ते जा रहे हैं ग्रौर इतने ग्रनुचित उत्साह से बढ़ते जा रहे हैं कि राजतंत्रवादी बुर्जुग्रा वर्ग

---

*एंगेल्स का ग्रनुवाद करते समय पहले संस्करण में मैंने यह ग़लती की थी कि मैं Buttermilch (दही — **सं०**) शब्द को व्यक्तिवाचक संज्ञा के बजाय जातिवाचक संज्ञा समझ बैठा था। ज़ाहिर है, इस ग़लती पर मेंशेविक बहुत ख़ुश हुए। कोलत्सोव ने लिखा कि मैंने "एंगेल्स को ग्रौर गूढ़ बना दिया" ('दो वर्ष के ग्रंदर' नामक लेख-संग्रह में पुनर्मुद्रित) ग्रौर प्लेख़ानोव तो ग्राज तक 'तोवारिश्च'[101] में इस ग़लती का हवाला देते हैं — सारांश यह कि इससे जर्मनी में १८४८ के **मज़दूर ग्रांदोलन की दो प्रवृत्तियों के सवाल से कन्नी काटने का बहुत ग्रच्छा बहाना** मिल गया — एक तो बोर्न की प्रवृत्ति (जो हमारे ग्रर्थवादियों से मिलती-जुलती है) ग्रौर दूसरी मार्क्सवादी प्रवृत्ति। ग्रपने विरोधी की ग़लती का फ़ायदा उठाना, चाहे वह केवल बोर्न के नाम के बारे में ही क्यों न हो, बिलकुल स्वाभाविक है। परंतु ग्रनुवाद में किसी एक सुधार को दो कार्यनीतियों के सवाल से कन्नी काटने के लिए इस्तेमाल करना समस्या के सारतत्व से कतराना है। (१९०७ के संस्करण में लेखक की टिप्पणी। — **सं०**)

भी "समझदारी की बातें करने" के लिए उनकी प्रशंसा कर रहा है। वे भी अपने चारों ओर एक पंचमेली भीड़ जमा करते हैं, अर्थवादियों की लल्लो-चप्पो करते हैं, "पहलक़दमी", "जनवादिता", "स्वायत्त अधिकार", आदि, आदि के नारों से अविकसित अवाम को शब्दाडंबरपूर्ण ढंग से अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उनके मज़दूर संघों का अस्तित्व भी अकसर ख़्लेस्ताकोववाले[103] नव 'ईस्क्रा' के पृष्ठों पर ही है। उनके नारों तथा प्रस्तावों में भी "सर्वहारा वर्ग के महान राजनीतिक आंदोलन" के कार्यभारों को उसी तरह न समझ पाने का प्रमाण मिलता है।

पार्टी संगठन और पार्टी साहित्य

अक्तूबर क्रांति[104] के समय से रूस में सामाजिक-जनवादी काम के लिए पैदा हुई नयी परिस्थितियों ने पार्टी साहित्य के सवाल को सामने ला दिया है। क़ानूनी और ग़ैर क़ानूनी पत्र-पत्रिकाओं का भेद – सामंती, एकतंत्रीय रूस के युग की वह मनहूस विरासत – अब मिटने लगा है। लेकिन अभी वह ख़त्म नहीं हुआ है। हमारे प्रधान मंत्री की मक्कार सरकार का पागलपन अभी इस हद तक जारी है कि 'मज़दूरों के प्रतिनिधियों की सोवियत के समाचार' ('इज़्वेस्तिया')[105] को "ग़ैर क़ानूनी तौर से" छापा जा रहा है। लेकिन सरकार जिस चीज़ को रोकने में असमर्थ है, उसका "निषेध करने" की मूर्खतापूर्ण कोशिशों से सरकार को अपमान के सिवा, नयी नैतिक चोटों के सिवा और कुछ भी हासिल नहीं होता।

जब तक ग़ैर क़ानूनी और क़ानूनी पत्र-पत्रिकाओं का भेद मौजूद था, तब तक पार्टी और ग़ैर पार्टी पत्र-पत्रिकाओं का सवाल बेहद आसानी से और बेहद ग़लत तथा भद्दे तरीक़े से तय होता था। सारी ग़ैर क़ानूनी पत्र-पत्रिकाएं पार्टी पत्र-पत्रिकाएं थीं, और ऐसे संगठनों द्वारा प्रकाशित और ऐसे दलों द्वारा संचालित थीं, जो किसी न किसी ढंग से पार्टी के अमली कार्यकर्त्ताओं के दलों से संबंधित होती थीं। सारी क़ानूनी पत्र-पत्रिकाएं ग़ैर पार्टी थीं, क्योंकि पार्टियों पर रोक लगी हुई थी, लेकिन उनका "झुकाव" किसी न किसी पार्टी की तरफ़ होता था। भद्दे सहबंध, असहज "साहचर्य" और मिथ्या आवरण अनिवार्य थे। पार्टी विचारों की अभिव्यक्ति करने की चाह रखनेवालों का विवश वाक्संयम ऐसे लोगों के अपरिपक्व चिंतन अथवा दिमाग़ी कायरता के साथ घुल-मिल गया, जो उन विचारों तक नहीं पहुंचे थे और दरअसल पार्टी के लोग नहीं थे।

ईसपीय प्रतीकात्मक भाषण, साहित्यिक दास-वृत्ति, ग़ुलामों जैसी भाषा और वैचारिक भूदासता का लानतभरा दौर! सर्वहारा वर्ग ने उस दूषित वातावरण का अंत कर दिया है, जो रूस में हर ज़िंदा और ताज़ा चीज़ का दम घोंट रहा था। लेकिन अभी तक सर्वहारा वर्ग ने रूस के लिए महज़ आधी आज़ादी जीती है।

क्रांति अभी पूर्ण नहीं हुई है। जहां ज़ारशाही **अब** इतनी प्रबल **नहीं** रह गयी है कि क्रांति को परास्त कर दे, वहां क्रांति **अभी** इतनी प्रबल **नहीं** हुई है कि ज़ारशाही को परास्त कर दे। हम ऐसे ज़माने में रह रहे हैं, जब हर जगह और हर चीज़ में खुली, खरी, प्रत्यक्ष और सुसंगत पार्टी प्रतिबद्धता के साथ गुप्त, ढंकी-मुंदी, "कूटनयिक" और चकमेबाज़ीभरी "क़ानूनियत" का यह अस्वाभाविक **मेल** काम कर रहा है। यह अस्वाभाविक मेल हमारे अख़बार पर भी प्रभाव डालता है: नरम उदारतावादी-बुर्जुआ अख़बारों के प्रकाशन की मनाही करनेवाले सामाजिक-जनवादी अत्याचार की बाबत श्री गुचकोव की सारी फबतियों के बावजूद यह तथ्य है कि रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का मुखपत्र 'प्रोलेतारी' अभी तक **एकतंत्र**-पुलिसग्रस्त रूस के तालाबंद दरवाज़ों के बाहर है।

जो भी हो, अपूर्ण क्रांति हम सभी को सारी चीज़ को नये ढंग से संगठित करने में फ़ौरन जुट जाने के लिए बाध्य करती है। आज साहित्य का, उसका भी, जो "क़ानूनी तौर से" प्रकाशित होता है, नौ-दसांश पार्टी साहित्य हो सकता है। उसे पार्टी साहित्य बन जाना चाहिए। बुर्जुआ रिवाजों से भिन्न, मुनाफ़ा कमानेवाली, वाणिज्यीय बुर्जुआ पत्र-पत्रिकाओं से भिन्न, बुर्जुआ साहित्यिक स्वार्थजीविता और ख़ुदपरस्ती, "अभिजात्य अराजकतावाद" और मुनाफ़े की होड़ से भिन्न, समाजवादी सर्वहारा वर्ग को **पार्टी साहित्य** का उसूल पेश करना चाहिए, इस उसूल को विकसित और यथासंभव पक्के और **पूरे** तौर से कार्यान्वित करना चाहिए।

पार्टी साहित्य का यह उसूल क्या है? बात महज़ इतनी ही नहीं है कि समाजवादी सर्वहारा वर्ग के लिए साहित्य व्यक्तियों अथवा दलों के लाभ का साधन नहीं हो सकता: आम तौर पर वह सर्वहारा वर्ग के साझे हेतु से स्वाधीन व्यक्तिगत हेतु नहीं हो सकता। ग़ैर पार्टी लेखक मुर्दाबाद!

साहित्यिक महामानव मुर्दाबाद! साहित्य को सर्वहारा वर्ग के साझे हेतु का एक **अंग** बन जाना चाहिए, समूचे मज़दूर वर्ग के समूचे वर्ग-चेतन हरावल द्वारा संचालित अभिन्न, महान सामाजिक-जनवादी मशीन का "दांता और पेंच" बन जाना चाहिए। साहित्य को सामाजिक-जनवादी पार्टी के संगठित, योजनाबद्ध और समेकित काम का उपादान बन जाना चाहिए।

एक जर्मन कहावत है कि "सभी तुलनाएं लंगड़ी होती हैं।" उसी तरह पेंच के साथ साहित्य की, मशीन के साथ जीवित आंदोलन की मेरी तुलना भी लंगड़ी है। हो सकता है कि ऐसे उन्मादी बुद्धिजीवी भी मिलेंगे, जो विचारों के उन्मुक्त संग्राम को, आलोचना की स्वतंत्रता को, साहित्यिक रचना की स्वतंत्रता, इत्यादि को कम करनेवाली, चेतनाशून्य बनानेवाली, "नौकरशाही बनानेवाली" ऐसी तुलना पर चीख़-पुकार मचायेंगे। असल में यह चीख़-पुकारें महज़ बुर्जुआ बुद्धिजीवियों की ख़ुदपरस्ती की अभिव्यक्ति होंगी। यह निर्विवाद है कि साहित्य पर यांत्रिक सभीकरण का, समतलन का, अल्पसंख्या के ऊपर बहुसंख्या के प्रभुत्व का सबसे कम प्रभाव पड़ता है। यह भी निर्विवाद है कि इस मामले में निजी पहल और वैयक्तिक प्रवृत्ति के लिए, विचार और कल्पना के लिए, रूप और अंतर्य के लिए अधिक खुले वातावरण की ज़मानत बिना शर्त ज़रूरी है। यह सब कुछ निर्विवाद है, लेकिन यह सब कुछ केवल यही प्रदर्शित करता है कि सर्वहारा के पार्टी हेतु के साहित्यिक पक्ष को उसके अन्य पक्षों का यांत्रिक ढंग से समरूपी नहीं समझा जा सकता। इससे बुर्जुआ वर्ग और बुर्जुआ जनवाद के लिए बेगाना और अजीब इस प्रस्थापना का ज़रा-सा भी खंडन नहीं होता कि साहित्य को हर तरह से और लाज़िमी तौर से सामाजिक-जनवादी पार्टी के काम के अन्य पक्षों से अविभाज्य रूप से संबंधित एक पक्ष बन जाना चाहिए। अख़बारों को विभिन्न पार्टी संगठनों के मुखपत्र बन जाना चाहिए और लेखकों को निश्चय ही पार्टी संगठनों के सदस्य बन जाना चाहिए। प्रकाशनगृह, उनके गोदाम, दुकानें, वाचनालय, पुस्तकालय तथा इसी तरह के विभिन्न धंधे—यह सब कुछ पार्टी के तहत होना चाहिए, उसके प्रति जवाबदेह होना चाहिए। संगठित समाजवादी सर्वहारा को इन सारे कामों पर निगरानी रखनी चाहिए, उनका पूरा नियंत्रण करना चाहिए, इन सारे कामों में बिना किसी अपवाद के जीवंत सर्वहारा

हेतु की जीवित धारा प्रवाहित करनी चाहिए और इस प्रकार इस पुराने, अर्द्ध-ओब्लोमोव[106] , अर्द्धतिजारती रूसी उसूल की सारी बुनियाद काट देनी चाहिए : लेखक लिख देते हैं और पाठक पढ़ लेते हैं।

बेशक हम यह नहीं कहते कि एशियाई सेंसर और यूरोपीय बुर्जुआ वर्ग द्वारा दूषित साहित्यिक कार्य का यह कायापलट फ़ौरन हो सकता है। किसी एकरस पद्धति अथवा चंद आज्ञप्तियों द्वारा समस्या के हल की हिमायत के विचार के हम नज़दीक भी नहीं फटकते। नहीं, इस क्षेत्र में मंसूबाबंदी की बात सबसे कम हो सकती है। काम यह है कि हमारी पूरी पार्टी, सारे रूस का समूचा चेतन सामाजिक-जनवादी सर्वहारा वर्ग इस नयी समस्या को समझे, उसे स्पष्ट रूप से सामने रखे और हर कहीं हल करने में जुट जाये। सामंती सेंसर की क़ैद से छूटकर हम बुर्जुआ-तिजारती साहित्यिक संबंधों के क़ैदी होना नहीं चाहते, नहीं होंगे। हम स्वाधीन पत्र-पत्रिकाओं की स्थापना करना चाहते हैं और करेंगे – केवल पुलिसवालों के अर्थ में ही नहीं, बल्कि पूंजी, पदलोलुपता, और इतना ही नहीं, बुर्जुआ-अराजकतावादी ख़ुदपरस्ती से स्वाधीन होने के अर्थ में।

ये अंतिम शब्द विरोधाभासपूर्ण अथवा पाठक का उपहास प्रतीत हो सकते हैं। हो सकता है, कोई बुद्धिजीवी, आज़ादी का कोई उत्कट पक्षधर, चिल्ला उठे – क्या! क्या, आप साहित्य जैसे नाज़ुक, व्यक्तिगत कार्य पर सामूहिक नियंत्रण लगाना चाहते हैं? आप चाहते हैं कि मज़दूर बहुसंख्या द्वारा विज्ञान, दर्शन अथवा सौंदर्यशास्त्र के प्रश्न हल किये जायें! आप नितांत वैयक्तिक विचारधारात्मक रचना की नितांत स्वतंत्रता को अस्वीकार करते हैं!

शांत होइये, सज्जनो! पहले तो यहां बात है पार्टी साहित्य और उस पर पार्टी के नियंत्रण की। हर व्यक्ति बिना किसी प्रतिबंध के मनचाहा लिखने और कहने को स्वतंत्र है। लेकिन हर स्वतंत्र संगठन (जिसमें पार्टी भी शामिल है) भी ऐसे मेंबरों को निकाल बाहर करने को स्वतंत्र है, जो पार्टी विरोधी विचारों का प्रचार करने के लिए पार्टी के नाम का इस्तेमाल करते हैं। भाषण और पत्र-पत्रिकाओं के लिए पूरी आज़ादी होनी चाहिए। लेकिन फिर संगठनों के लिए भी पूरी आज़ादी होनी चाहिए। भाषण की

स्वतंत्रता के नाम पर मैं तुम्हें चिल्लाने, झूठ बोलने और मनचाहा लिखने का पूर्ण अधिकार देने को बाध्य हूं। लेकिन संगठनों की स्वतंत्रता के नाम पर तुम भी मुझे ऐसे लोगों को संगठन में रखने या उससे निकाल देने का अधिकार देने को बाध्य हो, जो यह अथवा वह विचार प्रगट करते हैं। पार्टी एक स्वेच्छापरक संगठन है, जो अगर पार्टी विरोधी विचारों का प्रचार करनेवाले सदस्यों की छंटनी करके अपनी शुद्धि नहीं करता, तो वह अनिवार्यतः पहले वैचारिक और फिर भौतिक रूप से टूट जायेगा। पार्टी और ग़ैर पार्टी के बीच सीमा-रेखा निर्धारित करने के लिए पार्टी कार्यक्रम है, कार्यनीति के संबंध में पार्टी के प्रस्ताव हैं, उसकी नियमावली है और सबके बाद अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद का, सर्वहारा वर्ग के स्वेच्छामूलक अंतर्राष्ट्रीय संघबद्धताओं का सारा अनुभव है, जो अपनी पार्टियों के भीतर निरंतर ऐसे अलग-अलग तत्वों तथा प्रवृत्तियों को दाख़िल करता रहा है, जो पूर्णतः सुसंगत नहीं रही हैं, पूर्णतः मार्क्सवादी नहीं रही हैं और जो एकदम ठीक नहीं रही हैं, लेकिन जो उसी प्रकार समय-समय पर निरंतर अपनी पार्टी की "शुद्धि" भी करता रहा है। बुर्जुआ "आलोचना की स्वतंत्रता" के पक्षधर सज्जनो, हमारे यहां भी पार्टी **के भीतर** ऐसा ही होगा: आज हमारे यहां पार्टी यकायक अवामी बन रही है, आज हम खुले संगठन की ओर आकस्मिक मोड़ से गुज़र रहे हैं, आज हमारे यहां अनिवार्यतः अनेक असंगत (मार्क्सवादी दृष्टिकोण से) लोग, हो सकता है कि कुछ ईसाई और कुछ रहस्यवादी भी, आयेंगे। हमारा मेदा मज़बूत है, हम वज्र-कठोर मार्क्सवादी हैं। हम उन असंगत लोगों को पचा लेंगे। पार्टी के भीतर विचार और आलोचना की स्वतंत्रता हमें स्वेच्छामूलक संगठनों में, जिन्हें पार्टियां कहते हैं, लोगों को संघबद्ध करने की स्वतंत्रता को भूल जाने के लिए कभी मजबूर नहीं करेगी।

दूसरे, बुर्जुआ ख़ुदपरस्त सज्जनो, हमें आपसे कहना चाहिए कि नितांत स्वतंत्रता की बाबत आपकी बात महज़ मक्कारी है। मुद्रा की सत्ता पर आधारित समाज में, एक ऐसे समाज में, जहां मेहनतकश ग़रीबी में और मुट्ठी भर धनी लोग परजीवियों की तरह रहते हों, असली और सच्ची "स्वतंत्रता" नहीं हो सकती। लेखक महोदय, क्या आप अपने बुर्जुआ प्रकाशक से, बुर्जुआ रुचिवाले अपने पाठकों से स्वतंत्र हैं, जो आपसे

चौखटों* और चित्रों में अश्लीलता की, "पवित्र" अभिनय-कला के "पूरक" के रूप में व्यभिचार की मांग करते हैं? यह नितांत स्वतंत्रता की बात बुर्जुआ अथवा अराजकतावादी (क्योंकि विश्वदृष्टिकोण के रूप में अराजकतावाद अंदर से उलट दिया गया बुर्जुआ दर्शन है) लफ़्फ़ाज़ी है। कोई समाज में रहकर समाज से स्वतंत्र नहीं हो सकता। बुर्जुआ लेखक, कलाकार अथवा अभिनेत्री की स्वतंत्रता तिजोरी की, भ्रष्टाचार की, व्यभिचार की नक़ाबपोश (अथवा मक्कारी के साथ नक़ाबपोश) अधीनता है।

हम, समाजवादी इस मक्कारी को बेनक़ाब करते हैं, झूठे लेबुलों को उखाड़ फेंकते हैं, इसलिए नहीं कि अवर्गीय साहित्य अथवा कला की उपलब्धि हो (वह तो केवल समाजवादी वर्गेतर समाज में ही संभव होगा), बल्कि इसलिए कि वस्तुतः स्वतंत्र और सर्वहारा वर्ग से **खुलेआम** संबंधित साहित्य को दिखावटी रूप से स्वतंत्र, पर दरअसल बुर्जुआ वर्ग से बंधे हुए साहित्य के मुक़ाबले में खड़ा किया जाये।

वह स्वतंत्र साहित्य इसलिए होगा कि लालच या पदलोलुपता से नहीं, बल्कि समाजवाद के विचार और मेहनतकशों के प्रति समवेदना से उसकी पांतों को नित नूतन शक्ति प्राप्त होगी। वह स्वतंत्र साहित्य इसलिए होगा कि वह किसी परितृप्ता नायिका अथवा चर्बीग्रस्त, उच्चाट "ऊपरी दस हज़ार" की नहीं, बल्कि उन करोड़ों-करोड़ मेहनतकशों की सेवा करेगा, जो देश की शोभा, उसका बल, उसका भविष्य हैं। वह स्वतंत्र साहित्य होगा, जो मानवजाति के क्रांतिकारी चिंतन को अंतिम सीमा तक समाजवादी सर्वहारा वर्ग के अनुभव तथा जीवंत कार्य द्वारा फलप्रद बनायेगा, जो अतीत के अनुभव (वैज्ञानिक समाजवाद, समाजवाद के आदिम, कल्पनापरक रूपों से उसके विकास की निष्पत्ति) और वर्तमान के अनुभव (मज़दूर साथियों का वर्तमान संघर्ष) के बीच स्थायी अन्योन्यक्रिया पैदा करेगा।

तो साथियो, अब काम में लगें! हमारे सामने नया और कठिन, लेकिन महान और साभार कार्यभार प्रस्तुत है—व्यापक, बहुपक्षीय, विविध

---

*पांडुलिपि में शायद ग़लती छूट गयी है; "चौखटों" के स्थान पर "उपन्यासों" होना चाहिए।—सं०

साहित्य के संगठन का कार्यभार, जो सामाजिक-जनवादी मज़दूर आंदोलन के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ हो। सारे सामाजिक-जनवादी साहित्य को पार्टी साहित्य बन जाना चाहिए। सभी अख़बारों, पत्रिकाओं, प्रकाशनगृहों, इत्यादि को ऐसी परिस्थिति बनाने के लिए अपने काम का पुनस्संगठन शुरू कर देना चाहिए, जिसमें वह एक न एक रूप में किसी न किसी पार्टी संगठन के साथ समेकित हो जाये। केवल तभी "सामाजिक-जनवादी" साहित्य का नाम सार्थक होगा, केवल तभी वह अपने कर्त्तव्य की पूर्ति कर सकेगा और बुर्जुआ समाज के ढांचे के अंदर भी बुर्जुआ ग़ुलामी से छूट सकेगा और वस्तुतः अग्रगामी तथा पूर्णतः क्रांतिकारी वर्ग के आंदोलन में घुल-मिल जा सकेगा।

१३ नवंबर, १९०५ को प्रकाशित। खंड १२, पृ० ९९–१०५

संयुक्त राज्य यूरोप का नारा

'सोत्सिग्राल-देमोक्रात'[107] के ग्रंक ४० में हमने यह सूचित किया था कि विदेशों में स्थित हमारी पार्टी की शाखाओं के सम्मेलन[108] ने यह तय किया कि "संयुक्त राज्य यूरोप" के नारे का प्रश्न मसले के **आर्थिक** पहलू पर पत्र-पत्रिकाओं में विचार-विमर्श होने तक मुल्तवी रखा जाये।

इस प्रश्न पर हमारे सम्मेलन में बहस ने इकतरफ़ा राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लिया था। इसका ग्रंशतः कारण शायद यह था कि केंद्रीय समिति के घोषणापत्र में यह नारा सीधे राजनीतिक ढंग से निरूपित किया गया था ("तात्कालिक **राजनीतिक** नारा..." – उसमें कहा गया है), उसने लोकतांत्रिक संयुक्त राज्य यूरोप का नारा ही पेश नहीं किया, अपितु इस पर विशेष रूप से ज़ोर दिया कि "जर्मन, ग्रास्ट्रियाई तथा रूसी राजतंत्रों का क्रांतिकारी ढंग से तख़्ता उलटे बिना" यह नारा ग्रर्थहीन तथा झूठा है।

इस नारे के राजनीतिक मूल्यांकन की **सीमाओं के भीतर** प्रश्न के इस प्रकार के प्रस्तुतीकरण पर ग्रापत्ति करना – उदाहरण के लिए, इस दृष्टि-कोण से कि वह समाजवादी क्रांति के नारे को धुंधला कर देता है या कमज़ोर बना देता है, ग्रादि – सर्वथा ग़लत होगा। सच्चे ग्रर्थों में जनवादी-स्वरूप के राजनीतिक परिवर्तन ग्रौर विशेष रूप से राजनीतिक क्रांतियां समाजवादी क्रांति के नारे को किसी भी सूरत में, कभी भी, किसी तरह की परिस्थितियों में धुंधला नहीं कर सकतीं, कमज़ोर नहीं बना सकतीं। इसके विपरीत वे सदैव उसे समीप लाती हैं, उसके ग्राधार का विस्तार करती हैं तथा टुटपुंजिया जनों ग्रौर ग्रर्द्धसर्वहारा जनसाधारण की नयी-नयी श्रेणियों को समाजवादी संघर्ष की ग्रोर खींचती हैं। दूसरी ग्रोर, राजनी-तिक क्रांतियां समाजवादी क्रांति के दौरान ग्रपरिहार्य होती हैं, जिसे एक

अकेली कार्रवाई के रूप में नहीं, अपितु तूफ़ानी राजनीतिक तथा आर्थिक उथल-पुथलों, सबसे तीक्ष्ण वर्ग संघर्ष, गृहयुद्ध, क्रांतियों तथा प्रतिक्रांतियों के युग के रूप में देखा जाना चाहिए।

परंतु लोकतांत्रिक संयुक्त राज्य यूरोप का नारा, जिसे रूसी राजतंत्र की अगवाई में यूरोप में तीन सबसे प्रतिक्रियावादी राजतंत्रों के तख़्ते को क्रांतिकारी ढंग से उलटने से सूत्रबद्ध किया गया है, यद्यपि राजनीतिक नारे के रूप में सर्वथा अभेद्य है, तब भी इस नारे के आर्थिक अंतर्य तथा महत्व का सबसे अहम सवाल बना रहता है। साम्राज्यवाद की आर्थिक अवस्थाओं के – याने "उन्नत" और "सभ्य" औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा पूंजी के निर्यात तथा संसार के विभाजन के – दृष्टिकोण से पूंजीवाद के अंतर्गत संयुक्त राज्य यूरोप या तो असंभव या फिर प्रतिक्रियावादी है।

पूंजी अंतर्राष्ट्रीय तथा इजारेदार बन चुकी है। दुनिया मुट्ठी भर बड़ी ताक़तों, याने राष्ट्रों की बड़ी लूटपाट तथा उत्पीड़न करने में सफल ताक़तों के बीच बंट गयी है। यूरोप की चार बड़ी ताक़तों – ब्रिटेन, फ़्रांस, रूस तथा जर्मनी – के पास, जिनकी कुल आबादी २५–३० करोड़ है तथा जिनका क्षेत्रफल क़रीब-क़रीब ७० लाख वर्ग किलोमीटर है, **लगभग ५० करोड़** (४९ करोड़ ४५ लाख) आबादीवाले तथा ६ करोड़ ४६ लाख वर्ग किलो-मीटरवाले, याने भूमंडल के लगभग आधे (ध्रुवीय प्रदेशों को छोड़कर १३ करोड़ ३० लाख वर्ग किलोमीटर) भाग पर फैले उपनिवेश हैं। इनमें तीन एशियाई राज्यों – चीन, तुर्की तथा फ़ारस – को जोड़ दें, जिन्हें इस समय "मुक्ति" युद्ध चलानेवाले ठग, याने जापान, रूस, ब्रिटेन तथा फ़्रांस किस्तों में लूट रहे हैं। इन तीन एशियाई राज्यों की, जिन्हें अर्द्ध-उपनिवेश कहा जा सकता है (वस्तुतः वे अब ९० प्रतिशत उपनिवेश हैं), कुल आबादी ३६ करोड़ तथा क्षेत्रफल १ करोड़ ४५ लाख वर्ग किलोमीटर है (याने पूरे यूरोप के क्षेत्रफल से लगभग डेढ़ गुना अधिक है)।

आगे चलें, ब्रिटेन, फ़्रांस और जर्मनी ने विदेशों में जो पूंजी लगा रखी है, वह ७० अरब रूबल से कम नहीं है। इस अच्छी-ख़ासी मोटी रक़म से "वैध" मुनाफ़ा – तीन अरब रूबल प्रतिवर्ष से अधिक मुनाफ़ा – हासिल करने का काम करोड़पतियों की राष्ट्रीय समितियां, जिन्हें सरकारें

कहा जाता है, करती हैं, जो स्थल सेनाओं तथा नौसेनाओं से लैस हैं और जो "करोड़पति सज्जनों" के बेटों और भाइयों को उपनिवेशों तथा अर्द्ध-उपनिवेशों में वाइसरायों, कौंसुलों, राजदूतों, सब क़िस्म के ओहदे-दारों, पादरियों और दूसरी जोंकों के रूप में "बैठाती हैं"।

इस तरह मुट्ठी भर बड़ी ताक़तें पूंजीवाद के उच्चतम विकास के युग में पृथ्वी की लगभग एक अरब आबादी की लट-खसोट संगठित करती हैं। पूंजीवाद के अंतर्गत अन्य संगठन असंभव है। उपनिवेशों, "प्रभाव-क्षेत्रों" तथा पूंजी के निर्यात का परित्याग? इस तरह सोचने का अर्थ है अपने को उस पादरी के स्तर पर पहुंचा देना, जो हर रविवार को अमीरों को ईसाई धर्म के उदात्त सिद्धांतों का उपदेश देता है और उन्हें ग़रीबों को प्रतिवर्ष अगर कुछ अरब नहीं, तो कम से कम कुछ सौ रूबल दान देने का परामर्श देता है।

पूंजीवाद के अंतर्गत संयुक्त राज्य यूरोप उपनिवेशों के विभाजन के बारे में समझौते के बराबर है। परंतु पूंजीवाद के अंतर्गत विभाजन का कोई अन्य आधार, कोई अन्य सिद्धांत संभव नहीं है, सिवाय ताक़त के। कोई करोड़पति पूंजीवादी देश की "राष्ट्रीय आय" का किसी के साथ हिस्सा नहीं बंटा सकता, सिवाय "लगायी गयी पूंजी" के अनुपात में (साथ ही बोनस के साथ, ताकि सबसे बड़ी पूंजी अपने हिस्से से अधिक प्राप्त कर सके)। पूंजीवाद उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व तथा उत्पादन की अराजकता है। ऐसे आधार पर आय के "न्यायपूर्ण" विभाजन की पैरवी करना प्रूदोंवाद, मूर्खतापूर्ण संकीर्णता तथा कूपमंडूकता है। कोई विभाजन नहीं हो सकता, सिवाय "ताक़त के अनुपात में"। और ताक़त आर्थिक विकास के प्रवाह के साथ बदलती जाती है। १८७१ के उपरांत जर्मनी ब्रिटेन तथा फ़्रांस की तुलना में ३ – ४ गुनी और जापान रूस की तुलना में १० गुनी तेज़ रफ़्तार से शक्तिशाली होते चले गये। किसी पूंजीवादी राज्य की असल ताक़त आज़माने का युद्ध के अलावा और दूसरा साधन नहीं है तथा हो नहीं सकता। यद्ध का निजी स्वामित्व के आधारों से अंत-र्विरोध नहीं है, वह तो इन आधारों का प्रत्यक्ष तथा अपरिहार्य विकास है। पूंजीवाद के अंतर्गत पृथक-पृथक अर्थव्यवस्थाओं तथा पथक-पृथक राज्यों के आर्थिक विकास की समतल गति असंभव है। पूंजीवाद के अंतर्गत समय-

समय पर भंग हो जानेवाले संतुलन की बहाली का और कोई साधन नहीं हो सकता, सिवाय उद्योग में संकटों तथा राजनीति में युद्धों के।

पूंजीपतियों के बीच तथा राज्यों के बीच **अस्थायी** समझौते, निस्संदेह, संभव हैं। इस अर्थ में संयुक्त राज्य यूरोप **यूरोप के** पूंजीपतियों के बीच समझौते के रूप में संभव है... परंतु किस लिए? केवल यूरोप में समाजवाद को मिलकर कुचलने, जापान तथा संयक्त राज्य अमरीका से, जो उपनिवेशों के मौजूदा विभाजन से घोर क्षुब्ध हैं और जिनकी शक्ति पिछली आधी सदी में पिछड़े, राजतंत्रवादी, इस समय बुढ़ापे के कारण सड़-गल रहे यूरोप की तुलना में अपरिमित द्रुत गति से बढ़ रही है, उपनिवेशों के रूप में लूट के माल को मिलकर बचाने के लिए। संयुक्त राज्य अमरीका की तुलना में यूरोप समग्र रूप में आर्थिक गतिहीनता का द्योतक है। वर्तमान आर्थिक आधार पर, याने पूंजीवाद के अंतर्गत संयुक्त राज्य यूरोप अमरीका के अधिक द्रुत विकास में रुकावट डालने के लिए प्रतिक्रियावाद के संगठन का द्योतक होगा। वह ज़माना, जब जनवाद का ध्येय तथा समाजवाद का ध्येय केवल यूरोप से जुड़ा होता था, लद चुका है और कभी वापस नहीं लौटेगा।

विश्व का (मात्र यूरोप का नहीं) संयुक्त राज्य राष्ट्रों के एकीकरण तथा स्वतंत्रता के उस राजकीय रूप का द्योतक है, जिसे हम समाजवाद के साथ जोड़ते हैं – उस समय तक, जब तक कम्युनिज़्म की पूर्ण विजय जनवादी राज्य समेत हर तरह के राज्य का अंतिम रूप से विलोप संपन्न नहीं कर देती। परंतु स्वतंत्र नारे के रूप में विश्व के संयुक्त राज्य का नारा शायद ही सही हो, पहले, इसलिए कि वह समाजवाद के साथ मिल जाता है; दूसरे, इसलिए कि उसके फलस्वरूप एक अकेले देश में समाजवाद की विजय के असंभव होने की तथा ऐसे देश के अन्य देशों के साथ संबंधों की प्रस्थापना की ग़लत व्याख्या की जा सकती है।

असमतल आर्थिक तथा राजनीतिक विकास पूंजीवाद का असंदिग्ध नियम है। इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि समाजवाद की विजय पहले कुछ पूंजीवादी देशों में अथवा एक अकेले पूंजीवादी देश तक में संभव है। इस देश का विजयी सर्वहारा वर्ग पूंजीपतियों का संपत्तिहरण करके तथा स्वयं अपने समाजवादी उत्पादन को संगठित करके अन्य देशों के उत्पीड़ित वर्गों

को अपने ध्येय की ओर आकृष्ट करते हुए, उन देशों में पूंजीपतियों के विरुद्ध विद्रोह की आग प्रज्ज्वलित करते हुए, ज़रूरत पड़ने पर शोषक वर्गों तथा उनके राज्यों के विरुद्ध सशस्त्र सेनाओं के साथ तक मैदान में उतरते हुए शेष, पूंजीवादी विश्व के विरुद्ध उठ खड़ा होगा। उस समाज का, जिसमें सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ वर्ग का तख़्ता उलटकर विजयी हो जाता है, राजनीतिक रूप जनवादी जनतंत्र होगा, जो संबद्ध राष्ट्र अथवा संबद्ध राष्ट्रों के सर्वहारा वर्ग की शक्तियों को अभी तक समाजवाद का मार्ग न अपनानेवाले राज्यों के विरुद्ध संघर्ष में अधिकाधिक संकेंद्रित करेगा। उत्पीड़ित वर्ग के, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के बिना वर्गों का उन्मूलन असंभव है। समाजवाद में राष्ट्रों का स्वतंत्र संघ पिछड़े हुए राज्यों के विरुद्ध समाजवादी जनतंत्रों के न्यूनाधिक लंबे, ज़बर्दस्त संघर्ष के बिना असंभव है।

इन्हीं कारणों से, रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की विदेशों में स्थित शाखाओं के सम्मेलन में तथा सम्मेलन के उपरांत बार-बार बहस के फलस्वरूप केंद्रीय मुखपत्र का संपादकमंडल इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि संयुक्त राज्य यूरोप का नारा ग़लत है।

२३ अगस्त, १६१५ को प्रकाशित। खंड २६, पृ० ३५१–३५५

समाजवादी क्रांति तथा जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार

(थीसिसें)

१. साम्राज्यवाद, समाजवाद तथा उत्पीड़ित जातियों की मुक्ति

साम्राज्यवाद पूंजीवाद के विकास की उच्चतम मंज़िल है। पूंजी सबसे अग्रणी देशों में जातीय राज्यों के चौखटों में नहीं समायी रह सकती, उसने प्रतियोगिता के स्थान पर इजारेदारी स्थापित कर दी है तथा समाजवाद को मूर्त रूप देने के लिए समस्त वस्तुपरक पूर्वाधारों का निर्माण कर दिया है। इसलिए पश्चिमी यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमरीका में पूंजीवादी सरकारों का तख़्ता उलटने के लिए, बुर्जुआ वर्ग का संपत्तिहरण करने के लिए सर्वहारा वर्ग का क्रांतिकारी संघर्ष आज की कार्य-सूची में है। साम्राज्यवाद जनसाधारण को इस संघर्ष की ओर धकेल रहा है वर्ग विरोधों को अपरिमित मात्रा में तीक्ष्ण बनाकर, आर्थिक मामलों में–ट्रस्टों, महंगाई के ज़रिये–तथा राजनीतिक मामलों में–सैन्यवाद की संवद्धि, बारंबार युद्धों, अधिक शक्तिशाली प्रतिक्रियावाद, जातियों के उत्पीड़न तथा औपनिवेशिक लूट-मार के गहनीकरण और विस्तार के ज़रिये–जनसाधारण की अवस्थाओं को बदतर बनाकर। विजयी समाजवाद को लाज़िमी तौर पर पूर्ण जनवाद को मूर्त रूप देना होगा और फलस्वरूप जातियों की न केवल पूर्ण समानता लागू करनी होगी, अपितु उत्पीड़ित जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को, याने स्वतंत्र रूप से राजनीतिक पार्थक्य के अधिकार को भी मूर्त रूप देना होगा। समाजवादी पार्टियां, जो इस समय, क्रांति के दौरान तथा उसकी विजय के उपरांत अपनी समस्त गतिविधियों द्वारा यह प्रदर्शित नहीं करेंगी कि वे ग़ुलाम बनायी हुई जातियों को मुक्त करेंगी तथा उनके साथ स्वतंत्र संघ–और स्वतंत्र संघ पृथक होने के अधिकार के बिना एक झूठा फ़िक़रा है–के आधार पर संबंध स्थापित करेंगी–ये पार्टियां समाजवाद के साथ ग़द्दारी करेंगी।

निस्संदेह, जनवाद राज्य का एक रूप भी है, जिसे राज्य का विलोप

होने पर विलुप्त होना पड़ेगा, परंतु यह केवल निर्णायक रूप से विजयी तथा सुदृढ़ समाजवाद से पूर्ण कम्युनिज़म में संक्रमण के अंतर्गत ही होगा।

२. समाजवादी क्रांति तथा जनवाद के लिए संघर्ष

समाजवादी क्रांति एक कार्रवाई नहीं होती, एक मोर्चे पर एक लड़ाई नहीं होती, बल्कि तीक्ष्ण वर्ग टक्करों का एक पूरा युग, तमाम मोर्चों पर, याने अर्थनीति तथा राजनीति के तमाम प्रश्नों पर लड़ाइयों की एक लंबी श्रृंखला होती है, ऐसी लड़ाइयों की, जिनका समापन मात्र बुर्जुआ वर्ग के संपत्तिहरण में हो सकता है। यह सोचना बुनियादी ग़लती होगी कि जनवाद के लिए संघर्ष सर्वहारा वर्ग को समाजवादी क्रांति से विमुख करने अथवा समाजवादी क्रांति को छुपाने, उसे धूमिल बनाने, आदि में सक्षम होता है। इसके विपरीत, जिस तरह पूर्ण जनवाद को अमल में न लानेवाला विजयी समाजवाद संभव नहीं है, उसी तरह सर्वहारा वर्ग जनवाद के लिए सर्वतोमुखी, सुसंगत तथा क्रांतिकारी संघर्ष किये बिना बुर्जुआ वर्ग पर विजय की तैयारी नहीं कर सकता।

जनवादी कार्यक्रम के एक मुद्दे को, उदाहरण के लिए, जातियों के आत्मनिर्णय के मुद्दे को इस आधार पर हटाना कोई छोटी ग़लती नहीं होगी कि वह साम्राज्यवाद के अंतर्गत "अव्यवहार्य" अथवा "भ्रामक" है। इस कथन को कि जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार पूंजीवाद के अंतर्गत अव्यवहार्य है, या तो निरपेक्ष, आर्थिक अर्थ में अथवा सशर्त, राजनीतिक अर्थ में समझा जा सकता है।

पहले मामले में यह सैद्धांतिक रूप में बुनियादी तौर पर ग़लत है। पहले, इस अर्थ में कि पूंजीवाद के अंतर्गत, उदाहरण के लिए, श्रम-मुद्रा अथवा संकटों का ख़ातमा, आदि अव्यवहार्य हैं। यह सरासर असत्य है कि जातियों का आत्मनिर्णय **उतना ही** अव्यवहार्य है। दूसरे, १९०५ में स्वीडन से नार्वे के पृथक्करण की एक मिसाल तक इस अर्थ में "अव्यवहार्यता" का खंडन करने के लिए पर्याप्त है। तीसरे, इससे इनकार करना उपहासास्पद होगा कि उदाहरण के लिए, जर्मनी और ब्रिटेन के पारस्परिक राजनीतिक और रणनीतिक संबंधों में ज़रा भी परिवर्तन नये पोलिश,

हिंदुस्तानी और ऐसे ही अन्य राज्य को आज या कल पूर्णतः "व्यवहार्य" बना सकता है। चौथे, वित्त पूंजी विस्तार के अपने प्रयास में किसी भी, "स्वाधीन" देश तक की सबसे स्वतंत्र जनवादी और जनतांत्रिक सरकार तथा निर्वाचित अधिकारियों तक को "स्वतंत्र रूप से" ख़रीद सकती और रिश्वत देकर अपनी ओर कर सकती है। वित्त पूंजी के और सामान्य रूप से पूंजी के प्रभुत्व को राजनीतिक जनवाद के क्षेत्र में **किसी भी तरह के** सुधारों से नहीं मिटाया जाता; और आत्मनिर्णय पूर्णतया तथा अनन्य रूप से इस क्षेत्र से सरोकार रखता है। परंतु वित्त पूंजी का यह प्रभुत्व वर्ग उत्पीड़न तथा वर्ग संघर्ष के अधिक स्वतंत्र, अधिक विस्तृत और अधिक स्पष्ट रूप की हैसियत से राजनीतिक जनवाद के महत्व को लेशमात्र नहीं मिटाता। इसलिए पूंजीवाद के अंतर्गत राजनीतिक जनवाद की मांगों में से एक की, आर्थिक अर्थ में, "अव्यवहार्यता" के बारे में सारे कथनों को पूंजीवाद तथा समग्र रूप में राजनीतिक जनवाद के आम और बुनियादी संबंधों की सैद्धांतिक रूप से ग़लत परिभाषा बनाकर रख दिया जाता है।

दूसरे मामले में यह कथन अपूर्ण तथा असटीक है। इसलिए कि जातियों का आत्मनिर्णय का अधिकार ही नहीं, अपितु राजनीतिक जनवाद की **सारी** मूलभूत मांगें भी साम्राज्यवाद के अंतर्गत मात्र अपूर्ण रूप में "व्यवहार्य" होती हैं, और वह भी विकृत तथा विरल अपवाद के रूप में (उदाहरण के लिए, १९०५ में नार्वे की स्वीडन से पृथकता)। उपनिवेशों की तत्काल मुक्ति के लिए समस्त क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों द्वारा पेश मांग भी पूंजीवाद के अंतर्गत क्रांतियों की एक श्रृंखला के बिना "अव्यवहार्य" होती है। परंतु इससे कदापि यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि सामाजिक-जनवादी इन **सारी** मांगों के लिए तुरंत तथा सबसे निर्णायक संघर्ष से इनकार कर दें – इस तरह का इनकार बुर्जुआ वर्ग तथा प्रतिक्रियावाद के हाथों में खेलना मात्र होगा – अपितु इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ये मांगें सुधारवादी नहीं, अपितु लाज़िमी तौर पर क्रांतिकारी ढंग से निरूपित तथा पेश की जायें; अपने को बुर्जुआ क़ानूनियत के चौखटों तक सीमित न किया जाये, बल्कि उन्हें तोड़ा जाये; संसद में भाषणों तथा शाब्दिक विरोधों से संतोष न कर लिया जाये, बल्कि जनसाधारण को सक्रिय कार्रवाई में खींचा जाये, प्रत्येक बुनियादी जनवादी मांग के लिए

संघर्ष को फैलाते हुए, उसकी आग भड़काते हुए उसे बुर्जुआ वर्ग पर सीधे सर्वहारा धावा बोलने तक, याने बुर्जुआ वर्ग का संपत्तिहरण करनेवाली समाजवादी क्रांति तक पहुंचाया जाये। समाजवादी क्रांति केवल किसी बड़ी हड़ताल या सड़क पर प्रदर्शन, या भूख हड़ताल, या सैनिक विद्रोह, या औपनिवेशिक बग़ावत के कारण ही नहीं, अपितु ड्राइफ़स के मुक़दमे [109] अथवा ज़ेबर्न कांड [110] जैसे किसी भी राजनीतिक संकट के कारण, या किसी उत्पीड़ित जाति के पृथक होने के बारे में जनमतसंग्रह, आदि के सिलसिले में भी भड़क सकती है।

साम्राज्यवाद के अंतर्गत बढ़े हुए जातीय उत्पीड़न का अर्थ यह नहीं होता कि सामाजिक-जनवादी जातियों के पृथक होने की स्वतंत्रता के लिए, बुर्जुआ लोगों के शब्दों में, "यूटोपियन" संघर्ष को अस्वीकार कर दें, अपितु इसके विपरीत उसका अर्थ है इस क्षेत्र में भी उत्पन्न होनेवाली टक्करों का जन-कार्रवाई के लिए तथा बुर्जुआ वर्ग पर क्रांतिकारी प्रहारों के लिए आधारभूमि के रूप में और अधिक उपयोग करना।

३. आत्मनिर्णय के अधिकार का महत्व तथा संघ के प्रति उसका रुख़

जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार का अर्थ अनन्य रूप से राजनीतिक अर्थ में स्वतंत्रता का, उत्पीड़नकारी राष्ट्र से मुक्त राजनीतिक पृथकता का अधिकार है। ठोस रूप में, राजनीतिक जनवाद की इस मांग का अर्थ है पृथकता के लिए आंदोलन करने की पूर्ण स्वतंत्रता तथा पृथक होनेवाली जाति के जनमतसंग्रह द्वारा पृथकता के प्रश्न का निर्णय। इसलिए यह मांग पृथकता की, राज्य के टुकड़े-टुकड़े करने की तथा छोटे राज्यों के गठन की मांग के बराबर कदापि नहीं है। वह सब तरह के जातीय उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष की मात्र सुसंगत अभिव्यक्ति है। कोई जनवादी राज्य-प्रणाली पृथकता की पूर्ण स्वतंत्रता के जितने समीप होगी, पृथक होने की कामना व्यवहार में उतनी ही विरल और उतनी ही क्षीण होगी, इसलिए कि बड़े राज्यों के लाभ आर्थिक प्रगति के दृष्टिकोण से तथा जनसाधारण के हितों के दष्टिकोण से अकाट्य होते हैं, इसके अलावा वे पूंजीवाद के विकास के

साथ बढ़ते जाते हैं। आत्मनिर्णय की मान्यता सिद्धांत के रूप में संघ की मान्यता का पर्याय नहीं है। कोई इस सिद्धांत का कट्टर विरोधी और जनवादी केंद्रीयतावाद का पक्षधर हो सकता है, परंतु इसके बावजूद वह पूर्ण जनवादी केंद्रीयतावाद की ओर एकमात्र मार्ग के रूप में संघ को जातियों की असमानता पर तरजीह दे सकता है। ठीक इसी दृष्टिकोण से मार्क्स ने, जो केंद्रीयतावादी थे, आयरलैंड तथा इंगलैंड के संघ तक को आयरलैंड के अंग्रेज़ों के जबरन मातहत रखे जाने पर तरजीह दी।

समाजवाद का ध्येय मानवजाति के छोटे-छोटे राज्यों में विभाजन का अंत करना ही नहीं, राष्ट्रों के हर अलगाव का अंत करना ही नहीं है, राष्ट्रों को एक-दूसरे के समीप लाना ही नहीं, अपितु उन्हें समेकित करना भी है। और ठीक इस लक्ष्य की सिद्धि के हेतु हमें, एक ओर, जनसाधारण को रेनर और ओटो बावेर के उस विचार का, जिसे "सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वायत्तता"[111] नाम दिया गया है, प्रतिक्रियावादी स्वरूप समझाना होगा, और, दूसरी ओर, आम गोल-मोल फ़िक़रों में नहीं, खोखली उद्घोषणाओं में नहीं, समाजवाद के आने तक प्रश्न को "मुलतवी करने" के रूप में नहीं, अपितु स्पष्ट रूप में, सटीक रूप में निरूपित राजनीतिक कार्यक्रम में, जो उत्पीड़क जातियों के समाजवादियों के पाखंड और उनकी कायरता को विशेष रूप से ध्यान में रखे, उत्पीड़ित जातियों की मुक्ति की मांग करनी होगी। जिस तरह मानवजाति उत्पीड़ित वर्ग के अधिनायकत्व की संक्रमणकालीन अवधि के ज़रिये ही वर्गों के उन्मूलन की ओर पहुंच सकती है, ठीक उसी तरह मानवजाति सारी उत्पीड़ित जातियों की पूर्ण मुक्ति, याने पृथक होने की उनकी स्वतंत्रता की संक्रमणकालीन अवधि के ज़रिये ही राष्ट्रों के अपरिहार्य समेकन तक पहुंच सकती है।

४. जातियों के आत्मनिर्णय के प्रश्न का सर्वहारा-क्रांतिकारी प्रस्तुतीकरण

टुटपुंजिया वर्ग ने जातियों के आत्मनिर्णय की मांग को ही नहीं, अपितु हमारे जनवादी न्यूनतम कार्यक्रम के सारे मुद्दों तक को पहले ही, १७ वीं और १८वीं शताब्दियों में पेश कर दिया था। और टुटपुंजिया वर्ग आज

भी उन **सबको** यूटोपियन ढंग से प्रस्तुत कर रहा है, वह वर्ग संघर्ष तथा जनवाद के अंतर्गत उनकी बढ़ी हुई गहनता को नहीं देख पा रहा है, वह "शांतिपूर्ण" पूंजीवाद में विश्वास करता है। ठीक यही चीज़ साम्राज्यवाद के अंतर्गत समानताप्राप्त जातियों के शांतिपूर्ण संघ का जनता की आंखों में धूल झोंकनेवाला तथा काउत्स्कीवादियों द्वारा रक्षित यूटोपिया है। इस टुटपुंजियाई, अवसरवादी यूटोपिया के मुक़ाबले में सामाजिक-जनवाद के कार्यक्रम को जातियों का उत्पीड़क तथा उत्पीड़ित में विभाजन साम्राज्य-वाद के अंतर्गत आधारभूत, सारभूत तथा अपरिहार्य वस्तु के रूप में पेश करना चाहिए।

उत्पीड़क जातियों का सर्वहारा वर्ग समामेलनों के विरुद्ध तथा सा-मान्य रूप में जातियों की समानता के पक्ष में किसी भी शांतिवादी बुर्जुआ द्वारा दुहराये जानेवाले आम, घिसे-पिटे फ़िक़रों तक अपने को सीमित नहीं रख सकता। सर्वहारा वर्ग जातीय उत्पीड़न के आधार पर स्थापित किये गये राज्य की **सीमाओं** के बारे में प्रश्न पर, जो साम्राज्यवादी बुर्जुआ वर्ग को विशेष रूप से "अप्रिय" है, मौन नहीं रह सकता। सर्वहारा वर्ग संबद्ध राज्य की सीमाओं में उत्पीड़ित जातियों को जबरन रखे जाने के विरुद्ध लड़े बिना नहीं रह सकता, और इसका अर्थ आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए लड़ना ही है। सर्वहारा वर्ग को "अपने ही" राष्ट्र द्वारा उत्पीड़ित उपनिवेशों तथा जातियों की राजनीतिक पृथकता की स्वतंत्रता की मांग करनी चाहिए। अन्यथा सर्वहारा वर्ग का अंतर्राष्ट्रीयतावाद खोखला शब्द बनकर रह जायेगा; उत्पीड़ित तथा उत्पीड़क जातियों के मज़दूरों के बीच न विश्वास तथा न वर्ग एकजुटता संभव है; सुधारवादियों तथा काउत्स्कीवादियों का, जो आत्मनिर्णय की तो पैरवी करते हैं, परंतु "अपने ही" राष्ट्र द्वारा उत्पीड़ित तथा जबरन "अपने" राज्य में रखी जानेवाली जातियों के बारे में मौन रहते हैं, पाखंड पर्दाफ़ाश हुए बिना रह जायेगा।

दूसरी ओर, उत्पीड़ित जातियों के समाजवादियों को उत्पीड़ित जाति तथा उत्पीड़क जाति के मज़दूरों की बिना शर्त तथा पूर्ण एकता की—संगठनात्मक एकता समेत—ख़ास तौर पर रक्षा करनी चाहिए तथा उसे अमली जामा पहनाना चाहिए। इसके बिना बुर्जुआ वर्ग की सारी साज़िशों,

धोखेबाज़ी और तिकड़मों के मुक़ाबले में सर्वहारा वर्ग की स्वतंत्र नीति तथा दूसरे देशों के सर्वहारा के साथ उसकी वर्ग एकजुटता की रक्षा करना असंभव है, इसलिए कि उत्पीड़ित जातियों का बुर्जुआ वर्ग राष्ट्रीय मुक्ति के नारों को बराबर मज़दूरों के साथ धोखाधड़ी में बदलता है: आंतरिक नीति में वह इन नारों का प्रभुत्वशाली राष्ट्र के बुर्जुआ लोगों के साथ प्रतिक्रियावादी समझौतों के लिए इस्तेमाल करता है (उदाहरण के लिए, आस्ट्रिया तथा रूस में पोल, जो यहूदियों तथा उक्रइनियों के उत्पीड़न के लिए प्रतिक्रियावादियों के साथ सौदेबाज़ी करते हैं); विदेश नीति में वह लूट-खसोट के अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रतिद्वंद्वी साम्राज्यवादी देशों में से एक के साथ सौदेबाज़ी करने का प्रयास करता है (छोटे बाल्कन राज्यों की नीति, आदि)।

यह परिस्थिति कि एक साम्राज्यवादी ताक़त के विरुद्ध राष्ट्रीय मुक्ति के लिए संघर्ष का कुछ हालात में दूसरी "बड़ी" ताक़त अपने, इतने ही साम्राज्यवादी उद्देश्यों के लिए उपयोग कर सकती है, सामाजिक-जनवादियों को जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की मान्यता का परित्याग करने के लिए उतना ही कम बाध्य कर सकती है, जितना कम राजनीतिक धोखाधड़ी तथा वित्तीय लूट-मार के उद्देश्य के लिए जनतंत्रीय नारों का बुर्जुआ वर्ग द्वारा उपयोग के कई मामले, उदाहरण के लिए, रोमांसभाषी देशों में, सामाजिक-जनवादियों को उनके जनतंत्रवाद का परित्याग करने के लिए बाध्य कर सकते हैं।*

---

*कहने की ज़रूरत नहीं कि आत्मनिर्णय के अधिकार का इस आधार पर परित्याग करना कि उसमें "पितृभूमि की रक्षा" का अर्थ निहित है, सरासर उपहासास्पद होगा। उतने ही अधिकार से—याने उतनी ही ग़ैर संजीदगी से—१९१४–१९१६ में सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी "पितभूमि की रक्षा" को न्यायोचित ठहराने के लिए जनवाद की किसी भी मांग का (उदाहरण के लिए, उसके जनतंत्रवाद का) तथा जातियों के उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष के किसी भी निरूपण का हवाला देते हैं। मार्क्सवादी युद्धों में, उदाहरण के लिए, यूरोप में महान फ़्रांसीसी क्रांति के युद्धों में अथवा गरीबाल्दी के युद्धों में, पितृभूमि की रक्षा की स्वीकृति और साथ ही १९१४–१९१६ के साम्राज्यवादी यद्ध में पितभूमि की रक्षा की अस्वी-

५. जातियों के प्रश्न के बारे में मार्क्सवाद तथा प्रूदोंवाद

टुटपुंजिया जनवादियों के विपरीत मार्क्स बिना किसी अपवाद के प्रत्येक जनवादी मांग को कोई निरपेक्ष सत्य नहीं, अपितु सामंतवाद के विरुद्ध बर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में जनसाधारण के संघर्ष की ऐतिहासिक अभिव्यक्ति मानते थे। इन मांगों में से एक भी ऐसी नहीं है, जो मज़दूरों की आंखों में धूल झोंकने के लिए कतिपय परिस्थितियों में बुर्जुआ वर्ग का अस्त्र न बन सकी हो और न बनी हो। इस मामले में राजनीतिक जनवाद की एक मांग को, ठीक जातियों के आत्मनिर्णय को चुन लेना और उसे बाक़ी के मुक़ाबले में खड़ा करना सिद्धांत में मूलतः ग़लत है। व्यवहार में सर्वहारा वर्ग जनतंत्र की मांग को अलग किये बिना समस्त जनवादी मांगों के लिए अपने संघर्ष को बुर्जुआ वर्ग का तख़्ता उलटने के लिए अपने क्रांतिकारी संघर्ष के मातहत रखकर ही अपने स्वावलंबन को अक्षुण्ण रख सकता है।

दूसरी ओर, प्रूदोंवादियों के विपरीत, जिन्होंने "सामाजिक क्रांति के नाम पर" जातियों के प्रश्न से "इनकार" किया, मार्क्स ने उन्नत देशों में सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के हितों को सबसे अधिक ध्यान में रखते हुए अंतर्राष्ट्रीयतावाद तथा समाजवाद के मूलभूत सिद्धांत को पहले स्थान पर रखा: दूसरी जातियों का उत्पीड़न करनेवाली कोई भी जाति आज़ाद नहीं हो सकती[112]। ठीक जर्मन मज़दूरों के क्रांतिकारी आंदोलन के हितों के दृष्टिकोण से ही मार्क्स ने १८४८ में मांग की थी कि जर्मनी में विजयी जनवाद जर्मनों द्वारा उत्पीड़ित जातियों की स्वतंत्रता की घोषणा करे और उसे अमल में लाये[113]। अंग्रेज़ मज़दूरों के क्रांतिकारी संघर्ष के दृष्टिकोण से ही मार्क्स ने १८६९ में आयरलैंड को इंगलैंड से पथक करने की मांग की थी और इतना और जोड़ा था: "भले ही पृथकता के बाद संघ आये।"[114] केवल ऐसी मांग पेश करके ही मार्क्स अंग्रेज़ मज़दूरों को

कृति का निष्कर्ष प्रत्येक पृथक युद्ध की ठोस ऐतिहासिक विशेषताओं के विश्लेषण से निकालते हैं, किसी "सामान्य सिद्धांत" से, कार्यक्रम के किसी एक अलग मुद्दे से किसी भी सूरत में नहीं।

वस्तुतः अंतर्राष्ट्रीयतावाद की भावना में शिक्षित-दीक्षित कर रहे थे। केवल इसी तरह वह अवसरवादियों तथा बुर्जुआ सुधारवाद के मुक़ाबले में, जो आज तक, आधी शताब्दी के बाद भी आयरिश "सुधार" को मूर्त रूप नहीं दे पाया, संबद्ध ऐतिहासिक समस्या का क्रांतिकारी समाधान प्रस्तुत कर सके। केवल इसी तरह मार्क्स पूंजी के पैरवीकारों के मुक़ाबले में, जो चिल्लाते हैं कि छोटी जातियों के पथक होने की स्वतंत्रता यूटोपियन तथा अव्यवहार्य है, कि आर्थिक ही नहीं, अपितु राजनीतिक संकेंद्रण भी प्रगतिशील है, इस बात की अभिपुष्टि कर सके कि यह संकेंद्रण तभी प्रगतिशील होता है, जब वह साम्राज्यवादी ढंग से **नहीं** किया जाता, कि राष्ट्रों को ज़ोर-ज़बर्दस्ती से नहीं, अपितु समस्त देशों के सर्वहारा वर्ग के स्वतंत्र संघ के आधार पर एक-दूसरे के समीप लाया जाये। केवल इसी तरह मार्क्स जातियों की समानता तथा आत्मनिर्णय की कोरी शाब्दिक और बहुधा पाखंडभरी मान्यता के मुक़ाबले में जातियों के प्रश्नों के समाधान में **भी** जनसाधारण की क्रांतिकारी कार्रवाई को प्रस्तुत कर सके। १९१४-१९१६ के साम्राज्यवादी युद्ध तथा अवसरवादियों और काउत्स्की-वादियों के पाखंड की उस द्वारा प्रकट की गयी अवगी की घुड़सालों[115] ने मार्क्स की इस नीति के सही होने की ज्वलंत रूप में पुष्टि कर दी है, जिसे समस्त उन्नत देशों के लिए माडल का काम देना चाहिए, इसलिए कि उनमें से प्रत्येक इस समय दूसरी जातियों का उत्पीड़न कर रहा है*।

---

*इस बात का अकसर हवाला दिया जाता है – उदाहरण के लिए, हाल में *Die Glocke*[116] के अंक ८ तथा ९ में जर्मन अंधराष्ट्रवादी लेंश द्वारा – कि कतिपय जनगण के राष्ट्रीय आंदोलन पर, उदाहरण के लिए, १८४८ में चेकों के राष्ट्रीय आंदोलन पर, मार्क्स की आपत्ति मार्क्सवाद के दृष्टिकोण से जातियों के आत्मनिर्णय की स्वीकृति की आवश्यकता का खंडन करती है। परंतु यह ग़लत है, इसलिए कि १८४८ में "प्रतिक्रियावादी" और क्रांतिकारी-जनवादी राष्ट्रों में अंतर करने के ऐतिहासिक तथा राज-नीतिक आधार थे। मार्क्स सही थे, जब उन्होंने पहले की भर्त्सना की और दूसरे का पक्ष लिया। आत्मनिर्णय का अधिकार जनवाद की मांगों में से एक है, जिसे स्वभावतया जनवाद के आम हितों के मातहत रखा जाना ज़रूरी है। १८४८ में तथा आगे के वर्षों में ये आम हित मुख्यतया ज़ारशाही से टक्कर लेने में निहित थे।

६. जातियों के ग्रात्मनिर्णय के सिलसिले में तीन क़िस्म के देश

इस सिलसिले में देशों को तीन मुख्य क़िस्मों में बांटना ज़रूरी है।

पहली, पश्चिमी यूरोप के उन्नत देश तथा संयुक्त राज्य ग्रमरीका। यहां बुर्जुग्रा-प्रगतिशील राष्ट्रीय ग्रांदोलन बहुत पहले समाप्त हो चुके थे। इन "महान" राष्ट्रों में से प्रत्येक उपनिवेशों तथा स्वदेश में परायी जातियों का उत्पीड़न करता है। यहां इन शासक राष्ट्रों के सर्वहारा वर्ग के कार्य-भार वही हैं, जो १९वीं शताब्दी में ग्रायरलैंड के सिलसिले में इंगलैंड में सर्वहारा वर्ग के थे*।

दूसरी, पूर्वी यूरोप: ग्रास्ट्रिया, बाल्कन ग्रौर ख़ास तौर पर रूस। यहां ठीक २०वीं शताब्दी ने बुर्जुग्रा-जनवादी राष्ट्रीय ग्रांदोलनों को विशेष रूप से विकसित किया तथा राष्ट्रीय संघर्ष को तीक्ष्ण बनाया। इन देशों में उनके दोनों कामों में, बुर्जुग्रा-जनवादी सुधारों को पूर्ण करने तथा ग्रन्य

---

*कुछ छोटे राज्यों में, उदाहरण के लिए, हालैंड तथा स्विट्ज़रलैंड में, जो १९१४–१९१६ के युद्ध से बाहर रहे, बुर्जुग्रा वर्ग साम्राज्यवादी युद्ध में शिरकत को न्यायसंगत ठहराने के लिए "जातियों के ग्रात्मनिर्णय" के नारे का ज़ोरदार ढंग से उपयोग करता है। यह ऐसे देशों में सामाजिक-जनवादियों को ग्रात्मनिर्णय का प्रतिवाद करने के लिए प्रेरित करने के प्रयोजनों में से एक है। एक सही सर्वहारा नीति की, याने **साम्राज्यवादी** युद्ध में "पितृभूमि की रक्षा" की ग्रस्वीकृति की पैरवी करने के लिए ग़लत तर्कों का उपयोग किया जा रहा है। इसके फलस्वरूप सिद्धांत में मार्क्सवाद विकृत होता है ग्रौर ग्रमल में छोटी जाति की ग्रपनी क़िस्म की तंगदिली पैदा होती है, "महान शक्तिवाले" राष्ट्रों द्वारा ग़ुलाम बनायी गयी जातियों के **सैकड़ों लाख** की ग्राबादी की उपेक्षा होती है। साथी गोर्टर ग्रपने बहुत उम्दा पैंफ़लेट 'साम्राज्यवाद, युद्ध तथा सामाजिक-जनवाद' में जातियों के ग्रात्मनिर्णय के सिद्धांत को ग़लत ढंग से ग्रस्वीकार करते हैं, परंतु उसे सही ढंग से **लागू करते हैं**, जब वह डच इंडीज़ को **तत्काल** "राजनीतिक ग्रौर **राष्ट्रीय** स्वतंत्रता" प्रदान करने की मांग करते हैं ग्रौर उन डच ग्रवसरवादियों का पर्दाफ़ाश करते हैं, जो यह मांग पेश करने तथा उसके लिए लड़ने से इनकार करते हैं।

देशों में समाजवादी क्रांति को सहायता देने में सर्वहारा वर्ग के कार्यभार जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की पैरवी किये बिना पूर्ण नहीं हो सकते। यहां सबसे कठिन तथा विशेष रूप से महत्वपूर्ण कार्यभार है उत्पीड़क राष्ट्रों के मज़दूरों के वर्ग संघर्ष तथा उत्पीड़ित जातियों के मज़दूरों के वर्ग संघर्ष को सूत्रबद्ध करना।

तीसरी, चीन, फ़ारस तथा तुर्की जैसे अर्द्ध-औपनिवेशिक देश तथा वे तमाम उपनिवेश, जिनकी कुल मिलाकर आबादी एक अरब है। यहां बुर्जुआ-जनवादी आंदोलन या तो मुश्किल से ही शुरू हुए हैं अथवा उन्हें अभी बहुत लंबा सफ़र तय करना है। समाजवादियों को न केवल बिना मुआविज़ा दिये उपनिवेशों की बिना शर्त तथा तत्काल मुक्ति की ही मांग करनी चाहिए—और यह मांग अपनी राजनीतिक अभिव्यक्ति में सिवाय आत्मनिर्णय के अधिकार के और किसी चीज़ की द्योतक नहीं है; समाजवादियों को इन देशों में बुर्जुआ-जनवादी राष्ट्रीय-मुक्ति आंदोलनों में अधिक क्रांतिकारी तत्वों का स्वयं संकल्पपूर्वक समर्थन करना चाहिए और उन्हें उत्पीड़ित करनेवाली साम्राज्यवादी शक्तियों **के विरुद्ध** इन तत्वों के विप्लव को—और क्रांतिकारी युद्ध होने की सूरत में उसको—सहायता देनी चाहिए।

७. सामाजिक-अंधराष्ट्रवाद तथा जातियों का आत्मनिर्णय

साम्राज्यवादी युग तथा १६१४—१६१६ का युद्ध अग्रणी देशों में अंधराष्ट्रवाद तथा राष्ट्रवाद के विरुद्ध संघर्ष के कार्यभार को ख़ास तौर पर सामने ले आये हैं। जातियों के आत्मनिर्णय के प्रश्न पर सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों, याने अवसरवादियों और काउत्स्कीवादियों के बीच, जो युद्ध के साम्राज्यवादी, प्रतिक्रियावादी स्वरूप पर "पितृभूमि की रक्षा" की धारणा को लागू कर उसे छुपाते हैं, दो मुख्य प्रवृत्तियां हैं।

एक ओर, हम बुर्जुआ वर्ग के कोई नक़ाब पहने बिना चाकरों को देखते हैं, जो समामेलनों की इस नाम पर सफ़ाई देते हैं कि साम्राज्यवाद तथा राजनीतिक संकेंद्रण प्रगतिशील हैं और जो आत्मनिर्णय के अधिकार को अस्वीकृत करते हैं, जिसे वे यूटोपियन, मायाजाल, टुटपुंजियाई, आदि बताते हैं। इनमें शामिल हैं कूनोव, पार्वुस तथा जर्मनी के घोर अवसरवादी,

इंगलैंड में कुछ फ़ेबियन[117] तथा ट्रेड-यूनियन नेता तथा रूस में ये अवसरवादी – सेम्कोव्स्की, लीबमैन, युरकेविच, आदि।

दूसरी ओर, हम काउत्स्कीवादियों को देखते हैं, जिनमें वानडरवेल्डे, रेनोदिल, ब्रिटेन और फ़्रांस में बहुत-से शांतिवादी, आदि शामिल हैं। वे पहलेवालों से एकता के पक्ष में हैं और अमल में पूर्णतः उनके सदृश हैं, वे आत्मनिर्णय के अधिकार की विशुद्ध शाब्दिक रूप में, पाखंडभरे ढंग से पैरवी करते हैं: वे मुक्त राजनीतिक पृथकता की मांग को "अतिवादी" ("zu viel verlangt": Kautsky *Neue Zeit*[118] में, २१ मई, १९१५ को) मानते हैं, वे विशेष रूप से उत्पीड़क राष्ट्रों के समाजवादियों की क्रांतिकारी कार्यनीति की आवश्यकता की पैरवी नहीं करते, अपितु इसके विपरीत उनके क्रांतिकारी दायित्वों को धुंधला बनाते हैं, उनकी अवसरवादिता को न्यायसंगत ठहराते हैं, उनके लिए अपनी जनता की आंखों में धूल झोंकना आसान बनाते हैं तथा अपूर्ण अधिकारप्राप्त जातियों को ज़ोर-ज़बर्दस्ती से अपने ढांचे के अंतर्गत रखनेवाले राज्य की **सीमाओं** के प्रश्न से ही कतराते हैं, आदि।

दोनों समान रूप से अवसरवादी हैं, जो मार्क्सवाद के साथ अनाचार करते हैं, उस कार्यनीति के, जिसे मार्क्स ने आयरलैंड का उदाहरण पेश कर समझाया था, सैद्धांतिक महत्व और व्यावहारिक तात्कालिकता को समझने की सारी क्षमता खो बैठे हैं।

जहां तक समामेलनों का संबंध है, यह प्रश्न तो युद्ध के सिलसिले में ख़ास तौर पर तात्कालिक बन गया है। परंतु समामेलन है क्या? आसानी से देखा जा सकता है कि समामेलनों का विरोध या तो जातियों के आत्मनिर्णय की स्वीकृति बन जाता है अथवा status quo* की पैरवी करनेवाले शांतिवादी फ़िक़रे पर आधारित है, जो **किसी भी**, यहां तक कि क्रांतिकारी हिंसा का भी विरोधी है। इस तरह का फ़िक़रा बुनियादी रूप से झूठ है तथा मार्क्सवाद से मेल नहीं खाता।

---

*यथापूर्व स्थिति।–सं०

८. निकटतम भविष्य में सर्वहारा वर्ग के ठोस कार्यभार

समाजवादी क्रांति ग्रत्यंत निकट भविष्य में शुरू हो सकती है। इस सूरत में सर्वहारा वर्ग के सामने सत्ता को विजित करने, बैंकों का स्वत्व-हरण करने तथा ग्रन्य ग्रधिनायकत्ववादी पगों को ग्रमली जामा पहनाने का तात्कालिक कार्यभार ग्रा जायेगा। बुर्जुग्रा लोग – ख़ास तौर पर फ़ेबियनों ग्रौर काउत्स्कीवादियों की क़िस्म के बुद्धिजीवी – ऐसी घड़ी में क्रांति पर सीमित, जनवादी ध्येय थोपकर उसे विभक्त करने ग्रौर उस पर ब्रेक लगाने का प्रयास करेंगे। जहां सारी विशुद्ध जनवादी मांगें बुर्जुग्रा वर्ग की सत्ता के ग्राधार-स्तंभों पर सर्वहारा वर्ग के धावे की शुरूग्रात की सूरत में एक ग्रर्थ में क्रांति की राह में बाधक की भूमिका ग्रदा करने में सक्षम होती हैं, वहां समस्त उत्पीड़ित जनगण की स्वतंत्रता (याने उनके ग्रात्म-निर्णय के ग्रधिकार) की घोषणा करने तथा उसे ग्रमल में लाने की ग्राव-श्यकता समाजवादी क्रांति में उतनी ही तात्कालिक हो जायेगी, जितनी कि वह, उदाहरण के लिए, जर्मनी में १८४८ में तथा रूस में १६०५ में बुर्जुग्रा-जनवादी क्रांति की विजय के लिए थी।

परंतु यह संभव है कि समाजवादी क्रांति की शुरूग्रात होने तक ५, १० ग्रौर इससे भी ज़्यादा वर्ष गुज़र जायें। यह जनसाधारण की ऐसी भावना में क्रांतिकारी शिक्षा-दीक्षा का समय होगा, जो समाजवादी ग्रंधराष्ट्रवादियों तथा ग्रवसरवादियों की मज़दूर पार्टी की सदस्यता ग्रौर उनकी विजय को, जैसी कि १९१४–१९१६ में हुई थी, ग्रसंभव बना देगी। समाजवादियों को जनसाधारण को समझाना होगा कि उपनिवेशों तथा ग्रायरलैंड के लिए पृथकता की स्वतंत्रता की मांग न करनेवाले ग्रंग्रेज़ समाजवादी, उपनिवेशों, ग्रल्सासवादियों, डेनों ग्रौर पोलों के लिए पृथकता की स्वतंत्रता की मांग न करनेवाले, ग्रपने क्रांतिकारी प्रचार तथा क्रांतिकारी जनव्यापी कार्य-कलाप का सीधे जातियों के उत्पीड़न के क्षेत्र में प्रसार न करनेवाले, उत्पीड़क राष्ट्र के सर्वहारा वर्ग के बीच व्यापकतम ग़ैर क़ानूनी प्रचार करने के लिए, सड़कों पर प्रदर्शनों तथा क्रांतिकारी जनव्यापी कार्रवाई के लिए ज़ेबर्न जैसे कांडों का उपयोग न करनेवाले जर्मन समाजवादी, फ़िनलैंड,

पोलैंड, उक्रइना, आदि के लिए पृथकता की स्वतंत्रता, आदि की मांग न करनेवाले रूसी समाजवादी–ऐसे समाजवादी अंधराष्ट्रवादियों के रूप में, ख़ून से सने हुए घिनौने साम्राज्यवादी राजतंत्रों तथा साम्राज्यवादी बुर्जुआ लोगों के टहलुओं के रूप में पेश आते हैं।

६. आत्मनिर्णय के प्रति रूसी तथा पोलिश सामाजिक-जनवादियों तथा दूसरे इंटरनेशनल का रुख़

आत्मनिर्णय के प्रश्न पर रूस के क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों तथा पोलिश सामाजिक-जनवादियों के बीच मतभेद १९०३ में ही उस कांग्रेस में उभरकर सामने आ गये थे, जिसने रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का कार्यक्रम स्वीकृत किया था तथा जिसने पोलिश सामाजिक-जनवादी प्रतिनिधिमंडल के विरोध के बावजूद इस कार्यक्रम में धारा ९ शामिल की थी, जिसमें जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वीकृति दी गयी थी। तब से पोलिश सामाजिक-जनवादियों ने अपनी पार्टी की ओर से कभी भी यह प्रस्ताव नहीं दुहराया कि हमारी पार्टी के कार्यक्रम से धारा ९ निकाल दी जाये या उसके स्थान पर कोई दूसरा फ़ार्मूला रखा जाये।

रूस में, जहां उत्पीड़ित जातियों के लोग आबादी के ५७ प्रतिशत से कम नहीं हैं, याने १० करोड़ से ऊपर हैं, जहां ये जातियां मुख्यतया सीमावर्ती क्षेत्रों में बसी हुई हैं, जहां उनमें से कुछ रूसियों से कहीं ज़्यादा सुसंस्कृत हैं, जहां राजनीतिक व्यवस्था विशेष रूप से बर्बर तथा मध्ययुगीन है, जहां बुर्जुआ-जनवादी क्रांति अभी निष्पन्न नहीं हुई है–वहां, रूस में ज़ारशाही द्वारा उत्पीड़ित जातियों के रूस से मुक्त रूप से पृथक होने के अधिकार की स्वीकृति सामाजिक-जनवादियों के लिए उनके जनवादी तथा समाजवादी कार्यभारों के नाम पर असंदिग्ध रूप में अनिवार्य है। जनवरी, १९१२ में पुनःस्थापित हमारी पार्टी ने[119] १९१३ में एक प्रस्ताव[120] स्वीकृत किया, जिसने आत्मनिर्णय के अधिकार की अभिपुष्टि

की तथा इस पर ठीक उपरोक्त ठोस अर्थ में प्रकाश डाला। १९१४–१९१६ में बुर्जुआ वर्ग तथा अवसरवादी समाजवादियों (रुबानोविच, प्लेख़ानोव, 'नाशे देलो'[121], आदि) के बीच रूसी अंधराष्ट्रवाद के नंगे नाच ने हमें इस मांग पर ज़ोर देने तथा यह मानने के लिए और भी ज़्यादा प्रेरित किया है कि उसे अस्वीकार करनेवाले रूसी अंधराष्ट्रवाद और ज़ार-शाही के वास्तविक समर्थकों का काम करते हैं। हमारी पार्टी घोषित करती है कि वह आत्मनिर्णय के अधिकार के विरुद्ध इस तरह की कार्रवाइयों की कोई भी ज़िम्मेवारी सर्वथा निर्णायक रूप से अस्वीकार करती है।

जातियों के प्रश्न पर पोलिश सामाजिक-जनवादियों की स्थिति के नवीनतम निरूपण (ज़िम्मरवाल्ड सम्मेलन[122] में पोलिश सामाजिक-जनवादियों के घोषणापत्र) में ये विचार निहित हैं:

यह घोषणापत्र जर्मन तथा दूसरी सरकारों की भर्त्सना करता है, जो "**पोलिश जनता को अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करने की संभावना से वंचित कर**" "पोलिश प्रदेशों" को हरजाने के आगामी खेल में शतरंज के मोहरे मानती हैं। "पोलिश सामाजिक जनवादी **पूरे देश की फिर से काट-छांट करने और उसे टुकड़ों में बांटने** का निर्णायक रूप से तथा गंभीर-तापूर्वक विरोध करते हैं..." वे उन समाजवादियों की लानत-मलामत करते हैं, जिन्होंने "**उत्पीड़ित जनगण की मुक्ति** का कार्य" होहेंज़ोल्लर्नों पर छोड़ दिया। वे यह विश्वास व्यक्त करते हैं कि इस आसन्न संघर्ष में, समाजवाद के लिए संघर्ष में अंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी सर्वहारा की शिरकत ही "**जातियों के उत्पीड़न की बेड़ियों को तोड़ेगी** तथा **विदेशी** शासन के **सब रूपों को** नष्ट करेगी, **पोलिश जनता के लिए** जनगण के संघ में **समानताप्राप्त** सदस्य के रूप में मुक्त, सर्वतोमुखी विकास की संभावना सुनिश्चित करेगी।" घोषणापत्र युद्ध को "**पोलों के लिए**" "**दुहरा भ्रातृ-घातक**" मानता है (अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी आयोग की बुलेटिन[123], अंक २, २७ सितंबर, १९१५, पृ० १५; रूसी अनुवाद 'इंटरनेशनल और युद्ध' लेख संग्रह में, पृ० ९७)।

ये प्रस्थापनाएं जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की स्वीकृति से सार रूप में भिन्न नहीं हैं, हालांकि उनके राजनीतिक निरूपण दूसरे इंटर-

नेशनल[124] के अधिकांश कार्यक्रमों तथा प्रस्तावों से और भी ज़्यादा धुंधले तथा और भी ज़्यादा अनिश्चित हैं। इन विचारों को सटीक राजनीतिक निरूपणों की शक्ल में व्यक्त करने तथा पूंजीवादी अथवा केवल समाजवादी व्यवस्था पर उनके कार्यान्वयन का निर्धारण करने की कोई भी चेष्टा जातियों के आत्मनिर्णय को अस्वीकार करने की पोलिश सामाजिक-जनवादियों की ग़लती को और भी स्पष्ट रूप में प्रदर्शित कर देगी।

१८९६ की लंदन की अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस[125] के निर्णय की, जिसने जातियों के आत्मनिर्णय को स्वीकृत किया, अनुपूर्ति उपरोक्त थीसिसों के आधार पर ये चीज़ें निर्दिष्ट करते हुए की जानी चाहिए: (१) साम्राज्यवाद के अंतर्गत इस मांग की विशेष तात्कालिकता, (२) राजनीतिक जनवाद की संबद्ध मांग समेत सारी मांगों की राजनीतिक अवस्थाओं पर निर्भरता और उनका वर्ग अंतर्य, (३) उत्पीड़क राष्ट्रों के सामाजिक-जनवादियों तथा उत्पीड़ित जातियों के सामाजिक-जनवादियों के ठोस कार्यभारों में अंतर करने की आवश्यकता, (४) अवसरवादियों तथा काउत्स्कीवादियों द्वारा आत्मनिर्णय की असंगत, विशुद्ध रूप से शाब्दिक और इस कारण अपने राजनीतिक महत्व में पाखंडपूर्ण स्वीकृति, (५) अंधराष्ट्रवादियों की उन सामाजिक-जनवादियों, ख़ास तौर पर महान शक्तिवाले राष्ट्रों के सामाजिक-जनवादियों (रूसियों, अंग्रेज़-अमरीकियों, जर्मनों, फ़्रांसीसियों, इटालियनों, जापानियों, आदि) से वास्तविक सादृश्यता, जो "अपने" राष्ट्रों द्वारा उत्पीड़ित उपनिवेशों तथा जातियों के पृथक होने की स्वतंत्रता की पैरवी नहीं करते, (६) संबद्ध मांग के लिए तथा राजनीतिक जनवाद की सारी बुनियादी मांगों के लिए संघर्ष को बुर्जुआ सरकारों का तख़्ता उलटने के लिए और समाजवाद हासिल करने के लिए क्रांतिकारी जनव्यापी संघर्ष के सीधे मातहत करने की आवश्यकता।

कतिपय छोटी जातियों के, ख़ास तौर पर पोलिश सामाजिक-जनवादियों के, जिन्हें राष्ट्रवादी नारों से जनता को धोखा देनेवाले पोलिश बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध उनके संघर्ष ने आत्मनिर्णय की ग़लत अस्वीकृति तक पहुंचा दिया है, दृष्टिकोण को इंटरनेशनल में लाना सैद्धांतिक ग़लती, मार्क्सवाद के स्थान पर प्रूदोंवाद को रखना होगा, अमल में उसका अर्थ

महान शक्तिवाले राष्ट्रों के सबसे ख़तरनाक अंधराष्ट्रवाद तथा अवसरवाद का अनैच्छिक समर्थन होगा।

रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के
मुखपत्र 'सोत्सिआल-देमोक्रात' का संपादकमंडल

पुनश्च। ३ मार्च, १६१६ के अभी-अभी निकले *Neue Zeit* के अंक में काउत्स्की मेल-मिलाप का ईसाई हाथ जर्मन अंधराष्ट्रवाद के सबसे घिनौने प्रतिनिधि आस्टरलिट्ज़ की ओर खुलेआम बढ़ाते हैं, हाप्सबुर्ग आस्ट्रिया के लिए उत्पीड़ित जातियों के वास्ते पृथक होने की स्वतंत्रता अस्वीकार करते हैं, परंतु हिंडेनबुर्ग और विल्हेल्म द्वितीय की भृत्योचित सेवा प्रदर्शित करने के वास्ते रूसी पोलैंड के लिए यह स्वतंत्रता स्वीकार करते हैं। काउत्स्कीवाद के इससे बेहतर आत्मभंडाफोड़ की कामना करना कठिन होता!

जनवरी – फ़रवरी, १६१६ को लिखित।

खंड २७, पृ० २५२–२६६

टिप्पणियां

[1] व्ला० इ० लेनिन ने **'कार्ल मार्क्स की शिक्षा की ऐतिहासिक नियति'** नामक लेख कार्ल मार्क्स की ३० वीं बरसी के अवसर पर लिखा था। – १३

[2] यहां फ़्रांस, इटली, जर्मनी, आस्ट्रिया और हंगरी में १८४८–१८४९ के दौरान हुई बुर्जुआ-जनवादी और बुर्जुआ क्रांतियों का हवाला है, जो एक यूरोपीय क्रांति की कड़ियां थीं। – १३

[3] **पेरिस कम्यून** – इतिहास में सर्वहारा अधिनायकत्व का पहला प्रयोग। पेरिस की १८७१ की सर्वहारा क्रांति के फलस्वरूप क़ायम हुई मज़दूर वर्ग की यह क्रांतिकारी सरकार १८ मार्च से २८ मई, १८७१ तक चली। – १३

[4] **नरोदवाद** – रूसी क्रांतिकारी आंदोलन में एक टुटपुंजिया प्रवृत्ति। यह १९ वीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशकों में उत्पन्न हुई। नरोद-वादियों ने निरंकुश सत्ता की समाप्ति और भूस्वामियों की ज़मीनें किसानों को देने की मांग की।

उन्होंने यह बात अस्वीकार की कि रूस में पूंजीवादी संबंधों का विकास अनिवार्य है। इसलिए उनकी धारणा थी कि मुख्य क्रांतिकारी शक्ति सर्वहारा नहीं, बल्कि किसान है। वे ग्राम-समुदाय को समाज-वाद का भ्रूणरूप मानते थे। किसानों को निरंकुशतंत्र के विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित करने के प्रयत्न में नरोदवादी देहाती इलाक़ों में, जनता के पास (रूसी भाषा में "नरोद" का मतलब "जनता" है, इसी

कारण ये लोग "नरोदवादी" कहलाये गये) गये, पर वहां उन्हें कोई समर्थन न मिला।

१९वीं सदी के नौवें और अंतिम दशकों में नरोदवादियों ने ज़ारशाही के प्रति समझौतावादी रुख़ अपनाया, कुलकों के हित व्यक्त किये और मार्क्सवाद का विरोध किया। – १३

[5] **पहला इंटरनेशनल (अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ)** – १८६४ में मार्क्स द्वारा स्थापित इतिहास में सर्वहारा का पहला व्यापक अंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी संगठन। इंटरनेशनल विभिन्न देशों के मज़दूरों के आर्थिक व राजनीतिक संघर्ष का मार्गदर्शन और उनकी अंतर्राष्ट्रीय एकता का सुदृढ़ीकरण करता था। उसने मार्क्सवाद के प्रसार और समाजवाद को मज़दूर आंदोलन से जोड़ने में बहुत बड़ी भूमिका निभायी। उसका अस्तित्व १८७२ में समाप्त हो गया, हालांकि आधिकारिक रूप में उसे १८७६ में भंग किया गया। – १४

[6] १९०५–१९०७ की रूसी क्रांति ने अनेक देशों में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन पर बड़ा प्रभाव डाला।

रूसी क्रांति के प्रभाव से तुर्की का बुर्जुआ क्रांतिकारी आंदोलन, जो १९वीं सदी के अंत में शुरू हुआ था, १९०८ में तीव्रता की चरम सीमा पर पहुंच गया। तुर्क सेना में तरुण तुर्कों द्वारा किये गये विद्रोह की परिणति १८७६ के संविधान की बहाली और संसद की स्थापना में हुई।

ईरान (फ़ारस) में सामंत विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी क्रांतिकारी आंदोलन ने १९०५–१९०७ की रूसी क्रांति के बाद और ज़ोर पकड़ा। व्यापारिक-औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग द्वारा संचालित इस आंदोलन के फलस्वरूप ईरान की सर्वप्रथम संसद की स्थापना हुई और १९०६ का संविधान स्वीकृत किया गया।

चीन में १९०५–१९११ के दौरान बुर्जुआ वर्ग ने संविधान तथा प्रांतीय स्वायत्तता के लिए संघर्ष किया और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष का नारा दिया। उन्हीं वर्षों के दौरान किसानों और मज़दूरों का

क्रांतिकारी आंदोलन भी बढ़ने लगा। १९११ में मंचू राजवंश को सिंहासनच्युत और चीन को जनतंत्र घोषित कर दिया गया। क्रांतिकारी जनवादी सुनयात-सेन अस्थायी राष्ट्रपति चुने गये। – १५

[7] यह लेख व्ला० इ० लेनिन ने कार्ल मार्क्स की ३० वीं बरसी पर लिखा था। – १७

[8] **तरुण हेगेलपंथी** – १९ वीं सदी के चौथे तथा पांचवें दशकों में जर्मन दर्शन में आविर्भूत एक नयी भाववादी चिंतनधारा के प्रतिनिधि, जो हेगेल के दर्शन से सर्वथा नये निष्कर्ष निकालकर जर्मनी में बुर्जुआ परिवर्तनों की आवश्यकता को सिद्ध करना चाहते थे।

मार्क्स और एंगेल्स ने, जो अपनी क्रांतिकारी सरगर्मी के शुरूआती दिनों में तरुण हेगेलपंथियों के साथ संबंधित थे, बाद में उनके दर्शन के भाववादी और टुटपुंजिया सार को बेनक़ाब किया है। – २५

[9] **प्रूदोंवाद** – फ़ांसीसी अराजकतावादी प्रूदों द्वारा प्रतिपादित एक मार्क्सवाद विरोधी, टुटपुंजिया समाजवादी मत। प्रूदों पूंजीवाद की कटु आलोचना करते थे, किंतु उसका विकल्प उन्हें पूंजीवादी उत्पादन की पद्धति के, जोकि अनिवार्यतः ग़रीबी, असमानता और मेहनतकशों के शोषण को जन्म देती है, ख़ात्मे में नहीं, वरन पूंजीवाद के "संशोधन" में, कतिपय सुधार लागू करके उसकी कमियों और दोषों को दूर करने में ही दिखाई देता था। वह छोटे पैमाने के निजी स्वामित्व को शाश्वत बनाने के स्वप्न देखते थे और उन्होंने इसके लिए "सार्वजनिक" और "विनिमय" बैंक स्थापित करने का प्रस्ताव किया, जिनकी मदद से मज़दूर अपने उत्पादन के साधन ख़रीद सकते थे, दस्तकार बन सकते थे और अपने मालों की "समुचित" बिक्री सुनिश्चित कर सकते थे। सर्वहारा की ऐतिहासिक भूमिका की बात प्रूदों की समझ में नहीं आती थी, इसलिए वर्ग संघर्ष, सर्वहारा क्रांति और सर्वहारा अधिनायकत्व के प्रति उनका रवैया नकारात्मक रहा। वह अराजकतावादी दृष्टिकोण से राज्य की आवश्यकता से भी इनकार करते थे। मार्क्स की 'दर्शन

की दरिद्रता' नामक रचना में प्रूदोंवाद की कटु आलोचना की गयी थी। – २५

[10] **बकूनिनवाद** – अराजकतावाद के विचारधारा-निरूपक मि० अ० बकूनिन के नाम पर प्रचलित प्रवृत्ति। बकूनिनवादियों ने मज़दूर आंदोलन के मार्क्सवादी सिद्धांत तथा कार्यनीति का घोर विरोध किया। सर्वहारा अधिनायकत्व समेत हर प्रकार के राज्य का निषेध और सर्वहारा की विश्वव्यापी ऐतिहासिक भूमिका को न समझना बकूनिनवाद की मुख्य विशेषताएं हैं। षड्यंत्र और आतंक की उनकी कार्यनीति क्रांति विषयक मार्क्सवादी शिक्षा के विपरीत और सर्वथा दुस्साहसिकतापूर्ण थी। पहले इंटरनेशनल में घुसकर बकूनिन ने उसकी जनरल कौंसिल पर क़ब्ज़ा कर लेना चाहा और मार्क्स के ख़िलाफ़ जेहाद छेड़ा। अपनी विघटनकारी हरकतों के कारण बकूनिन को १८७२ की हेग कांग्रेस में पहले इंटर-नेशनल से निष्कासित कर दिया गया। – २५

[11] यहां आशय **बर्नस्टीनवाद** से है, जो जर्मन तथा अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवादी आंदोलन में १९ वीं सदी के अंत में उद्भूत एक मार्क्सवाद विरोधी प्रवृत्ति थी, जिसके जन्मदाता संशोधनवादी विचारक एडुअर्ड बर्नस्टीन थे।

बर्नस्टीन ने एंगेल्स की मृत्यु (१८९५) के शीघ्र बाद क्रांतिकारी मार्क्सवाद में संशोधन किये जाने की मांग ('समाजवाद की समस्याएं' शीर्षक लेखमाला तथा 'समाजवाद की पूर्वावश्यकताएं और सामाजिक-जनवाद के कार्य' शीर्षक पुस्तक में) और सामाजिक-जनवादी पार्टी को सामाजिक सुधारों की टुटपुंजिया पार्टी में बदलने की कोशिश की। – २५

[12] **नवकान्टपंथी** – बुर्जुआ दर्शन की एक प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति के प्रतिनिधि, जो जर्मनी में १९ वीं शताब्दी के मध्य में पैदा हुई थी। उन्होंने कान्ट के दर्शन के अधिकतम प्रतिक्रियावादी भाववादी प्रस्थापनाओं को अप-नाया और उसके सभी भौतिकवादी तत्वों को अस्वीकार कर दिया।

"कान्ट की ओर वापसी" के नारे के तहत उन्होंने कान्ट के भाववाद के पुनरुज्जीवन का प्रचार किया और द्वंद्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद का विरोध किया। – २६

[13] **सांविधानिक-जनवादी पार्टी (कैडेट)** – रूस में उदारतावादी-राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग की प्रमुख पार्टी, जो अक्तूबर, १९०५ में क़ायम की गयी थी। इसमें बुर्जुआ वर्ग, ज़मींदारों और बुर्जुआ बुद्धिजीवियों के प्रतिनिधि शामिल थे। उन्होंने अपने को सांविधानिक राजतंत्र की मांग तक ही सीमित रखा। पहले विश्वयुद्ध के दौरान (१९१४–१९१८) कैडेटों ने ज़ारशाही सरकार की आक्रामक विदेश नीति का समर्थन किया। फ़रवरी, १९१७ की बुर्जुआ-जनवादी क्रांति के दौरान कैडेटों ने राजतंत्र को बचाने की कोशिश की। बुर्जुआ अस्थायी सरकार में प्रमुख स्थान ग्रहण कर उन्होंने जनता विरोधी प्रतिक्रांतिकारी नीति चलायी। अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय के बाद कैडेट सोवियत सत्ता के कट्टर दुश्मन बन गये। – ३१

[14] **मिलेरांवाद (मंत्रालयवाद)** – सामाजिक-जनवादी आंदोलन में फ़्रांसीसी समाजवादी-सुधारवादी मिलेरां के नाम से ज्ञात एक अवसरवादी प्रवृत्ति। मिलेरां ने १८९९ में फ़्रांस की प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ सरकार में शामिल होकर उसकी जनता विरोधी नीति का समर्थन किया। मिलेरांवाद को संशोधनवाद और ग़द्दारी कहकर लेनिन ने बताया कि बुर्जुआ सरकार में सामाजिक-सुधारवादियों ने पूंजीपतियों के हितों की रक्षा की और जनता को धोखा देने में उनकी मदद की। – ३१

[15] **कट्टरपंथी** – मार्क्सवाद के संशोधन का विरोध करनेवाले जर्मन सामाजिक-जनवादी। – ३२

[16] **गेदवादी** – १९ वीं सदी के अंत और २० वीं सदी के आरंभ में फ़्रांस के समाजवादी आंदोलन में पायी जानेवाली एक क्रांतिकारी मार्क्सवादी प्रवृत्ति के अनुयायी, जिनके नेता जूल गेद और पाल लफ़ार्ग थे।

१९०१ में जूल गेद के नेतृत्व में क्रांतिकारी वर्ग संघर्ष के समर्थकों ने फ़्रांस की समाजवादी पार्टी बनायी और इस पार्टी के सदस्य गेदवादी कहलाये जाने लगे। १९०५ में गेदवादियों ने सुधारवादी फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी के साथ मिलकर संयुक्त फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी का निर्माण किया। पहले साम्राज्यवादी युद्ध (१९१४–१९१८) के दौरान इस पार्टी के नेताओं ने सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी रुख़ अपनाकर मज़दूर वर्ग के ध्येय के साथ ग़द्दारी की।

जोरेसवादी – फ़्रांसीसी समाजवादी जान जोरेस के अनुयायी। जोरेस ने फ़्रांसीसी समाजवादी आंदोलन के दक्षिणपंथी सुधारवादी धड़े का नेतृत्व किया। जोरेसवादियों ने मार्क्सवाद की बुनियादी प्रस्थापनाओं में संशोधन करने की मांग की और बुर्जुआ वर्ग के साथ सर्वहारा के वर्गीय सहयोग का प्रचार किया। १९०२ में उन्होंने फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी की स्थापना की, जो एक सुधारवादी पार्टी थी।

पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में (१९१४–१९१८) जोरेसवादियों ने सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी रवैया अख़्तियार करते हुए साम्राज्यवादी युद्ध का खुलेआम समर्थन किया।

ब्रूसवादी (संभावनावादी) (पाल ब्रूस, बेनुआ मालोन, आदि) – फ़्रांस में १९ वीं सदी के नौवें दशक में उद्भूत समाजवादी आंदोलन की टुटपुंजिया, सुधारवादी प्रवृत्ति के प्रतिनिधि। उन्होंने सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी कार्यक्रम और कार्यनीति को नामंजूर कर दिया, मज़दूर आंदोलन के समाजवादी उद्देश्यों की भ्रामक व्याख्या की और जितना "संभव" (possible) हो, उसी हद तक मज़दूरों के संघर्ष को सीमित रखने की सिफ़ारिश की।

१९०२ में अन्य सुधारवादी दलों के साथ संभावनावादियों ने फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी बना ली, जिसके नेता जान जोरेस थे। – ३२

[17] **इंगलैंड का सामाजिक-जनवादी संघ** (S.D.F.) १८८४ में स्थापित हुआ। सुधारवादियों और अराजकतावादियों के अलावा क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों का, जो मार्क्सवाद के अनुयायी थे, एक दल सामाजिक-जनवादी संघ से संबद्ध था (हैरी क्वेल्च, टॉम मान्न, एडुअर्ड

एवेलिंग, एल्योनोरा मार्क्स और अन्य)। इनसे ब्रिटेन के समाजवादी आंदोलन का वाम पक्ष बना था। फ़्रेडरिक एंगेल्स ने जड़सूत्रवाद और पंथवाद के लिए, ब्रिटिश आम मज़दूर आंदोलन से संबंध-विच्छेद करके उसके विशिष्ट लक्षणों की उपेक्षा करने के लिए सामाजिक-जनवादी संघ की कटु आलोचना की। १९०६ में सामाजिक-जनवादी संघ का नया नामकरण किया गया। अब यह सामाजिक-जनवादी पार्टी कहलाया। १९११ में स्वतंत्र लेबर पार्टी के वामपंथी तत्वों के साथ मिलकर इस पार्टी से ब्रिटिश समाजवादी पार्टी बनी। १९२० में इस पार्टी के अधिकांश सदस्यों ने ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना में हाथ बंटाया। – ३२

[18] **ब्रिटेन की स्वतंत्र लेबर पार्टी** (Independent Labour Party) – १८९३ में स्थापित एक सुधारवादी संगठन। ट्रेड-यूनियनों के सदस्य, बुद्धिजीवी तथा टुटपुंजिया लोग इसमें शामिल हुए। इसके नेता कैर हार्डी थे। पार्टी ने आरंभ से ही बुर्जुआ-सुधारवादी रवैया अपनाया और संसदीय संघर्ष पद्धति पर अधिक ध्यान दिया। इस पार्टी के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लेनिन ने लिखा था कि "व्यवहार में यह सदा ही बुर्जुआ वर्ग पर आश्रित अवसरवादी पार्टी रही है" और अगर "'स्वतंत्र' है, तो केवल समाजवाद से, न कि उदारतावाद से।"

पहले विश्वयुद्ध के दौरान (१९१४–१९१८) उसने मध्यमार्गी स्थिति अपनायी, लेकिन बाद में सामाजिक-अंधराष्ट्रवाद में फंसी रही। – ३२

[19] **अखंडतावादी** – "अखंड" समाजवाद के, जो एक प्रकार का टुटपुंजिया समाजवाद था, समर्थक। उनके नेता एंरीको फ़ेरी थे। इटली की समाजवादी पार्टी में मध्यमार्गी प्रवृत्ति के प्रवक्ता होने के कारण १९ वीं सदी के अंतिम दशक में अखंडतावादियों ने कई सवालों पर घोर अवसरवाद का परिचय देनेवाले और प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग के साथ सहयोग करनेवाले सुधारवादियों का विरोध किया। – ३२

[20] **मेंशेविक** – रूसी सामाजिक-जनवादी आंदोलन में अवसरवादी प्रवृत्ति के पक्षधर।

१९०३ में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस में जब पार्टी के केंद्रीय निकायों के चुनाव हुए थे, तो क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों को बहुमत (रूसी में बोल्शिंस्त्वो) मिला था, जिस से वे "बोल्शेविक" कहलाये जाने लगे, और अवसरवादियों को अल्पमत (रूसी में मेंशिंस्त्वो), जिससे उनका नाम "मेंशेविक" पड़ा।

मेंशेविकों ने पार्टी के क्रांतिकारी कार्यक्रम, क्रांति में सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व और किसानों के साथ मज़दूर वर्ग के सहयोग का विरोध किया, उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग के साथ समझौते का पक्ष लिया।

१९०५–१९०७ की क्रांति की पराजय के बाद मेंशेविकों ने मज़दूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी को भंग करने की मांग की। जनवरी, १९१२ में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के छठे अखिल रूसी सम्मेलन ने मेंशेविक विसर्जनवादियों को पार्टी से निकाल दिया।

फ़रवरी, १९१७ की बुर्जुआ-जनवादी क्रांति की विजय के बाद मेंशेविकों ने बुर्जुआ अस्थायी सरकार में सम्मिलित होकर उसकी साम्राज्यवादी नीति का समर्थन किया।

अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय के बाद मेंशेविक पार्टी ने सोवियत सत्ता का तख़्ता उलटने के लिए षड्यंत्रों तथा विद्रोहों के आयोजन तथा क्रियान्वयन में भाग लिया।– ३२

[21] **"क्रांतिकारी संघाधिपत्यवाद"** – १९वीं सदी के अंत में पश्चिमी यूरोप के कतिपय देशों के मज़दूर आंदोलन में प्रकट हुई एक टुटपुंजिया अर्ध-अराजकतावादी प्रवृत्ति।

संघाधिपत्यवादी मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष की आवश्यकता, पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका और सर्वहारा अधिनायकत्व से इनकार करते थे। उनकी धारणा थी कि ट्रेड-यूनियनें (संघ) आम हड़तालें करवाकर क्रांति के बिना भी पूंजीवाद का तख़्ता उलट सकती हैं और उत्पादन का प्रबंध अपने हाथों में ले सकती हैं।– ३२

[22] **जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी की हैनोवर कांग्रेस** ९–१४ अक्तूबर, १८९९ को हुई थी। कार्यसूची के मुख्य प्रश्न 'पार्टी के बुनियादी वि-

चारों और कार्यनीति पर हमला' पर अगस्त बेबेल ने रिपोर्ट प्रस्तुत की। लेनिन ने लिखा कि बेबेल का भाषण बहुत दिनों तक "मार्क्सवादी विचारों की हिमायत और मज़दूर पार्टी के सच्चे समाजवादी स्वरूप के लिए संघर्ष का आदर्श" बना रहेगा। फिर भी बर्नस्टीन के संशोधनवादी विचारों का खुलकर विरोध करके कांग्रेस ने बर्नस्टीनवाद की विस्तृत आलोचना से परहेज़ किया। – ३५

[23] **'राबोचाया मीस्ल'** ('मज़दूरों का विचार') – अक्तूबर, १८९७ से दिसंबर, १९०२ तक प्रकाशित एक अर्थवादी समाचारपत्र। – ३६

[24] यहां आशय कल-कारख़ानों में काम के दिन की अवधि घटाकर साढ़े ग्यारह घंटे करने से संबंधित २(१४) जून, १८९७ के क़ानून से है, जो ज़ारशाही सरकार को सारे रूस में और विशेषत: पीटर्सबर्ग में मज़दूरों की व्यापक हड़तालों के कारण जारी करना पड़ा था। – ३८

[25] यहां **'रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के घोषणापत्र'** की ओर संकेत है; जो १८९८ में उसकी केंद्रीय समिति द्वारा पार्टी की पहली कांग्रेस के आदेश पर तथा उसके नाम से प्रकाशित किया गया था। इस 'घोषणापत्र' ने राजनीतिक स्वतंत्रता के तथा राजतंत्र का तख़्ता उलटने के संघर्ष को रूसी सामाजिक-जनवादी आंदोलन के लिए सर्वप्रथम कार्यभार बना दिया और राजनीतिक संघर्ष को मज़दूर आंदोलन के सामान्य उद्देश्यों के साथ जोड़ दिया। – ३९

[26] **अर्थवादी प्रवृत्ति अथवा अर्थवाद** – १९ वीं सदी के अंत और २० वीं सदी के आरंभ में रूसी सामाजिक-जनवादी आंदोलन में एक अवसरवादी प्रवृत्ति।

अर्थवादी मज़दूर वर्ग के लक्ष्य को वेतन-वृद्धि, श्रम-परिस्थितियों में सुधार, आदि के लिए आर्थिक संघर्ष करने तक ही सीमित करते थे। उनका कहना था कि राजनीतिक संघर्ष उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग का काम है। वे मज़दूर वर्ग की पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका से इनकार करते थे और कहते थे कि पार्टी का काम आंदोलन की स्वयंस्फूर्त प्रक्रिया को

देखते रहना और घटनाओं को दर्ज करना ही है। इस बात का ख़तरा पैदा हुआ कि अर्थवाद मज़दूर वर्ग को वर्गीय क्रांतिकारी मार्ग से भटका देगा और उसे बुर्जुआ वर्ग का राजनीतिक पुछल्ला बना देगा। लेनिन के 'ईस्क्रा' ने अर्थवाद विरोधी संघर्ष में बड़ी भूमिका अदा की। १६०२ में प्रकाशित लेनिन की 'क्या करें?' शीर्षक पुस्तक में अर्थवाद की विचारधारा को अंतिम रूप से परास्त कर दिया गया। – ४०

[27] **'राबोचेये देलो'** ('मज़दूरों का ध्येय') – अप्रैल, १८६६ से फ़रवरी, १६०२ तक जेनेवा से प्रकाशित अर्थवादी अनियतकालिक पत्रिका। इसका संपादकमंडल अर्थवादियों का विदेश में स्थित केंद्र था। उसने 'ईस्क्रा' की मार्क्सवादी मज़दूर पार्टी को स्थापित करने की योजना के ख़िलाफ़ खुला संघर्ष किया, ट्रेड-यूनियनवाली नीति चलाने का आह्वान किया और किसानों की क्रांतिकारी क्षमता की उपेक्षा की, आदि। – ४०

[28] **'लिस्तोक 'राबोचेगो देला''** (''राबोचेये देलो' का पन्ना') – 'राबोचेये देलो' पत्रिका का अनियतकालिक परिशिष्ट, जो जेनेवा में जून, १६०० से जुलाई, १६०१ तक प्रकाशित होता रहा। कुल मिलाकर इसके आठ अंक निकले। – ४०

[29] **'ईस्क्रा'** ('चिनगारी') – पहला अखिल रूसी ग़ैर क़ानूनी मार्क्सवादी समाचारपत्र। लेनिन ने १६०० में इसकी स्थापना की। समाचारपत्र ने रूस में मज़दूर वर्ग की मार्क्सवादी क्रांतिकारी पार्टी के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

लेनिन के 'ईस्क्रा' का पहला अंक दिसंबर, १६०० में लाइपज़िग में प्रकाशित हुआ, बाद के अंक म्यूनिख़ में प्रकाशित हुए; जुलाई, १६०२ से यह समाचारपत्र लंदन में और १६०३ के वसंत से जेनेवा में निकलने लगा।

लेनिन वस्तुतः 'ईस्क्रा' के प्रधान संपादक और प्रधान संचालक थे। यह समाचारपत्र पार्टी शक्तियों के एकीकरण का केंद्र बन गया। 'ईस्क्रा' के संपादकमंडल ने पार्टी कार्यक्रम का मसौदा तैयार किया और उसे बहस के लिए प्रकाशित किया। उसने रूसी सामाजिक-जनवा-

दी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस की तैयारी की (१६०३)। दूसरी कांग्रेस ने रूस के सभी सामाजिक-जनवादी संगठनों को एक मार्क्सवादी पार्टी में एकीकृत करने में 'ईस्क्रा' की असाधारण भूमिका मान ली और उसे केंद्रीय मुखपत्र घोषित किया।

लेकिन पार्टी की दूसरी कांग्रेस के फ़ौरन बाद लेनिन तथा अवसरवादी प्रवृत्ति के प्रतिनिधियों – मेंशेविकों – में उग्र संघर्ष शुरू हुआ। लेनिन 'ईस्क्रा' के संपादकमंडल से अलग हो गये और ५२ वें अंक (नवंबर, १६०३) से 'ईस्क्रा' क्रांतिकारी मार्क्सवाद का मुखपत्र न रहकर **नव** 'ईस्क्रा' कहलाने लगा। मेंशेविकों ने उसे मार्क्सवाद तथा पार्टी का विरोध और अवसरवाद का प्रचार करनेवाला समाचारपत्र बना दिया। – ४१

[30] यहां आशय पीटर्सबर्ग, मास्को, कीयेव, ख़ारकोव, कज़ान, यारोस्लाव्ल, वारसा, बेलोस्तोक, तोम्स्क, ओदेसा तथा दूसरे रूसी नगरों में मज़दूरों तथा विद्यार्थियों द्वारा फ़रवरी – मार्च, १६०१ में आयोजित व्यापक राजनीतिक प्रदर्शनों, मीटिंगों, हड़तालों, आदि से है।

१६००–१६०१ का विद्यार्थी आंदोलन विशुद्ध विद्यार्थी मांगों को लेकर शुरू हुआ था, मगर शीघ्र ही उसने निरंकुशतंत्र विरोधी क्रांतिकारी राजनीतिक कार्रवाइयों का रूप ग्रहण कर लिया। सभी अग्रणी मज़दूर उसका समर्थन करने लगे। रूसी समाज के विभिन्न तबक़ों में भी उसकी अनुकूल प्रतिक्रिया हुई।

इन प्रदर्शनों तथा हड़तालों का तात्कालिक कारण कीयेव विश्वविद्यालय के १८३ विद्यार्थियों को बलात सेना में भरती किया जाना था, क्योंकि उन्होंने एक विद्यार्थी सभा में भाग लिया था। सरकार ने क्रांतिकारी कार्रवाइयों का क्रूरतापूर्वक दमन किया। उन लोगों पर तो बहुत ही अत्याचार ढाये गये, जिन्होंने पीटर्सबर्ग के कज़ान गिरजे के बाहर मैदान में ४(१७) मार्च, १६०१ को हुए प्रदर्शन में भाग लिया था। फ़रवरी – मार्च, १६०१ की घटनाओं ने प्रदर्शित कर दिया कि रूस में क्रांति की उन्नति शुरू होती जा रही थी। राजनीतिक नारों के तहत चल रहे आंदोलन में मज़दूरों की शिरकत बहुत ही महत्वपूर्ण बात थी। – ४४

[31] यहां आशय लेनिन की 'क्या करें? – हमारे आंदोलन के तात्कालिक प्रश्न' नामक पुस्तक से है, जो मार्च, १९०२ में स्टुटगार्ट नगर के दिएट्स प्रकाशनगृह द्वारा पहली बार प्रकाशित की गयी थी। – ४४

[32] **ज़ेम्स्त्वो** – १८६४ में ज़ारशाही रूस की मध्यवर्ती गुबेर्नियाओं में स्थापित स्वायत्त शासन संस्थाएं, जिनमें अभिजात वर्ग के प्रतिनिधियों को प्रमुखता प्राप्त थी। उनका अधिकार क्षेत्र शुद्धतः स्थानीय आर्थिक मसलों (अस्पतालों की व्यवस्था, सड़कों का निर्माण, आंकड़ा संकलन, बीमा, इत्यादि) तक ही सीमित था। गुबेर्नियाई गवर्नर और गृह मंत्रालय उनके कार्य पर निगरानी रखते थे और वे सरकार के लिए अप्रिय निर्णय लेने से उन्हें रोक सकते थे। – ४८

[33] **'यूज्नी राबोची'** ('दक्षिणी मज़दूर') – इसी नाम के एक दल द्वारा जनवरी, १९०० से अप्रैल, १९०३ तक ग़ैर क़ानूनी ढंग से प्रकाशित सामाजिक-जनवादी समाचारपत्र। इसने अर्थवाद तथा आतंकवाद का विरोध किया और व्यापक क्रांतिकारी आंदोलन की आवश्यकता पर ज़ोर दिया।

'यूज्नी राबोची' ने रूस में बड़ा क्रांतिकारी काम किया, लेकिन उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग तथा किसान आंदोलन के प्रति रवैये के सवाल को हल करने में अवसरवादी स्थिति अपनायी। इसके बारह अंक निकले। यह पत्र मुख्यतया रूस के दक्षिणी इलाक़ों में सामाजिक-जनवादी संगठनों में वितरित किया जाता था। – ५०

[34] १८९८ में रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की पहली कांग्रेस हुई थी। – ५५

[35] **'श्रम-मुक्ति' दल** – पहला रूसी मार्क्सवादी ग्रुप, जिसकी स्थापना १८८३ में जेनेवा में गे० वा० प्लेख़ानोव ने की थी।

'श्रम-मुक्ति' दल ने रूस में मार्क्सवाद के प्रचार में काफ़ी हाथ बंटाया। उसने मार्क्स तथा एंगेल्स की रचनाओं का रूसी में अनुवाद किया

और रूस में उन्हें बांटा। अपने कार्यकलाप से 'श्रम-मुक्ति' दल ने नरोदवाद पर गंभीर चोट की।

'श्रम-मुक्ति' दल ने अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन के साथ संपर्क क़ायम किये और १८८९ में पेरिस में दूसरे इंटरनेशनल की पहली कांग्रेस और उसके बाद की अन्य कांग्रेसों में भी रूसी सामाजिक-जनवादी आंदोलन का प्रतिनिधित्व किया। परंतु 'श्रम-मुक्ति' दल ने उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर और सर्वहारा क्रांति के रिज़र्व के रूप में किसान समुदाय की क्रांतिकारिता को घटाकर आंकने जैसी गंभीर ग़लतियां भी कीं। ये ग़लतियां आगे चलकर प्लेख़ानोव और दल के अन्य सदस्यों के मेंशेविक दृष्टिकोणों के रूप में अंकुरित हुईं। – ५९

[36] व्ला० इ० लेनिन ने **यह पुस्तक** जून – जुलाई, १९०५ में, अर्थात रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस और उन्हीं दिनों जेनेवा में हुए मेंशेविकों के सम्मेलन के बाद लिखी थी। इस पुस्तक के महत्व पर ज़ोर देते हुए लेनिन ने लिखा था: "इसमें मेंशेविकों के साथ कार्यनीति संबंधी **मुख्य** मतभेदों को सुव्यवस्थित ढंग से पेश किया गया है। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की लंदन कांग्रेस (बोल्शेविक कांग्रेस) और मेंशेविकों के जेनेवा सम्मेलन के प्रस्तावों ने इन मतभेदों को पूर्णतः निश्चित रूप दे दिया था और सर्वहारा के कार्यभारों की दृष्टि से हमारी सारी बुर्जुआ क्रांति के मूल्यांकन के प्रश्न पर उनके बीच **बुनियादी** खाई पैदा कर दी थी।" इस पुस्तक का प्रकाशन पार्टी जीवन में बड़ी घटना सिद्ध हुई। – ६१

[37] **बख़्तरबंद जहाज़ 'प्रिंस पोत्योमकिन' पर विद्रोह** १४(२७) जून, १९०५ को आरंभ हुआ था। विद्रोही पोत जब ओदेसा पहुंचा, तो वहां आम हड़ताल चल रही थी। ओदेसा के पार्टी संगठन का उस समय नेतत्व करनेवाले मेंशेविकों ने नौसैनिकों तथा मज़दूरों को एकजुट होकर सक्रिय कार्रवाइयां करने से रोका। कोयला और रसद की सप्लाई रुक जाने के कारण 'प्रिंस पोत्योमकिन' को रूमानिया की ओर कूच और वहां के अधिकारियों के सामने आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। अधिकांश

नौसैनिक रूस वापस नहीं लौटे, किंतु जो लौटे, उन पर मुक़दमा चलाया गया।

'प्रिंस पोत्योमकिन' का विद्रोह असफल रहा, किंतु रूस के इस सबसे बड़े युद्धपोत के नौसैनिकों द्वारा क्रांति का पक्ष लिया जाना एकतंत्र विरोधी संघर्ष के विकास की दिशा में एक बहुत बड़ा क़दम था। – ६३

[38] **'प्रोलेतारी'** ('सर्वहारा') – बोल्शेविकों का अवैध रूप से प्रकाशित साप्ताहिक। उसे रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस के एक निर्णय के अनुसार पार्टी के केंद्रीय मुखपत्र के रूप में निकाला जाने लगा था। व्ला० इ० लेनिन उसके मुख्य संपादक थे। पत्र जेनेवा से मई, १९०५ से नवंबर, १९०५ तक ही निकल पाया। – ६३

[39] समाजवादी-क्रांतिकारी पार्टी का कार्यक्रम फ़िनलैंड में २९ दिसंबर, १९०५ से ६ जनवरी, १९०६ तक जारी पहली कांग्रेस में पास किया गया था।

समाजवादी-क्रांतिकारी – विभिन्न नरोदवादी दलों और मंडलियों के एकीकरण के फलस्वरूप १९०१ के अंत – १९०२ के आरंभ में स्थापित एक टुटपुंजिया पार्टी के सदस्य।

समाजवादी-क्रांतिकारी सर्वहारा और किसानों के वर्गीय अंतरों को अनदेखा करते थे, मेहनतकश किसानों तथा कुलकों – इन दो तबक़ों – में किसान समुदाय के विभाजन और उनके बीच मौजूद विरोधों पर पर्दा डालते थे और क्रांति में सर्वहारा की नेतृत्वकारी भूमिका को नहीं मानते थे।

समाजवादी-क्रांतिकारियों के कृषि कार्यक्रम में ज़मीन पर निजी स्वामित्व का उन्मूलन करके भूमि के समान उपयोग के आधार पर सारी भूमि ग्राम-समुदायों को हस्तांतरित किये जाने की मांग शामिल थी, जिसे "भूमि का समाजीकरण" कहा गया। किंतु पूंजीवादी उत्पादन संबंधों के रहते "भूमि के समान उपयोग" का सिद्धांत लागू किये

जाने से समाजवाद नहीं आ सकता था। उससे केवल इतना होता कि देहातों में अर्द्धसामंती संबंधों का ख़ात्मा हो जाता और पूंजीवाद तीव्र गति से विकास करने लगता।

पहले विश्वयुद्ध (१९१४–१९१८) के दौरान अधिकांश समाजवादी-क्रांतिकारियों ने सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी स्थिति अपनायी।

फ़रवरी, १९१७ में बुर्जुआ-जनवादी क्रांति की विजय के बाद समाजवादी-क्रांतिकारियों के नेताओं ने प्रतिक्रियावादी अस्थायी सरकार में शामिल होकर समाजवादी क्रांति की तैयारियों में लगे मज़दूर वर्ग का विरोध किया और १९१७ के ग्रीष्म में छिड़े किसान आंदोलन को कुचलने में भाग लिया।

अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद समाजवादी-क्रांतिकारी सोवियत सत्ता के सक्रिय शत्रु बन गये।– ६३

[40] **'ओस्वोबोज्देनिये'** ('मुक्ति') – प० बे० स्त्रूवे के संपादकत्व में १९०२ से १९०५ तक विदेश में प्रकाशित रूसी पत्रिका, जो रूसी उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग की प्रवक्ता मानी जाती थी।

१९०३ में इस पत्रिका ने 'ओस्वोबोज्देनिये लीग' को जन्म दिया, जो अक्तूबर, १९०५ तक काम करती रही। 'ओस्वोबोज्देनिये'-पंथी सांविधानिक-जनवादी पार्टी (कैडेट) की रीढ़ बने, जिसकी स्थापना अक्तूबर, १९०५ में हुई थी। यह रूस के उदारतावादी-राजतंत्रवादी बुर्जुआ वर्ग की प्रमुख पार्टी थी।– ६५

[41] **नव 'ईस्क्रा'-पंथी** – नव, अवसरवादी 'ईस्क्रा' के अनुयायी, मेंशेविक।– ६५

[42] **रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की तीसरी कांग्रेस** १९०५ में लंदन में हुई थी और १२ से २७ अप्रैल (२५ अप्रैल से १० मई) तक चली थी। उसके आयोजक बोल्शेविक और मार्गदर्शक लेनिन थे। मेंशेविक उसमें भाग लेने को सहमत न हुए और जेनेवा में उन्होंने अपना अलग सम्मेलन बुलाया।

कांग्रेस ने रूस में शुरू हो रही क्रांति से संबंधित बुनियादी सवालों

पर विचार और सर्वहारा तथा उसकी पार्टी के कार्यभारों का निर्धारण किया।

कांग्रेस ने बुर्जुआ-जनवादी क्रांति में पार्टी द्वारा अपनायी जानेवाली दूरगामी योजना बनायी। इस दूरगामी योजना के आधार पर एक कार्यनीतिक योजना भी बनायी गयी, जिसमें कांग्रेस ने सशस्त्र विद्रोह के संगठन को पार्टी का मुख्य तथा तात्कालिक कार्यभार बताया। कांग्रेस ने कहा कि सशस्त्र जन-विद्रोह की विजय के बाद एक अस्थायी क्रांतिकारी सरकार बनानी होगी, जो प्रतिक्रांति के विरोध को कुचलेगी, रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के न्यूनतम कार्यक्रम को लागू करेगी और समाजवादी क्रांति में संक्रमण के लिए परिस्थितियां बनायेगी।

कांग्रेस ने मेंशेविकों की कार्रवाइयों और संगठनात्मक एवं कार्यनीतिक प्रश्नों पर उनकी अवसरवादिता की भर्त्सना की।

पहली बोल्शेविक कांग्रेस होने के नाते उसका बड़ा ऐतिहासिक महत्व था। उसने पार्टी तथा मज़दूर वर्ग को जनवादी क्रांति की विजय के लिए संघर्ष का सक्रिय कार्यक्रम दिया।– ६५

[43] **बुलीगिन आयोग** – ज़ार के आदेश पर गृहमंत्री अ० ग० बुलीगिन की अध्यक्षता में फ़रवरी, १६०५ में नियुक्त एक विशेष आयोग। बड़े ज़मींदारों और प्रतिक्रियावादी अभिजात वर्ग के प्रतिनिधियों को उसका सदस्य बनाया गया था। आयोग ने राज्य दूमा बुलाने तथा उसके निर्वाचन से संबंधित क़ानून तैयार किये। इसके अनुसार मताधिकार केवल ज़मींदारों, पूंजीपतियों और मात्र थोड़े-से ख़ुदकाश्त किसानों को दिया गया था।

क्रांति के बढ़ते उभार और अक्तूबर महीने की राजनीतिक हड़ताल के कारण बुलीगिन दूमा के चुनाव नहीं हो पाये और सरकार उसकी बैठकें न करा सकी।– ६८

[44] रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस (१६०३) द्वारा स्वीकृत पार्टी कार्यक्रम दो भागों में बंटा था: अधिकतम कार्यक्रम और न्यूनतम कार्यक्रम। **अधिकतम कार्यक्रम** का लक्ष्य समाजवादी क्रांति की

विजय और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना था ताकि समाजवादी समाज का निर्माण किया जा सके। **न्यूनतम कार्यक्रम** में पार्टी की तात्कालिक मांगें शामिल थीं, जैसे एकतंत्र का उन्मूलन, जनवादी जनतंत्र की स्थापना, आठ घंटे का कार्य-दिवस जारी करना और गांव में भूदास-प्रथा के सभी प्रकार के अवशेषों का ख़ातमा। न्यूनतम कार्यक्रम बुर्जुआ-जनवादी क्रांति के दौरान पूरा किया जा सका।—७१

[45] **६ जनवरी, १६०५ को** पादरी गपोन के नेतृत्व में पीटर्सबर्ग के मज़दूरों ने एक शांतिपूर्ण प्रदर्शन किया। मज़दूर ज़ार को अपनी अर्ज़ी पेश करने के लिए शिशिर प्रासाद पहुंच रहे थे। ज़ार के आदेश के अनुसार सिपाहियों ने प्रदर्शन पर गोली चला दी। निःशस्त्र मज़दूरों के विरुद्ध की गयी इस ख़ूनी कार्रवाई के जवाब में समूचे रूस में राजनीतिक हड़तालों और प्रदर्शनों की लहर फैल गयी।

६ जनवरी, १६०५ की घटनाएं, जिनका ख़ूनी इतवार नाम पड़ गया, १६०५–१६०७ की पहली रूसी क्रांति का श्रीगणेश थीं।—८१

[46] **फ़्रैंकफ़ुर्ट संसद** अखिल जर्मन राष्ट्रीय सभा को कहा जाता था, जो जर्मनी में १८४८ की मार्च क्रांति के बाद बुलायी गयी थी। संसद का मुख्य काम राजनीतिक बिखराव को ख़त्म करना और सारे जर्मनी के लिए एक संविधान बनाना था। किंतु उदारपंथी बहुसंख्या की कायरता तथा ढुलमुलपन और टुटपुंजिया वामपक्ष की अदृढ़ता तथा परस्पर विरोधी कार्रवाइयों के कारण सभा देश की सर्वोच्च सत्ता अपने हाथ में लेने और १८४८–१८४६ की जर्मन क्रांति से संबंधित बुनियादी मसलों पर दृढ़ रवैया अख़्तियार करने की हिम्मत न कर पायी। जून, १८४६ में सभा को भंग कर दिया गया।—८२

[47] **'नया राइन समाचारपत्र'** (*Neue Rheinische Zeitung*)—कोलोन से कार्ल मार्क्स के संपादन में निकलनेवाला एक दैनिक पत्र। वह १ जून, १८४८ से १६ मई, १८४६ तक ही प्रकाशित होता रहा।

दैनिक के अग्रलेख, जिन्होंने जर्मन तथा यूरोपीय क्रांति के सबसे महत्व-

पूर्ण सवालों पर पत्र का रुख़ प्रकट किया था, आम तौर पर मार्क्स और एंगेल्स लिखते थे।–८२

48 **'सोत्सिआल-देमोक्रात'** ('सामाजिक-जनवादी') तिफ़लिस (त्बिलीसी) से जार्जियाई में प्रकाशित मेंशेविक समाचारपत्र। वह अप्रैल, १६०५ से नवंबर, १६०५ तक ही निकल पाया। उसके संपादक जार्जियाई मेंशेविकों के नेता न० जोर्दानिया थे।–८४

49 **यमदूत सभा**–गुंडों के गिरोहों का नाम, जिन्हें क्रांतिकारी आंदोलन को कुचलने के लिए ज़ारशाही पुलिस ने गठित किया था।

घोर दक्षिणपंथियों और अति कट्टर प्रतिक्रियावादियों को भी यमदूत सभाई कहा जाता था।–८६

50 लेनिन ने **शीपोव मार्का** संविधान नाम राज्य के गठन की उस योजना को दिया है, जिसे ज़ेम्स्त्वोवादियों के दक्षिणपंथी धड़े के नेता, नरम उदारतापंथी द० नि० शीपोव ने तैयार किया था। क्रांति का प्रसार रोकने और साथ ही ज़ारशाही सरकार से ज़ेम्स्त्वो संस्थाओं के लिए कतिपय रिआयतें पाने के उद्देश्य से शीपोव ने ज़ार के मातहत एक परामर्शदायी प्रातिनिधिक निकाय बनाने का सुझाव रखा था। यह जनता की आंखों में धूल झोंकने, राजतंत्र बनाये रखने और नरम उदारतापंथियों के लिए कुछ राजनीतिक अधिकार पाने की कोशिशों के अलावा और कुछ न था।–८७

51 **क़ानूनी मार्क्सवाद**–१६ वीं सदी के अंतिम दशक में रूस में उदारतावादी बद्धिजीवियों के बीच जन्मी एक स्वतंत्र सामाजिक-राजनीतिक प्रवत्ति। यह मार्क्सवाद की उदारतावादी-बुर्जुआ विकृति थी। स्त्रूवे के नेतत्व में क़ानूनी मार्क्सवादियों ने मार्क्सवाद का बुर्जुआ वर्ग के हित में उपयोग करने की कोशिश की। मार्क्सवाद का झंडा उठाकर, लेकिन मार्क्स की सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा–सर्वहारा क्रांति तथा सर्वहारा अधिनायकत्व विषयक शिक्षा–को अस्वीकृत करके वे अपने विचारों का

वैध पत्र-पत्रिकाओं के ज़रिये प्रचार करने लगे। इसी से उनका मार्क्स-वाद "क़ानूनी मार्क्सवाद" कहलाया।– ६०

[52] **'रूस्स्काया स्तारिना'** ('रूसी प्राचीन काल') – पीटर्सबर्ग से १८७० से १९१८ तक प्रकाशित एक ऐतिहासिक मासिक।– ९४

[53] यहां आशय कार्ल मार्क्स की रचना 'फ़ायरबाख़ पर निबंध' से है।– ९५

[54] **"आम भूमि पुनर्वितरण"** – एक ऐसा नारा, जो भूमि के पूर्ण व सार्विक पुनर्वितरण की किसानों की आकांक्षा को व्यक्त करता था।– १००

[55] **'रूस्स्कीये वेदोमोस्ती'** ('रूसी रेकार्डर') – मास्को से १८६३ से १९१८ तक प्रकाशित समाचारपत्र। वह नरम उदारतावादी बुद्धिजीवियों का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता था।

'सिन ओतेचेस्त्वा' ('पितृभूमि का पुत्र') – १८५६ से १९०० और १९०४ से १९०५ तक पीटर्सबर्ग से प्रकाशित एक उदारतावादी दैनिक।

'नाशा जीज़्न' ('हमारा जीवन') – पीटर्सबर्ग से १९०४–१९०६ में रुक-रुककर निकलनेवाला एक उदारतावादी दैनिक।

'नाशी द्नी' ('आजकल') – पीटर्सबर्ग से १९०४–१९०५ में प्रकाशित एक उदारतावादी दैनिक।– १०४

[56] देखें कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र' (का० मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स, संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, खंड १, भाग १, हिंदी संस्करण, मास्को, प्रगति प्रकाशन, १९७६, पृ० ११७–१६८)।– १०४

[57] **"मफ़लरधारी आदमी"** – रूसी लेखक अ० पा० चेख़ोव की इसी नाम की कहानी का नायक। उसके माध्यम से चेख़ोव ने संकीर्णमना, कूप-मंडूक आदमी का चित्रण किया है।– १०६

[58] **'व्पेर्योद'** ('आगे बढ़ो') – दिसंबर, १९०४ से मई, १९०५ तक

जेनेवा से प्रकाशित एक ग़ैर क़ानूनी बोल्शेविक साप्ताहिक पत्र। इसके कुल १८ अंक प्रकाशित हुए। लेनिन ने इस पत्र को संगठित तथा निर्देशित किया था।—१०८

59 लेनिन ने यह अंश *Aus dem literarischen Nachlaß von Karl Marx, Friedrich Engels und Ferdinand Lassalle. Herausgegeben von Franz Mehring*. Band III, Stuttgart, 1902,S. 211 ('फ़्रांज़ मेहरिंग द्वारा संपादित कार्ल मार्क्स, फ़्रेडरिक एंगेल्स और फ़र्दीनांद लासाल की साहित्यिक विरासत से', खंड ३, स्टुटगार्ट, १९०२, पृ० २११) नामक पुस्तक से उद्धृत किया है।—११३

60 **जैकोबिन और जिरौंद दल**—१८वीं सदी के अंत में हुई फ़्रांसीसी बुर्जुआ क्रांति के काल में बुर्जुआ वर्ग के दो राजनीतिक दलों के नाम।

जैकोबिन नाम बुर्जुआ वर्ग के दृढ़ प्रतिनिधियों को दिया गया है। वे उस समय के क्रांतिकारी जनवादी थे, जिन्होंने निरंकुश शासन और सामंतवाद के विनाश की आवश्यकता का समर्थन किया।

जिरौंदवादी नरम बुर्जुआ लोगों के हित अभिव्यक्त करते थे, क्रांति और प्रतिक्रांति के बीच डगमगाते रहे। उनकी नीति राजतंत्र से सौदा करने की थी।

लेनिन ने रूसी सामाजिक-जनवादी आंदोलन की अवसरवादी प्रवृत्ति—मेंशेविकों—को "समाजवादी जिरौंद" की और क्रांतिकारी सामाजिक-जनवादियों को सर्वहारा जैकोबिनों की संज्ञा दी।—११३

61 यहां आशय ज़ेम्स्त्वो के प्रतिनिधिमंडल की ६(१९) जन, १९०५ को ज़ार निकोलाई द्वितीय से हुई मुलाक़ात से है। प्रतिनिधिमंडल ने ज़ार को जन-प्रतिनिधि आमंत्रित करने के बारे में एक याचिका सौंपी थी ताकि ज़ार की सहमति-अनुमति से "नवीन राज्य-व्यवस्था" क़ायम की जा सके।—११३

62 **बाशीबुज़ूक**—१८–१९वीं सदियों में तुर्की की सेना के अनियमित दस्तों का नाम, जो अपनी अनुशासनहीनता, नृशंसता और लूटपाट के लिए

कुख्यात थे। बाद में बाशीबुज़ूक जातिवाचक संज्ञा बन गया। यहां लेनिन का संकेत ज़ार के अंगरक्षक, अपनी क्रूरता के लिए बदनाम कर्नल पुत्यातिन की ओर है।– ११३

[63] **'व्पेर्योद'-पंथी, कांग्रेसवाले या 'प्रोलेतारी'-पंथी** – ये नाम बोल्शेविकों के लिए प्रयुक्त किये गये थे, क्योंकि उन्होंने पार्टी की तीसरी कांग्रेस बुलायी थी और वे 'व्पेर्योद' तथा 'प्रोलेतारी' नामक अख़बार निकालते थे।– ११३

[64] यहां आशय उदारतावादियों के प्रति सामाजिक-जनवादियों की नीति से संबंधित अ० नि० पोत्रेसोव (स्तारोवेर) के उस भ्रमपूर्ण प्रस्ताव से है, जो रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस (१६०३) में पास हुआ है।– ११५

[65] यहां आशय रूस-जापान युद्ध के दौरान रूसी और जापानी बेड़ों की १४–१५ (२७–२८) मई, १६०५ को त्सुसीमा द्वीप के निकट हुई लड़ाई से है, जिसमें रूसी बेड़ा पराजित हुआ था।– ११७

[66] देखें टिप्पणी ४३।– ११७

[67] **राज्य दूमा** – एक प्रतिनिधि संस्था, जिसे ज़ारशाही सरकार को १६०५ की क्रांतिकारी घटनाओं के फलस्वरूप मजबूरन बुलाना पड़ा था। औपचारिक रूप से राज्य दूमा एक विधायिनी संस्था थी, किंतु इसे कोई वास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं थे। इसका चुनाव अप्रत्यक्ष, असमान और असार्विक था। मेहनतकश वर्गों तथा रूस में रहनेवाली ग़ैर रूसी जातियों के मताधिकार को काफ़ी परिसीमित कर दिया गया था और मज़दूरों तथा किसानों के एक बड़े हिस्से को तो मताधिकार प्राप्त ही नहीं था।– ११७

[68] **"संसदीय जड़वामनता"** एक ऐसी अभिव्यक्ति है, जिसे लेनिन ने अवसरवादियों पर लागू किया, जो यह मानते थे कि संसदीय पद्धति सर्व-

शक्तिशाली है और संसदीय सरगर्मी हर दशा में राजनीतिक संघर्ष का एकमात्र रूप है।–१२०

[69] यहां अभिप्राय जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी की ब्रेसलाऊ कांग्रेस (६–१२ अक्तूबर, १८९५) में कृषि कार्यक्रम के मसविदे पर हुई बहस के दौरान उभरे मतभेदों से है। मसविदे में अनेक गंभीर दोष थे। उसमें सर्वहारा पार्टी को "समस्त जनता की पार्टी" में बदलने की प्रवृत्ति स्पष्टतः झलकती थी। अवसरवादियों के अलावा अगस्त बेबेल और विल्हेल्म लीब्कनेख़्त ने भी उसका समर्थन किया। विरोध करनेवालों में कार्ल काउत्स्की, क्लारा ज़ेत्किन और कतिपय अन्य सामाजिक-जनवादी थे। बहुमत विरोध में होने के कारण मसविदा पास न हो सका।–१२३

[70] यहां आशय लेनिनीय 'ईस्क्रा' की योजना के विरुद्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित नदेज्दिन (ये० ओ० ज़ेलेन्स्की) के वक्तव्य से है। लेनिन ने इस वक्तव्य की १९०२ में अपनी पुस्तक 'क्या करें?' में भी आलोचना की थी।–१२९

[71] **'फ़्रैंकफ़ुर्ट समाचारपत्र'** (*Frankfurter Zeitung*) फ़्रैंकफ़ुर्ट-आॅन-मेन से १८५६ से १९४३ तक प्रकाशित दैनिक, जो बड़े जर्मन सटोरियों का मुखपत्र था।–१३२

[72] यहां लेनिन का आशय लंदन स्थित ब्लांकीवादियों द्वारा, जो पेरिस कम्यून के सदस्य रह चुके थे, १८७४ में जारी किये गये कार्यक्रम से है।

ब्लांकीवादी – फ़्रांसीसी समाजवादी आंदोलन में एक प्रवृत्ति के अनुयायी। इस प्रवृत्ति के जन्मदाता महान क्रांतिकारी, फ़्रांसीसी कल्पनावादी कम्युनिज़्म के एक प्रमुख प्रवक्ता लुई ओग्यूस्त ब्लांकी (१८०५–१८८१) थे।

ब्लांकीवादी वर्ग संघर्ष के महत्व से इनकार करते थे, क्रांतिकारी

पार्टी के बदले मुट्ठी भर गुप्त षड्यंत्रकारियों की कार्रवाइयों को प्राथमिकता देते थे, विद्रोह की सफलता के लिए तदनुकूल स्थिति का होना अनिवार्य नहीं मानते थे और जनसाधारण के साथ संपर्क बनाये रखने की आवश्यकता को उपेक्षा की नज़रों से देखते थे। – १४१

[73] पेरिस से १७ किलोमीटर की दूरी पर स्थित **वेर्साई** लुई चौदहवें (१७वीं सदी का अंत–१८वीं सदी का आरंभ) के ज़माने से फ़्रांसीसी सम्राटों का निवासस्थान था।

कम्यून के विद्रोह के बाद थियेर की अस्थायी सरकार ने यहीं शरण ली। वेर्साई थियेर के गिर्द एकत्र हुई प्रतिक्रियावादी शक्तियों का गढ़ था। – १४१

[74] **जर्मनी की सामाजिक-जनवादी पार्टी का एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम** अक्तूबर, १८९१ में उसकी एर्फ़ुर्ट कांग्रेस में स्वीकार किया गया था। वह मार्क्सवाद की इस बुनियादी मान्यता पर आधारित था कि पूंजीवादी उत्पादन पद्धति का विनाश और उसके स्थान पर समाजवादी उत्पादन पद्धति का आगमन अपरिहार्य हैं। उसमें मज़दूर वर्ग के लिए राजनीतिक संघर्ष चलाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया था और कहा गया था कि इस संघर्ष का नेतृत्व पार्टी को ही करना चाहिए। किंतु साथ ही उसमें अवसरवाद को कई गंभीर रिआयतें भी दी गयी थीं। एंगेल्स ने अपनी रचना '१८९१ के सामाजिक-जनवादी कार्यक्रम के मसौदे की एक समीक्षा' में एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम की विशद आलोचना की। लेनिन सर्वहारा अधिनायकत्व के प्रश्न पर चुप्पी को एर्फ़ुर्ट कार्यक्रम की मुख्य त्रुटि और अवसरवाद को दी गयी कायरतापूर्ण रिआयत मानते थे। – १४८

[75] देखें फ़्रे० एंगेल्स, 'भावी इतालवी क्रांति तथा समाजवादी पार्टी', १८९४। – १४९

[76] **'प्रोलेतारी'** समाचारपत्र के तीसरे अंक में लेनिन का 'अस्थायी क्रांतिकारी सरकार की बाबत' शीर्षक लेख छपा था। लेनिन एंगेल्स का

'बकूनिनवादी काम पर। १८७३ के ग्रीष्मकाल में स्पेन में विद्रोह की समीक्षा' शीर्षक वह लेख उद्धृत करते हैं, जिसमें बकूनिनवादियों के लेनिन द्वारा उल्लिखित प्रस्ताव की ग्रालोचना की गयी।– १५७

[77] *Credo*— ग्रास्था का प्रतीक, कार्यक्रम, विश्वदृष्टिकोण का निरूपण। इस नाम से वह घोषणापत्र मशहूर हुग्रा, जिसे ग्रर्थवादियों के एक दल ने १८९९ में जारी किया था ग्रौर जिसमें रूसी ग्रर्थवाद का ग्रवसरवाद ग्रपने नग्न रूप में सामने ग्राया था। ग्रर्थवादियों ने सर्वहारा वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक भूमिका तथा मज़दूर वर्ग की राजनीतिक पार्टी की ग्रावश्यकता से इनकार कर दिया।– १५९

[78] यहां ग्राशय मार्क्स द्वारा 'हेगेलीय न्याय-दर्शन की ग्रालोचनात्मक समीक्षा' में कही हुई बात से है।– १६०

[79] *L'Humanité* ('मानवजाति')– जान जोरेस द्वारा १९०४ में संस्थापित दैनिक। पहले यह फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी का मुखपत्र था, किंतु १९२० में फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी के विभाजन ग्रौर फ़्रांस की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के बाद से यह कम्युनिस्ट पार्टी का मुखपत्र हो गया।– १६२

[80] यहां ग्राशय १९०४–१९०५ के रूस-जापान साम्राज्यवादी युद्ध से है, जिसमें रूस की पराजय हुई।– १६३

[81] यहां ग्राशय फ़्रांसीसी मज़दूर ग्रांदोलन ग्रौर पहले इंटरनेशनल के एक प्रमुख नेता लुई एजेन वर्लिन की १८७१ में पेरिस कम्यून की परिषद में शिरकत से है।– १७३

[82] **रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस** जुलाई–ग्रगस्त, १९०३ में ब्रसेल्स तथा लंदन में हुई थी। कांग्रेस का ग्रायोजन 'ईस्क्रा' ने किया, जिसने लेनिन के नेतृत्व में क्रांतिकारी मार्क्सवाद के सिद्धांतों

के आधार पर रूसी सामाजिक-जनवादियों को एकत्रित करने की बड़ी कार्रवाई की।

कांग्रेस में 'ईस्क्रा' द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रम के जिस मसविदे पर विचार किया गया, उस पर अवसरवादियों ने घोर हमला किया, ख़ास तौर से उन प्रस्थापनाओं पर, जिनमें मज़दूर आंदोलन में पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना की आवश्यकता के बारे में कहा गया। कांग्रेस ने अवसरवादियों को मुंहतोड़ जवाब दिया और मार्क्सवादी कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया। – १७४

[83] यहां अभिप्राय मेंशेविकों के जेनेवा सम्मेलन (१९०५) द्वारा स्वीकृत "संगठन नियमावली" से है। – १७५

[84] "**ज़ेम्स्त्वो आंदोलन की योजना**" – १९०४ की पतझड़ और १९०५ के जनवरी के बीच बुर्जुआ उदारतावादियों द्वारा चलाये गये "ज़ेम्स्त्वो आंदोलन" का समर्थन करने की मेंशेविक योजना। इस आंदोलन के सिलसिले में कांग्रेसों, सभाओं तथा दावतों का आयोजन किया गया, जिनमें नरम सांविधानिक मांगों की भावना में भाषण किये गये तथा इसी प्रकार के प्रस्ताव पास किये गये। – १७५

[85] देखें कार्ल मार्क्स, 'फ़्रांस में वर्ग संघर्ष, १८४८–१८५०', १८५०। – १७८

[86] **वर्ग संघर्ष की ब्रेंतानो धारणा, ब्रेंतानोवाद** – एक उदारतावादी-बुर्जुआ मत, जो पूंजीवाद के दायरे में कारख़ाना क़ानून बनाये जाने और ट्रेड-यूनियनों में मज़दूरों के संगठन के ज़रिये उनके सवालों के हल किये जाने की संभावना का समर्थन करता था। म्यूनिख़ विश्वविद्यालय के राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफ़ेसर, कैथेडेर-समाजवादी मत के एक मुख्य प्रतिनिधि लूयो ब्रेंतानो के नाम पर इसका नामकरण हुआ है। – १८७

[87] **हिर्श और डुंकेर की ट्रेड-यूनियनें** – बुर्जुआ प्रगतिवादी पार्टी के नेता माक्स हिर्श और फ़्रांज़ डुंकेर द्वारा १८६८ में क़ायम की गयी जर्मनी की सुधार-

वादी ट्रेड-यूनियनें। पूंजी और श्रम के हितों के "सामंजस्य" के विचार का प्रचार करते हुए ट्रेड-यूनियनों के संगठनकर्त्ता मानते थे कि ट्रेड-यूनियनों में मज़दूरों के साथ पूंजीपतियों को भी प्रवेश करने की अनुमति दी जा सकती है। हड़तालों की आवश्यकता से वे इनकार करते थे। उनके मतानुसार ट्रेड-यूनियनों का मुख्य काम था मालिकों और मज़दूरों के बीच मध्यस्थता करना और धन-संग्रह करना। उनकी गतिविधियां मुख्यतया पारस्परिक सहायता संस्थाओं और शैक्षणिक क्लबों तक ही सीमित हो गयीं।—१८७

88 **'रास्स्वेत'** ('उषा')—पीटर्सबर्ग से मार्च—नवंबर, १९०५ में प्रकाशित एक क़ानूनी उदारतावादी दैनिक समाचारपत्र।—१८८

89 **'ज़ार्या'** ('भोर')—'ईस्क्रा' के संपादकमंडल द्वारा १९०१—१९०२ में स्टुटगार्ट से प्रकाशित मार्क्सवादी वैज्ञानिक और राजनीतिक पत्रिका। 'ज़ार्या' ने अंतर्राष्ट्रीय और रूसी संशोधनवाद की आलोचना की और मार्क्सवाद के सैद्धांतिक आधारों का समर्थन किया।—१९३

90 यहां आशय फ़्रांस में १८४८ की फ़रवरी क्रांति से है।—१९६

91 **'मोस्कोव्स्किये वेदोमोस्ती'** ('मास्को रेकार्डर')—१७५६ से मास्को विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित समाचारपत्र, जो सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी ज़मींदारों तथा पोप-पादरियों के विचारों को व्यक्त करता था। १९०५ से वह यमदूत सभाइयों का एक मुख्य प्रवक्ता बन गया। यह समाचार-पत्र अक्तूबर समाजवादी क्रांति तक निकलता रहा।—१९७

92 व्ला० इ० लेनिन यहां फ़्रांज़ मेहरिंग द्वारा अपनी पुस्तक 'फ़्रांज़ मेहरिंग द्वारा संपादित कार्ल मार्क्स, फ़्रेडरिक एंगेल्स और फ़र्दीनांद लासाल की साहित्यिक विरासत से', खंड ३, स्टुटगार्ट, १९०२ के लिए लिखित भूमिका का हवाला दे रहे हैं।

पृष्ठ २०७—२०८ पर लेनिन ने मेहरिंग की इसी भूमिका को उद्धृत किया है।—२००

वादी ट्रेड-यूनियनें। पूंजी और श्रम के हितों के "सामंजस्य" के विचार का प्रचार करते हुए ट्रेड-यूनियनों के संगठनकर्त्ता मानते थे कि ट्रेड-यूनियनों में मज़दूरों के साथ पूंजीपतियों को भी प्रवेश करने की अनुमति दी जा सकती है। हड़तालों की आवश्यकता से वे इनकार करते थे। उनके मतानुसार ट्रेड-यूनियनों का मुख्य काम था मालिकों और मज़दूरों के बीच मध्यस्थता करना और धन-संग्रह करना। उनकी गतिविधियां मुख्यतया पारस्परिक सहायता संस्थाओं और शैक्षणिक क्लबों तक ही सीमित हो गयीं। – १८७

[88] **'रास्स्वेत'** ('उषा') – पीटर्सबर्ग से मार्च – नवंबर, १९०५ में प्रकाशित एक क़ानूनी उदारतावादी दैनिक समाचारपत्र। – १८८

[89] **'ज़ार्या'** ('भोर') – 'ईस्क्रा' के संपादकमंडल द्वारा १९०१–१९०२ में स्टुटगार्ट से प्रकाशित मार्क्सवादी वैज्ञानिक और राजनीतिक पत्रिका। 'ज़ार्या' ने अंतर्राष्ट्रीय और रूसी संशोधनवाद की आलोचना की और मार्क्सवाद के सैद्धांतिक आधारों का समर्थन किया। – १९३

[90] यहां आशय फ़्रांस में १८४८ की फ़रवरी क्रांति से है। – १९६

[91] **'मोस्कोव्स्किये वेदोमोस्ती'** ('मास्को रेकार्डर') – १७५६ से मास्को विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित समाचारपत्र, जो सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी ज़मींदारों तथा पोप-पादरियों के विचारों को व्यक्त करता था। १९०५ से वह यमदूत सभाइयों का एक मुख्य प्रवक्ता बन गया। यह समाचार-पत्र अक्तूबर समाजवादी क्रांति तक निकलता रहा। – १९७

[92] व्ला० इ० लेनिन यहां फ़्रांज़ मेहरिंग द्वारा अपनी पुस्तक 'फ़्रांज़ मेहरिंग द्वारा संपादित कार्ल मार्क्स, फ़्रेडरिक एंगेल्स और फ़र्दीनांद लासाल की साहित्यिक विरासत से', खंड ३, स्टुटगार्ट, १९०२ के लिए लिखित भूमिका का हवाला दे रहे हैं।

पृष्ठ २०७ – २०८ पर लेनिन ने मेहरिंग की इसी भूमिका को उद्धृत किया है। – २००

[93] कार्ल मार्क्स, 'संकट और प्रतिक्रांति'।–२०१

[94] कार्ल मार्क्स, फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'फ़्रैंकफ़ुर्ट की आमूलवादी-जनवादी पार्टी और फ़्रैंकफ़ुर्टी वामपक्ष के कार्यक्रम'।–२०२

[95] कार्ल मार्क्स, फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'फ़्रैंकफ़ुर्ट की आमूलवादी-जनवादी पार्टी और फ़्रैंकफ़ुर्टी वामपक्ष के कार्यक्रम'।–२०३

[96] व्ला० इ० लेनिन फ़्रे० एंगेल्स के लेख "फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा' को उद्धृत कर रहे हैं।–२०३

[97] फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'क्रांति के बारे में बर्लिन में हुई बहसें'।–२०४

[98] कार्ल मार्क्स, 'सामंती बेगार उन्मूलन विधेयक'।–२०६

[99] कोलोन मज़दूर संघ के मुखपत्र का नाम पहले *Zeitung des Arbeiter-Vereines zu Köln* ('कोलोन मज़दूर संघ का पत्र') था, जिस पर नीचे "Freiheit, Brüderlichkeit, Arbeit" ("स्वतंत्रता, भ्रातृत्व, श्रम") भी छपा होता था। पत्र अप्रैल, १८४८ से अक्तूबर, १८४८ तक ही निकल पाया। उसमें कोलोन मज़दूर संघ तथा राइन प्रदेश के दूसरे मज़दूर संघों की सरगरमियों की रिपोर्टें छपीं। बंद रहने के कुछ दिन बाद २६ अक्तूबर से पत्र *Freiheit, Brüderlichkeit, Arbeit* के नाम से फिर निकलने लगा और २४ जून, १८४९ तक निकलता रहा।–२०८

[100] **कम्युनिस्ट लीग**–क्रांतिकारी सर्वहारा का पहला अंतर्राष्ट्रीय संगठन, जिसकी स्थापना जून, १८४७ में मार्क्स तथा एंगेल्स के नेतृत्व में हुई। उसके निर्देश पर मार्क्स और एंगेल्स ने 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' लिखा। कम्युनिस्ट लीग ने सर्वहारा क्रांतिकारियों के शिक्षा केंद्र और सर्वहारा पार्टी के भ्रूणरूप तथा पहले इंटरनेशनल के पूर्ववर्ती के रूप में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भूमिका निभायी। नवंबर, १८५२ में लीग भंग कर दी गयी।–२१०

[101] **'तोवारिश्च'** ('साथी') – १९०६–१९०७ में पीटर्सबर्ग से प्रकाशित बुर्जुआ दैनिक। औपचारिक रूप से यह पत्र किसी भी पार्टी का पत्र नहीं था, परंतु वस्तुतः वामपंथी कैडेटों का पत्र था। पत्र में मेंशेविक भी अपने लेख लिखते थे। – २११

[102] फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट लीग के इतिहास के विषय में'। – २११

[103] **ख़्लेस्ताकोव** – रूसी लेखक नि० व० गोगोल की रचना 'इंस्पेक्टर जनरल' का एक पात्र। गोगोल ने उसे बेइंतिहा झूठ बोलनेवाले और शेख़ीबाज़ के रूप में चित्रित किया है। – २१२

[104] यहां आशय १९०५ की अखिल रूसी अक्तूबर राजनीतिक हड़ताल से है। – २१३

[105] **'मज़दूरों के प्रतिनिधियों की सोवियत के समाचार'** ('इज़्वेस्तिया') – पीटर्सबर्ग के मज़दूरों के प्रतिनिधियों की सोवियत की बुलेटिन, जो सोवियत के कार्यकलाप के बारे में जानकारी देती थी। यह अक्तूबर–दिसंबर, १९०५ में निकलती रही। – २१३

[106] **ओब्लोमोव** – रूसी लेखक इ० अ० गोंचारोव के इसी नाम के उपन्यास का नायक। ओब्लोमोव का नाम काहिली, सुस्ती और घोर अकर्मण्यता का पर्याय बन गया। – २१६

[107] **'सोत्सिआल-देमोक्रात'** ('सामाजिक-जनवादी') – फ़रवरी, १९०८ से जनवरी, १९१७ तक पहले पेरिस और फिर जेनेवा से प्रकाशित रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का केंद्रीय मुखपत्र, जो गुप्त रूप से निकाला जाता था।

रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की पांचवीं (लंदन की) कांग्रेस में चुनी गयी केंद्रीय समिति के निर्णयानुसार मुखपत्र के संपादक-मंडल में बोल्शेविक, मेंशेविक और पोलैंड के सामाजिक-जनवादी प्रतिनिधि शामिल रहे। पत्र के वास्तविक निदेशक लेनिन थे। लेनिन ने इस

पत्र में ८० से अधिक लेख और टिप्पणियां लिखीं। दिसंबर, १९११ से पत्र का संपादन लेनिन करने लगे।

प्रतिक्रियावाद और क्रांतिकारी आंदोलन के नये उभार के वर्षों में 'सोत्सिआल-देमोक्रात' ने अवसरवाद के ख़िलाफ़, ग़ैर क़ानूनी मार्क्सवादी पार्टी को बरक़रार रखने, उसकी एकता और जनता के साथ संपर्क को मज़बूत करने के लिए बोल्शेविकों के संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

पहले विश्वयुद्ध के दौरान 'सोत्सिआल-देमोक्रात' युद्ध, शांति तथा क्रांति के प्रश्नों पर बोल्शेविक नारों का प्रचार करता रहा।—२२०

108 **विदेशों में स्थित रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की शाखाओं का यह सम्मेलन** लेनिन की अध्यक्षता में फ़रवरी, १९१५ में बर्न में हुआ था। कार्यसूची में मुख्य प्रश्न था युद्ध और पार्टी के कार्यभार। इस प्रश्न पर लेनिन ने रिपोर्ट प्रस्तुत की। लेनिन की रिपोर्ट पर पास किये गये प्रस्तावों में बर्न सम्मेलन ने साम्राज्यवादी युद्ध की परिस्थितियों में बोल्शेविक पार्टी के उद्देश्यों तथा कार्यनीति को निर्धारित किया।—२२०

109 **ड्राइफ़स का मुक़दमा**— १८९४ में फ़्रांसीसी फ़ौजशाही के प्रतिक्रियावादी-राजतंत्रवादी हलक़ों द्वारा फ़्रांसीसी जनरल स्टाफ़ के एक यहूदी अफ़सर ड्राइफ़स पर जासूसी और देशद्रोह के झूठे आरोप में चलाया गया उकसावाभरा मुक़दमा, जिसमें उन्हें आजीवन क़ैद की सज़ा सुनायी गयी। प्रतिक्रियावादी हलक़ों ने इसे देश में यहूदी विरोधी भावनाएं भड़काने और गणतांत्रिक शासन तथा जनवादी स्वतंत्रताओं पर हमला करने के लिए इस्तेमाल किया। १८९९ में जनमत के दबाव में ड्राइफ़स को रिहा कर दिया गया। १९०६ में अपील अदालत ने उन्हें निर्दोष ठहराया और सेना में पहलेवाले पद पर बहाल कर दिया।—२२८

110 **ज़ेबर्न कांड**—नवंबर, १९१३ में हुई ज़ेबर्न नगर (अलसास) की एक घटना। एक प्रशियाई अफ़सर ने अलसासियों का घोर अपमान किया,

जिसका परिणाम स्थानीय आबादी में, जो अधिकांशतः फ़्रांसीसी मूल की थी, प्रशियाई फ़ौजशाही के ख़िलाफ़ ज़बर्दस्त क्षोभ के रूप में सामने आया। – २२८

111 **सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वायत्तता** – जातियों के प्रश्न के संबंध में एक अवसरवादी कार्यक्रम, जिसे पिछली सदी की अंतिम दशाब्दी में आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवादी ओटो बावेर और कार्ल रेनर ने प्रस्तावित किया था। उसका सार यह था कि हर देश में एक ही जाति के लोगों को, चाहे वे उस देश में कहीं भी क्यों न रहते हों, अपनी स्वतंत्र यूनियनें बनानी चाहिए, जिन्हें स्कूलों (विभिन्न जातियों के बच्चों के लिए अलग-अलग स्कूलों) और शिक्षा तथा संस्कृति के दूसरे क्षेत्रों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो। अगर इस कार्यक्रम की पूर्ति की गयी होती, तो हर जातीय समुदाय के अंदर पादरियों और प्रतिक्रियाशील विचारधारा का प्रभाव बढ़ गया होता, मज़दूर वर्ग के संगठन में बाधा पड़ी होती।

लेनिन ने कई लेखों में इस कार्यक्रम की तीखी आलोचना की और बताया कि जिसके विचार पर वह आधारित है, वह "घोर बुर्जुआ और घोर कपटपूर्ण" है और इस विचार का आशय है "विशेष राजकीय निकाय द्वारा सभी जातियों को दृढ़तापूर्वक अलग किया जाना।" – २२९

112 मार्क्स तथा एंगेल्स ने अपनी रचनाओं में यह प्रस्थापना अनेक बार प्रस्तुत की, उदाहरणतः मार्क्स की रचना 'गोपनीय संदेश' तथा एंगेल्स की रचना 'प्रवासी साहित्य' में। – २३२

113 लेनिन यहां जिस प्रस्थापना का ज़िक्र कर रहे हैं, वह एंगेल्स की रचना 'प्राग विद्रोह' में पायी जाती है। लेनिन ने जो पुस्तक इस्तेमाल की थी, उसमें लेख के रचयिता का नाम नहीं दिया गया था। – २३२

114 यहां आशय आयरिश प्रश्न पर मार्क्स की प्रस्थापनाओं से है, जिनका उल्लेख उनके लुडविग कुगेलमान के नाम २९ नवंबर, १८६९ और फ़्रेडरिक एंगेल्स के नाम १० दिसंबर, १८६९ के पत्रों में मिलता है।

लेनिन एंगेल्स के नाम मार्क्स का २ नवंबर, १८६७ का पत्र उद्धृत कर रहे हैं। – २३२

115 **अवगी की घुड़सालें** – यूनानी पुराणकथाओं के अनुसार एलिन के राजा अवगी की बेहद बड़ी-बड़ी घुड़सालें, जो बहुत बरसों से गंदी पड़ी हुई थीं। हर्कुलीज़ ने उन्हें एक दिन में साफ़ कर डाला। तब से 'अवगी की घुड़सालें' किसी गंदी और अत्यंत अव्यवस्थित चीज़ को सूचित करने के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। – २३३

116 *Die Glocke* ('घंटा') – जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के सदस्य और सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी पार्वुस (अ० ला० गेल्फ़ांद) द्वारा १९१५ से १९२५ तक पहले म्यूनिख़ से और फिर बर्लिन से प्रकाशित पत्रिका। – २३३

117 **फ़ेबियन** – फ़ेबियन सोसायटी के सदस्य। इस ब्रिटिश सुधारवादी संगठन की स्थापना १८८४ में हुई थी। सोसायटी का नाम रोम के सेनापति फ़ेबियन मैक्सिमस (तीसरी सदी ईसा पूर्व) के नाम पर रखा गया था, जिसे "कनक्टेटर" (विलंबकारी) कहा जाता था। यह सेनापति अपनी विलंबकारी कार्यनीति और हानीबाल के विरुद्ध जंग में निर्णायक लड़ाइयों को टाल जाने के लिए प्रसिद्ध था। फ़ेबियन सोसायटी के सदस्य मुख्यतः बुर्जुआ बुद्धिजीवियों के प्रतिनिधि थे – वैज्ञानिक, लेखक, राजनीतिज्ञ, आदि। फ़ेबियन लोग सर्वहारा के वर्ग संघर्ष और समाजवादी क्रांति की आवश्यकता से इनकार करते थे। उनका मत था कि सुधारों और समाज के क्रमशः रूपांतरण द्वारा पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण संभव है। १९०० में फ़ेबियन सोसायटी लेबर पार्टी में शामिल हो गयी। – २३६

118 *Die Neue Zeit* ('नया ज़माना') – १८८३ से १९२३ तक स्टुटगार्ट से प्रकाशित जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी की सैद्धांतिक पत्रिका। अक्तूबर, १९१७ तक कार्ल काउत्स्की और बाद में हेनरिक कूनोव

इसके संपादक रहे। इस पत्रिका में मार्क्स और एंगेल्स के कई लेख प्रकाशित हुए। समय समय पर एंगेल्स ने पत्रिका के संपादकों को परामर्श दिया और मार्क्सवाद से भटक जाने के लिए उनकी कटु आलोचना की। पत्रिका ने अगस्त बेबेल, विल्हेल्म लीब्कनेख़्त, रोज़ा लुक्ज़ेमबुर्ग, फ़्रांज़ मेहरिंग, क्लारा ज़ेटकिन, गे० वा० प्लेख़ानोव, पाल लफ़ार्ग और अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन के अन्य नेताओं के लेख प्रकाशित किये। १९वीं शताब्दी के अंतिम दशक के उत्तरार्द्ध में, एंगेल्स की मृत्यु के बाद पत्रिका में संशोधनवादियों के लेख नियमित रूप से छपने लगे। पहले विश्वयुद्ध के वर्षों में पत्रिका ने व्यवहारतः सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों का समर्थन करते हुए मध्यमार्गी स्थिति अपनायी।—२३६

119 यहां आशय रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के **छठे (प्राग) अखिल रूसी सम्मेलन** से है, जो जनवरी, १९१२ में प्राग में हुआ था। उसने कांग्रेस की भूमिका अदा की और नयी क़िस्म की पार्टी के रूप में बोल्शेविक पार्टी का निर्माण करने तथा पार्टी की एकता को मज़बूत करने में उसका बड़ा महत्व था। सम्मेलन की कार्रवाई का संचालन लेनिन ने किया। सम्मेलन ने पार्टी की केंद्रीय समिति चुनी और मेंशेविकों के ख़िलाफ़ बोल्शेविकों के संघर्ष के एक पूरे दौर के नतीजों का निचोड़ निकाला और बोल्शेविकों की विजय को दृढ़ किया। उसने सभी विसर्जनवादियों और अवसरवादियों को पार्टी से निकाल दिया। सम्मेलन के फ़ैसलों ने स्थानीय पार्टी संगठनों को एकताबद्ध किया और उसने स्वयं नये क्रांतिकारी उभार की परिस्थितियों में पार्टी की राजनीति तथा कार्यनीति का निर्धारण कर दिया।—२३८

120 लेनिन का आशय जातियों के प्रश्न पर उनके द्वारा लिखित और रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की केंद्रीय समिति की पार्टी कार्यकर्त्ताओं के साथ हुई मीटिंग में स्वीकृत प्रस्ताव से है। यह मीटिंग १९१३ में २३ सितंबर से १ अक्तूबर तक (६ से १४ अक्तूबर तक) पोलैंड में पोरोनिन नामक नगरी में हुई थी।—२३८

121 **'नाशे देलो'** ('हमारा ध्येय')—मेंशेविक-विसर्जनवादियों की मासिक

पत्रिका, जिसे जनवरी, १९१५ में निकाला गया था। यह पत्रिका रूस में सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों की मुख्य प्रवक्ता थी। – २३९

[122] यहां आशय **पहले अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन** से है, जो ५–८ सितंबर, १९१५ को ज़िम्मरवाल्ड में हुआ था।

सम्मेलन में निम्न ११ देशों के समाजवादियों के ३८ प्रतिनिधियों ने भाग लिया : जर्मनी, फ़्रांस, इटली, रूस, पोलैंड, रूमानिया, बुल्गारिया, स्वीडन, नार्वे, हालैंड और स्विट्ज़रलैंड। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की केंद्रीय समिति के प्रतिनिधिमंडल के नेता लेनिन थे।

सम्मेलन ने 'यूरोप के सर्वहाराओं के नाम' शीर्षक एक मेनीफ़ेस्टो-अपील जारी की, जिसमें लेनिन और वामपंथी सामाजिक-जनवादियों के आग्रह पर क्रांतिकारी मार्क्सवाद की कुछ बुनियादी प्रस्थापनाओं को भी शामिल किया गया। इसके अलावा उसने जर्मन तथा फ़्रांसीसी प्रतिनिधिमंडलों द्वारा प्रस्तावित एक आम घोषणापत्र और युद्धपीड़ितों तथा अपने राजनीतिक कार्यकलाप के लिए सताये जा रहे संघर्षकर्त्ताओं के साथ सहानुभूति का प्रस्ताव अंगीकार किया और अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी आयोग चुना।

सम्मेलन में ज़िम्मरवाल्डी वामपंथी दल का निर्माण हुआ, जिसने सम्मेलन की मध्यमार्गी बहुसंख्या का डटकर विरोध किया। सम्मेलन में आख़िर तक सुसंगत रवैया बोल्शेविक पार्टी के प्रतिनिधियों ने ही अपनाया। – २३९

[123] **बर्न के अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी आयोग की बुलेटिन** (*Bulletin Internationale Sozialistische Kommission zu Bern*) — ज़िम्मरवाल्ड गठबंधन के कार्यकारिणी निकाय का प्रकाशन, जो सितंबर, १९१५ से जनवरी, १९१७ तक जर्मन, फ़्रांसीसी तथा अंग्रेज़ी में छपता रहा और जिसके केवल ६ अंक निकले। – २३९

[124] **दूसरा इंटरनेशनल** – समाजवादी पार्टियों का १८८९ में स्थापित अंतर्राष्ट्रीय संघ। साम्राज्यवादी युग के आगमन के साथ उसमें अवसरवादी

तत्वों का पलड़ा अधिकाधिक भारी होने लगा था। जब १६१४ में पहला विश्वयुद्ध शुरू हुआ, तो दूसरे इंटरनेशनल के अवसरवादी नेताओं ने अपने देशों की बुर्जुआ सरकारों की साम्राज्यवादी नीति का खुलेआम समर्थन किया, जिसके फलस्वरूप शीघ्र ही दूसरे इंटरनेशनल का पतन हो गया। सामाजिक-जनवादी पार्टियों के क्रांतिकारी तत्वों ने तीसरे, कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का निर्माण करने के लिए संघर्ष शुरू कर दिया। – २४०

[125] यहां आशय १८६६ की **लंदन की अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस** से है, जो दूसरे इंटरनेशनल की चौथी कांग्रेस थी तथा जिसमें औपनिवेशिक नीति के विरुद्ध और जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के पक्ष में प्रस्ताव पास किये गये। – २४०

नाम-निर्देशिका

क्रिचेव्स्की, बोरीस नाऊमोविच (१८६६–१९१९)–रूसी सामाजिक-जनवादी, पत्रकार, अर्थवाद के एक नेता। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस के शीघ्र ही बाद सामाजिक-जनवादी आंदोलन से अलग हो गये।–१२४

ग

गपोन, गेओर्गी अपोल्लोनोविच (१८७०–१९०६)–रूसी पादरी, ज़ुबातोव मज़दूर सोसायटियों के सदस्य। ९ जनवरी, १९०५ को ज़ार के सामने एक आवेदन पत्र पेश करने के लिए पीटर्सबर्ग के मज़दूरों के प्रदर्शन का नेतृत्व किया। प्रदर्शन में भाग लेनेवालों को गोलियों से भून दिये जाने के बाद विदेश भाग निकले। उकसावाभरी कार्रवाइयों का पर्दाफ़ाश होने पर समाजवादी-क्रांतिकारियों द्वारा मारे गये।–१०९

गरीबाल्दी (Garibaldi), **जुज़ेप्पे** (१८०७–१८८२)–इटली के क्रांतिकारी जनवादियों के एक प्रमुख नेता तथा महान सेनानायक। १८४८–१८६७ में विदेशी ग़ुलामी के विरुद्ध और देश के एकीकरण के लिए इटली की जनता के संघर्ष का नेतृत्व किया।–२३१

गिएर्के–उदारतावादी, प्रशा के कृषिमंत्री (१८४८), प्रशियाई प्रतिनिधि सभा के सदस्य।–२०५, २०६

गुचकोव, अलेक्सान्द्र इवानोविच (१८६२–१९३६)–बड़े रूसी पूंजीपति, बुर्जुआ अक्तूबरवादी पार्टी के संगठनकर्त्ता और नेता। १९१७ की फ़रवरी बुर्जुआ-जनवादी क्रांति के बाद बुर्जुआ अस्थायी सरकार के सदस्य। अगस्त, १९१७ में कोर्नीलोव के विद्रोह के संगठन में भाग लिया। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद सोवियत सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करते रहे।–२१४

गेद (Guesde), **जूल** (१८४५–१९२२)–फ़्रांसीसी समाजवादी आंदोलन तथा दूसरे इंटरनेशनल के एक संस्थापक और नेता; प्रथम विश्वयुद्ध

के विचार सारसंग्रहवादी खिचड़ी थे। एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'ड्यूहरिंग मत-खंडन। यूजेन ड्यूहरिंग द्वारा विज्ञान में प्रवर्तित क्रांति (१८७७-१८७८)' में ड्यूहरिंग के विचारों की आलोचना की थी।–१८, २५, २८

ड्राइफ़स (Dreyfus), **अल्फ़्रेड** (१८५६-१९३५)–फ़्रांसीसी जनरल स्टाफ़ के एक यहूदी अफ़सर, जिन्हें १८९४ में राजद्रोह के झूठे आरोप पर निर्दोष होते हुए भी आजीवन क़ैद की सज़ा दे दी गयी थी। फ़्रांस में उनके बचाव के लिए फैले व्यापक सार्वजनिक आंदोलन की बदौलत उन्हें १८९९ में क्षमादान दे दिया गया और १९०६ में उन्हें निष्कलंक घोषित किया गया।–२२८

त

तुराती (Turati), **फ़िलिप्पो** (१८५७-१९३२)–इटली के मज़दूर आंदोलन के एक सुधारवादी नेता; १८९२ में इटली की समाजवादी पार्टी के एक संस्थापक। बुर्जुआ वर्ग के साथ सर्वहारा के वर्ग-सहयोग की नीति की हिमायत की। पहले विश्वयुद्ध के दौरान मध्यमार्गी स्थिति अपनायी। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के प्रति उनका रवैया विरोधपूर्ण था, इतालवी मज़दूरों के क्रांतिकारी आंदोलन का विरोध किया।–१३५, १४९

त्रुबेत्सकोई, सेर्गेई निकोलायेविच (१८६२-१९०५)–रूसी प्रिंस, राजनीतिक विचारों से उदारतावादी; भाववादी दार्शनिक। मामूली संविधान लागू करके ज़ारशाही को मज़बूत बनाने की कोशिश की।–१८६, २०५

त्रोत्स्की (ब्रोनस्टीन), लेव दवीदोविच (१८७९-१९४०)–रूसी सामाजिक-जनवादी। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस के बाद समाजवादी क्रांति के सिद्धांत और व्यवहार के सभी प्रश्नों पर बोल्शेविकों के ख़िलाफ़ संघर्ष चलाया। १९०५-१९०७ की क्रांति

प

पार्वुस (गेल्फ़ांद, अलेक्सान्द्र लाज़ारेविच) (१८६९–१९२४) – एक मेंशेविक, १९वीं सदी और २०वीं सदी के संधि-काल में जर्मनी की सामाजिक-जनवादी पार्टी में काम किया। प्रतिक्रियावाद के दौर में सामाजिक-जनवादियों से अलग हो गये; पहले विश्वयुद्ध के दौरान सामाजिक-अंधराष्ट्रवादी स्थिति अपनायी और जर्मन साम्राज्यवाद के दलाल बन गये। – २३५

पेत्रुन्केविच, इवान इल्यीच (१८४४–१९२८) – रूसी ज़मींदार, ज़ेम्स्त्वो के कार्यकर्त्ता। कैडेट पार्टी के एक संस्थापक और नेता, इस पार्टी की केंद्रीय समिति के अध्यक्ष; अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद श्वेत प्रवासी। – ११३, १८६, २०४, २०५

पोत्रेसोव, अलेक्सान्द्र निकोलायेविच (स्तारोवेर) (१८६९–१९३४) – मेंशेविकों के एक नेता। प्रतिक्रियावाद के दौर में विसर्जनवादी विचारधारा-निरूपक। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद विदेश जाकर सोवियत रूस का सक्रिय विरोध किया। – ११५, १२४, १५३, १८३, १९३

प्रूदों (Proudhon), **पियेर जोज़ेफ़** (१८०९–१८६५) – फ़्रांसीसी पत्रकार, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री तथा टुटपुंजिया वर्ग के विचारधारा-निरूपक। अराजकतावाद के एक प्रवर्त्तक। – २५, २१०, २२२, २३२

प्रोकोपोविच, सेर्गेई निकोलायेविच (१८७१–१९५५) – रूसी बुर्जुआ अर्थशास्त्री और पत्रकार, अर्थवाद के प्रमुख प्रतिनिधि, रूस में बर्नस्टीनवाद के पहले प्रचारक। १९०६ में कैडेट पार्टी की केंद्रीय समिति के सदस्य। १९१७ में बुर्जुआ अस्थायी सरकार के सदस्य। १९२२ में सोवियत विरोधी सरगर्मियों के कारण देशनिकाला दे दिया गया। – १८८

प्लेख़ानोव, गेओर्गी वालेन्तीनोविच (१८५६–१९१८) – रूसी और अंत-

य

युरकेविच, लेव (१८८५–१९१८)–उक्रइनी बुर्जुआ राष्ट्रवादी, अवसरवादी; उक्रइनी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की केंद्रीय समिति के सदस्य।–२३६

र

रिकार्डो (Ricardo), **डेविड** (१७७२–१८२३)–प्रमुख अंग्रेज़ अर्थशास्त्री, जिनकी पुस्तकों में क्लासिकल बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र अपनी चरम परिणति पर पहुंचा।–२०

रुबानोविच, इल्या अदोल्फ़ोविच (१८६०–१९२०)–समाजवादी-क्रांतिकारी पार्टी के एक नेता; अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी ब्यूरो के सदस्य। अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद सोवियत सत्ता के शत्रु।–२३९

रूगे (Ruge), **आर्नोल्ड** (१८०२–१८८०)–जर्मन पत्रकार, तरुण हेगेलपंथी और बुर्जुआ आमूलवादी; इंगलैंड में टुटपुंजिया जर्मन उत्प्रवासियों के नेता।–५९

रेनर (Renner), **कार्ल** (१८७०–१९५०)–आस्ट्रिया के एक राजनीतिज्ञ, आस्ट्रियाई दक्षिणपंथी सामाजिक-जनवादियों के एक नेता और सिद्धांतकार। "सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वायत्तता" के बुर्जुआ-राष्ट्रवादी सिद्धांत के एक रचयिता।–२२९

रेनान (Renan), **एर्नेस्ट जोज़ेफ़** (१८२३–१८९२)–फ़्रांसीसी वैज्ञानिक, धर्म के इतिहासकार और भाववादी दार्शनिक। प्रारंभिक ईसाई धर्म के इतिहास पर अपनी कृतियों के लिए विख्यात।–२११

रेनोदिल (Renaudel), **पियेर** (१८७१–१९३५)–फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी के एक सुधारवादी नेता।–२३६

रोदिचेव, फ़्योदोर इज़्माइलोविच (१८५३–१९३२)–रूसी ज़मींदार और

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये :

प्रगति प्रकाशन,
१७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।